अक्तूबर, 2014

उच्चतम न्यायालय निर्णय पत्रिका

प्रधान संपादक
अनूप कुमार वार्ष्णेय

महत्वपूर्ण निर्णय

दंड संहिता, 1860 (1860 का 45) – धारा 304ख और धारा 498क [सपठित भारतीय साक्ष्य अधिनियम, 1872 की धारा 113ख] – दहेज मृत्यु – पति द्वारा पत्नी की हत्या किया जाना – धारा 113ख के अधीन यह साबित होने पर कि स्त्री की मृत्यु उसके विवाह के सात वर्ष के भीतर सामान्य परिस्थितियों से अन्यथा हुई है और उस मृत्यु के कुछ पूर्व दहेज की मांग के लिए क्रूरता की गई थी, तब ऐसी स्थिति में यह उपधारित किया जाएगा कि अभियुक्त द्वारा दहेज मृत्यु कारित की गई है ।

प्रदीप कुमार बनाम **हरियाणा राज्य** 62

संसद् के अधिनियम

संरक्षक और प्रतिपाल्य अधिनियम, 1890 का हिन्दी में प्राधिकृत पाठ (13) – (28)

पृष्ठ संख्या 1 – 153 **[2014] 4 उम. नि. प.**

विधि साहित्य प्रकाशन
विधायी विभाग
विधि और न्याय मंत्रालय
भारत सरकार

उच्चतम न्यायालय निर्णय पत्रिका – अक्तूबर, 2014 [पृष्ठ संख्या 1 – 153]

उच्चतम न्यायालय निर्णय पत्रिका

अक्तूबर, 2014

निर्णय-सूची

	पृष्ठ संख्या
अतुल त्रिपाठी **बनाम** उत्तर प्रदेश राज्य और एक अन्य	141
कृष्णन **उर्फ** रामास्वामी और अन्य **बनाम** तमिलनाडु राज्य	1
पंजाब राज्य **बनाम** गुरमीत सिंह	54
प्रदीप कुमार **बनाम** हरियाणा राज्य	62
मनोहर लाल **बनाम** हरियाणा राज्य	14
महाराष्ट्र राज्य **बनाम** राजेन्द्र और अन्य	123
राम कुमार और अन्य **बनाम** मध्य प्रदेश राज्य	28
रिछपाल सिंह मीणा **बनाम** घासी **उर्फ** घीसा और अन्य	96
संजीव लाल और अन्य **बनाम** आय-कर आयुक्त, चंडीगढ़ और एक अन्य	37
सूर्यकांत दादासाहेब बिताले **बनाम** दिलीप बजरंग काले और एक अन्य	79

संसद् के अधिनियम

संरक्षक और प्रतिपाल्य अधिनियम, 1890 का हिन्दी में प्राधिकृत पाठ	(13) – (28)

विषय-सूची

पृष्ठ संख्या

आय-कर अधिनियम, 1961 (1961 का 43)

– धारा 54 और 2(47) – निवास-गृह का विक्रय करने पर उसके अंतरण से होने वाले दीर्घकालिक पूंजी अभिलाभ पर आय-कर से राहत – निवास-गृह को बेचने के लिए अग्रिम धन लेकर विक्रय करार किया जाना – मुकदमेबाजी के कारण विक्रय-विलेख विलंब से रजिस्ट्रीकृत किया जाना – विक्रय करार न कि विक्रय-विलेख के निष्पादन की तारीख से एक वर्ष के भीतर एक नया निवास-गृह खरीदा जाना – निर्धारण अधिकारी द्वारा दीर्घकालिक पूंजी अभिलाभ पर राहत न दिया जाना – अंतरिती-अपीलार्थी मुकदमेबाजी के लंबित रहते हुए सक्षम न्यायालय के आदेश के कारण विक्रय-विलेख निष्पादित करने के लिए अवरुद्ध हो गए थे किंतु विक्रय करार करने के पश्चात् प्रश्नगत पूंजी आस्ति की बाबत कुछ अधिकार क्रेता के पक्ष में अंतरित होना, इसलिए मामले के विशिष्ट तथ्यों के आधार पर विक्रय करार की तारीख को पूंजी आस्ति के अंतरण की तारीख माना जा सकता है और अंतरिती-अपीलार्थी दीर्घकालिक पूंजी अभिलाभ पर आय-कर की बाबत राहत के हकदार हैं ।

संजीव लाल और अन्य बनाम **आय-कर आयुक्त, चंडीगढ़ और एक अन्य** 37

दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 (1974 का 2)

– धारा 389 – उच्च न्यायालय द्वारा आजीवन कारावास से दोषसिद्ध-अपीलार्थी को जमानत पर छोड़ा जाना – अपीलार्थी द्वारा अपील के ज्ञापन और जमानत के लिए आवेदन की प्रति लोक अभियोजक को तामील किया जाना – उच्च न्यायालय द्वारा जमानत पर सुनवाई

पृष्ठ संख्या

करने से पूर्व लोक अभियोजक को जमानत का विरोध करने का अवसर न दिया जाना – जहां दोषसिद्धि मृत्यु दंड, आजीवन कारावास या दस वर्ष अथवा अधिक अवधि के कारावास से दंडनीय अपराध के लिए हो, वहां उसकी अपील के लंबित रहने के दौरान उसे जमानत पर छोड़े जाने से पूर्व अपील न्यायालय के लिए लोक अभियोजक को ऐसी जमानत के विरुद्ध लिखित में कारण दर्शित करने का अवसर दिया जाना आज्ञापक है और लोक अभियोजक को केवल अपील के ज्ञापन और जमानत के आवेदन की प्रति तामील करने से धारा 389 के प्रथम परंतुक का समाधान नहीं हो जाता है ।

अतुल त्रिपाठी बनाम **उत्तर प्रदेश राज्य और एक अन्य** 141

– धारा 439 और 389 – जमानत पर छोड़ा जाना – धारा 439 के अधीन जमानत पर छोड़ा जाना पूर्व-दोषसिद्धि का प्रक्रम है और यदि अपराध अनन्य रूप से सेशन न्यायालय द्वारा विचारणीय है या अपराध के लिए दंड आजीवन कारावास है, तो अभियुक्त को जमानत पर छोड़े जाने से पूर्व लोक अभियोजक को केवल सूचना दिया जाना अपेक्षित है, किंतु धारा 389 के अधीन जमानत पर छोड़ा जाना दोषसिद्धि के पश्चात् का प्रक्रम है और मृत्यु दंड, आजीवन कारावास या दस वर्ष से अन्यून अवधि के कारावास के लिए दोषसिद्ध व्यक्ति को उसकी अपील के लंबित रहने के दौरान जमानत पर छोड़े जाने से पूर्व अपील न्यायालय द्वारा लोक अभियोजक को ऐसी जमानत के विरोध में लिखित में कारण दर्शित करने का अवसर दिया जाना आज्ञापक है ।

अतुल त्रिपाठी बनाम **उत्तर प्रदेश राज्य और एक अन्य** 141

पृष्ठ संख्या

दंड संहिता, 1860 (1860 का 45)

– धारा 299/304, 300/302, 322, 325, 326 और 72 – अभियुक्तों द्वारा मृतक को कारित क्षतियों के कारण उसकी मृत्यु हो जाना – विचारण न्यायालय द्वारा मामले के तथ्यों और साक्ष्य के आधार पर अभियुक्तों को धारा 302 के अधीन हत्या का अपराध कारित करने का दोषी ठहराया जाना – उच्च न्यायालय द्वारा अभियुक्तों को केवल धारा 325 के अधीन स्वेच्छया घोर उपहति कारित करने के लिए दोषसिद्ध किया जाना – डाक्टर की राय के अनुसार मृतक को पहुंची क्षतियां प्रकृति के मामूली अनुक्रम में मृत्यु कारित करने के लिए पर्याप्त होने तथा मामले के तथ्यों से यह स्पष्ट होने पर कि अभियुक्तों का आशय मृतक को घोर क्षतियां कारित करना था, यह आपराधिक मानव वध का मामला होने के कारण विचारण न्यायालय द्वारा उन्हें धारा 302 के अधीन ठीक ही दोषसिद्ध और दंडादिष्ट किया गया है तथा उच्च न्यायालय का निर्णय अपास्त करने योग्य है ।

रिछपाल सिंह मीणा बनाम **घासी** उर्फ **घीसा और अन्य** 96

– धारा 302 – हत्या – चिकित्सीय साक्ष्य – क्षतियों की प्रकृति का घातक होना – विशिष्ट शवपरीक्षण रिपोर्ट की आवश्यकता – आहत को पहुंची क्षतियां और अस्थि भंग इतने घातक हैं कि उनसे किसी भी व्यक्ति की मृत्यु कारित हो जाए, तब ऐसी स्थिति में चिकित्सक के लिए यह आवश्यक नहीं होगा कि वह यह स्पष्ट करे कि क्षतियां प्रकृति के सामान्य अनुक्रम में मृत्यु कारित करने के लिए पर्याप्त हैं, अतः हत्या के अपराध के लिए की गई अपीलार्थी की दोषसिद्धि न्यायोचित होगी ।

राम कुमार और अन्य बनाम **मध्य प्रदेश राज्य** 28

पृष्ठ संख्या

– धारा 302 [सपठित भारतीय साक्ष्य अधिनियम, 1872 की धारा 3] – हत्या – पारिस्थितिक साक्ष्य – मृतक को अंतिम बार देखे जाने के संबंध में विरोधाभासी साक्ष्य – सह-अभियुक्तयों को संदेह का लाभ – मृतक की माता ने मृतक को अंतिम बार अभियुक्तों के साथ मंदिर में जीवित देखा था और उसकी मौसी के अनुसार उसको अंतिम बार पुलिस थाने में देखा गया था जिसकी पुष्टि पुलिस द्वारा नहीं की गई, साथ ही सह-अभियुक्तों को संदेह का लाभ देते हुए निचले दोनों न्यायालयों द्वारा दोषमुक्त किया गया, ऐसी स्थिति में अपीलार्थियों की दोषसिद्धि न्यायोचित नहीं होगी ।

कृष्णन उर्फ **रामास्वामी और अन्य** बनाम **तमिलनाडु राज्य** 1

– धारा 302 [सपठित भारतीय दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 की धारा 154] – हत्या – प्रथम इत्तिला रिपोर्ट में विलंब – अभियोजन द्वारा विलंब का स्पष्टीकरण न किया जाना – मृतक के अंतिम बार जीवित देखे जाने और उसके शव बरामद होने के बीच मृतक के संपर्क में अन्य किसी व्यक्ति के न आने का साक्ष्य न होना – प्रथम इत्तिला रिपोर्ट दर्ज कराए जाने में हुए विलंब का स्पष्टीकरण नहीं दिया गया है, साथ ही ऐसी कोई सामग्री नहीं है जिससे यह दर्शित होता हो कि मृतक को अंतिम बार अभियुक्तों के साथ देखा गया था और उसका शव बरामद होने तक की अंतर्वर्ती अवधि के दौरान उसके संपर्क में अन्य कोई व्यक्ति नहीं आया था, ऐसी स्थिति में अभियुक्तों को संदेह का लाभ दिया जाएगा और उनकी दोषसिद्धि अनुचित होगी ।

कृष्णन उर्फ **रामास्वामी और अन्य** बनाम **तमिलनाडु राज्य** 1

पृष्ठ संख्या

– धारा 302 और धारा 34 [सपठित भारतीय साक्ष्य अधिनियम, 1872 की धारा 3] – हत्या – सामान्य आशय – चिकित्सीय साक्ष्य से संपुष्टि – अपीलार्थियों ने सामान्य आशय से मृतक को घातक क्षतियां पहुंचाकर उसकी मृत्यु कारित की है जिसकी संपुष्टि चिकित्सीय साक्ष्य से पूर्ण रूप से होती है, ऐसी स्थिति में अपीलार्थियों के दोषसिद्धि के निष्कर्ष में हस्तक्षेप नहीं किया जा सकता ।

राम कुमार और अन्य बनाम **मध्य प्रदेश राज्य** 28

– धारा 302 और 498क [सपठित भारतीय साक्ष्य अधिनियम, 1872 की धारा 32] – हत्या और क्रूरता – पति द्वारा आग में जलाकर पत्नी की हत्या किया जाना – मृत्युकालिक कथन की विश्वसनीयता – कथनों में असंगतता – एक से अधिक मृत्युकालिक कथन दिए जाने पर सभी कथनों पर विचार किया जाना चाहिए और यदि उनमें भिन्न-भिन्न बातों का उल्लेख किया गया है और वे एक दूसरे के साथ असंगत है जिसके बाबत अभियोजन पक्ष ने स्पष्टीकरण नहीं दिया है, ऐसी असंगतता के आधार पर की गई दोषमुक्ति न्यायोचित होगी ।

सूर्यकांत दादासाहेब बिताले बनाम **दिलीप बजरंग काले और एक अन्य** 79

– धारा 304ख – दहेज मृत्यु – पत्नी की जला कर हत्या किया जाना – दहेज की मांग किया जाना किंतु मृतका को तंग किए जाने का साक्ष्य न होना – शिकायतकर्ता द्वारा विशेष घटना का उल्लेख न किया जाना – शिकायतकर्ता द्वारा घटना का विशेष उल्लेख न किए जाने और यह साबित न किए जाने पर कि मृतका की मृत्यु के कुछ पूर्व दहेज की मांग के लिए

पृष्ठ संख्या

उसके साथ क्रूरता की गई थी, अपीलार्थी को दहेज मृत्यु के अपराध का दोषी ठहराना न्यायोचित नहीं होगा ।

मनोहर लाल बनाम **हरियाणा राज्य** 14

– धारा 304ख – दहेज मृत्यु – "पति के किसी नातेदार" शब्द का अर्थ – इसके अर्थान्तर्गत वे व्यक्ति आते हैं जो मृतका के पति से रक्त, विवाह या दत्तक-ग्रहण द्वारा संबंधी हैं और प्रत्यर्थी के रक्त, विवाह या दत्तक-ग्रहण द्वारा मृतका के पति का नातेदार न होने के कारण उसे धारा 304ख के अधीन अभियोजित नहीं किया जा सकता है ।

पंजाब राज्य बनाम **गुरमीत सिंह** 54

– धारा 304ख और धारा 498क [सपठित भारतीय साक्ष्य अधिनियम, 1872 की धारा 6 और 32] – दहेज मृत्यु – पारिस्थितिक साक्ष्य – दो मृत्युकालिक कथन – एक मृत्युकालिक कथन की चिकित्सीय साक्ष्य से संपुष्टि – मृतक के चेहरे और खोपड़ी पर दाह क्षतियां न आना – मृतका के अनुसार स्टोव फटने से नहीं अपितु तेल उड़ेलने से क्षतियां कारित हुई थीं इसलिए उसके चेहरे और खोपड़ी पर क्षतियां नहीं आईं जिसकी पुष्टि चिकित्सीय साक्ष्य से होती है, ऐसी स्थिति में अपीलार्थी की दोषसिद्धि न्यायोचित होगी ।

प्रदीप कुमार बनाम **हरियाणा राज्य** 62

– धारा 304ख और धारा 498क [सपठित भारतीय साक्ष्य अधिनियम, 1872 की धारा 113ख] – दहेज मृत्यु – पति द्वारा पत्नी की हत्या किया जाना – धारा 113ख के अधीन यह साबित होने पर कि स्त्री की मृत्यु उसके विवाह के सात वर्ष के भीतर सामान्य परिस्थितियों से अन्यथा हुई है और उस मृत्यु के कुछ पूर्व दहेज की मांग के लिए क्रूरता की गई थी, तब ऐसी

पृष्ठ संख्या

स्थिति में यह उपधारित किया जाएगा कि अभियुक्त द्वारा दहेज मृत्यु कारित की गई है ।

प्रदीप कुमार बनाम **हरियाणा राज्य** 62

– धारा 306 और 34 [सपठित साक्ष्य अधिनियम, 1872 की धारा 113क] – आत्महत्या के लिए दुष्प्रेरण – उपधारणा – मृतका को दहेज की मांग पूरी करने के लिए प्रपीड़ित करने की दृष्टि से तंग किया जाना – मृतका की जलने से मृत्यु कारित होना – मामले के तथ्यों और परिस्थितियों तथा साक्षियों के साक्ष्य के आधार पर मृतका से दहेज की मांग और क्रूरता करने की बात साबित होना – किसी ऐसे विनिर्दिष्ट साक्ष्य के अभाव में कि अभियुक्तों के जानबूझकर किए गए आचरण से मृतका को आत्महत्या करने के लिए मजबूर होना पड़ा था, अभियुक्तों को धारा 306/34 के अधीन दोषसिद्ध करना उचित नहीं होगा ।

महाराष्ट्र राज्य बनाम **राजेन्द्र और अन्य** 123

– धारा 498क, 304ख और 34 [सपठित साक्ष्य अधिनियम, 1872 की धारा 113ख] – विवाहित स्त्री के साथ क्रूरता और दहेज मृत्यु – मामले के तथ्यों और परिस्थितियों तथा साक्षियों के स्पष्ट साक्ष्य के आधार पर युक्तियुक्त संदेह के परे यह साबित होने पर कि मृतका को उसके विवाह के 8-10 दिन पश्चात् से ही अभियुक्तों द्वारा दहेज की मांग पूरी न करने के लिए तंग किया गया था और उसकी मृत्यु के कुछ पूर्व उसके गर्भवती होने के बावजूद उसे ठीक ढंग से भोजन नहीं देकर उसके साथ क्रूरता की गई थी और उसकी संदिग्ध परिस्थितियों में अस्वाभाविक मृत्यु हुई थी, अभियुक्तों की दोषसिद्धि उचित है ।

महाराष्ट्र राज्य बनाम **राजेन्द्र और अन्य** 123

संपादक-मंडल

डा. संजय सिंह,
सचिव, विधायी विभाग

श्रीमती शारदा जैन, संयुक्त सचिव एवं विधायी परामर्शी, विधायी विभाग

डा. बी. एन. मणि,
सेवानिवृत्त अपर विधि सलाहकार, विधि मंत्रालय

प्रो. डा. वैभव गोयल,
सुभारती विश्वविद्यालय, मेरठ
विधि विभाग

डा. सुरेन्द्र कुमार शर्मा, प्रिन्सिपल, विधि विभाग, डी आई आर डी, गुरु गोविंद सिंह इन्द्रप्रस्थ विश्वविद्यालय

डा. ऋषिपाल सिंह,
सेवानिवृत्त संयुक्त सचिव एवं विधायी परामर्शी, राजभाषा खंड

श्री लालजी प्रसाद,
सेवानिवृत्त प्रधान संपादक, वि.सा.प्र.

श्री कृष्ण गोपाल अग्रवाल,
सेवानिवृत्त संपादक, वि.सा.प्र.

श्री अनूप कुमार वार्ष्णेय,
प्रधान संपादक

श्री महमूद अली खां,
संपादक

डा. मिथिलेश चन्द्र पांडेय,
संपादक

सहायक संपादक : सर्वश्री विनोद कुमार आर्य, कमला कान्त, अविनाश शुक्ल और असलम खान

उप-संपादक : सर्वश्री दयाल चन्द ग्रोवर, महीपाल सिंह और जसवन्त सिंह

कीमत : डाक-व्यय सहित

एक प्रति : ₹ 19

वार्षिक : ₹ 225

© 2014 भारत सरकार, विधि और न्याय मंत्रालय

प्रकाशन और विक्रय प्रबंधक, विधि साहित्य प्रकाशन, विधि और न्याय मंत्रालय (विधायी विभाग), भगवानदास मार्ग, नई दिल्ली-110001 द्वारा प्रकाशित तथा..... द्वारा मुद्रित ।

भारत के समाचारपत्रों के रजिस्ट्रार द्वारा रजिस्ट्रीकृत रजि. सं. 16288/68

सादर

विधि साहित्य प्रकाशन द्वारा तीन मासिक निर्णय पत्रिकाओं – उच्चतम न्यायालय निर्णय पत्रिका, उच्च न्यायालय सिविल निर्णय पत्रिका और उच्च न्यायालय दांडिक निर्णय पत्रिका का प्रकाशन किया जाता है । उच्चतम न्यायालय निर्णय पत्रिका में उच्चतम न्यायालय के चयनित निर्णयों को और उच्च न्यायालय सिविल निर्णय पत्रिका तथा उच्च न्यायालय दांडिक निर्णय पत्रिकाओं में देश के विभिन्न उच्च न्यायालयों के क्रमशः चयनित सिविल और दांडिक निर्णयों को हिन्दी में प्रकाशित किया जाता है । इन पत्रिकाओं को और अधिक आकर्षक बनाने के लिए इनमें जनवरी, 2010 के अंक से महत्वपूर्ण केन्द्रीय अधिनियमों का प्राधिकृत हिन्दी पाठ पाठकों की सुविधा के लिए शृंखलाबद्ध रूप से प्रकाशित किया जा रहा है । तीनों निर्णय पत्रिकाओं की वार्षिक कीमत केवल ₹ 495/- है । उच्चतम न्यायालय निर्णय पत्रिका की वार्षिक कीमत ₹ 225/- है, उच्च न्यायालय सिविल निर्णय पत्रिका की वार्षिक कीमत ₹ 135/- है और उच्च न्यायालय दांडिक निर्णय पत्रिका की वार्षिक कीमत ₹ 135/- है । तीनों मासिक निर्णय पत्रिकाओं के नियमित ग्राहक बनकर हिन्दी के प्रचार-प्रसार के इस महान यज्ञ के भागी बन कर अनुगृहीत करें ।

विधि साहित्य प्रकाशन
(विधायी विभाग)
विधि और न्याय मंत्रालय
भारत सरकार
भारतीय विधि संस्थान भवन,
भगवान दास मार्ग, नई दिल्ली-110001
दूरभाष : 011-23387589, 23385259, 23382105

विधि साहित्य प्रकाशन द्वारा प्रकाशित और विक्रय के लिए उपलब्ध विधि पाठ्य पुस्तकों की सूची

	पुस्तक का नाम	लेखक	पृष्ठ सं.	कीमत (₹)
1.	भारत का विधिक इतिहास	श्री सुरेन्द्र मधुकर	410	30.00
2.	माल विक्रय और परक्राम्य लिखत विधि	डा. एन. पी. परांजपे	371	40.00
3.	वाणिज्य विधि	डा. आर. एल. भट्ट	630	108.00
4.	अपकृत्य विधि के सिद्धान्त (तृतीय संस्करण)	श्री शर्मन लाल अग्रवाल	357	40.00
5.	अंतर्राष्ट्रीय विधि के प्रमुख निर्णय (द्वितीय संस्करण)	डा. एस. सी. खरे	273	115.00
6.	मानव अधिकार	डा. शिवदत्त शर्मा	340	120.00
7.	दण्ड प्रक्रिया संहिता	न्या. महावीर सिंह	840	200.00

पुस्तकों की सूची जिन पर छूट देने की स्वीकृति प्राप्त की गई है ।

	पुस्तक का नाम	लेखक	पृष्ठ सं.	मूल दर (₹)	संशोधित दर (₹)
1.	संविदा विधि (द्वितीय संस्करण)	डा. रामगोपाल चतुर्वेदी	552	275.00	137.00
2.	श्रम विधि (तृतीय संस्करण)	श्री गोपी कृष्ण अरोड़ा	658	452.00	226.00
3.	चिकित्सा न्यायशास्त्र और विष विज्ञान (तृतीय संस्करण)	डा. सी. के. पारिख अनुवादक डा. एन. के. पटौरिया	969	293.00	146.00
4.	आधुनिक पारिवारिक विधि	श्री राम शरण माथुर	767	429.00	214.00
5.	भारतीय स्वातंत्र्य संग्राम (कालजयी निर्णय)	संकलन संपादन – ब्रह्मदेव चौबे	209	225.00	112.00
6.	हिन्दू विधि (द्वितीय संस्करण)	डा. रवीन्द्र नाथ	617	425.00	212.00
7.	भारतीय दंड संहिता	डा. रवीन्द्र नाथ	696	741.00	370.00
8.	भारतीय भागीदारी अधिनियम (द्वितीय संस्करण)	श्री माधव प्रसाद वशिष्ठ	272	165.00	82.00
9.	प्रशासनिक विधि (तृतीय संस्करण)	डा. कैलाश चन्द्र जोशी	635	200.00	100.00
10.	विधिक उपचार (द्वितीय संस्करण)	डा. एस. के. कपूर	414	311.00	155.00
11.	विधि शास्त्र	डा. शिवदत्त शर्मा	501	580.00	377.00

विधि साहित्य प्रकाशन

(विधायी विभाग)

विधि और न्याय मंत्रालय

भारत सरकार

भारतीय विधि संस्थान भवन,

भगवान दास मार्ग, नई दिल्ली-110001

कृष्णन उर्फ रामास्वामी और अन्य

बनाम

तमिलनाडु राज्य

1 जुलाई, 2014

न्यायमूर्ति सुधांशु ज्योति मुखोपाध्याय और न्यायमूर्ति दीपक मिश्रा

दंड संहिता, 1860 (1860 का 45) – धारा 302 [सपठित भारतीय साक्ष्य अधिनियम, 1872 की धारा 3] – हत्या – पारिस्थितिक साक्ष्य – मृतक को अंतिम बार देखे जाने के संबंध में विरोधाभासी साक्ष्य – सह-अभियुक्तों को संदेह का लाभ – मृतक की माता ने मृतक को अंतिम बार अभियुक्तों के साथ मंदिर में जीवित देखा था और उसकी मौसी के अनुसार उसको अंतिम बार पुलिस थाने में देखा गया था जिसकी पुष्टि पुलिस द्वारा नहीं की गई, साथ ही सह-अभियुक्तों को संदेह का लाभ देते हुए निचले दोनों न्यायालयों द्वारा दोषमुक्त किया गया, ऐसी स्थिति में अपीलार्थियों की दोषसिद्धि न्यायोचित नहीं होगी ।

दंड संहिता, 1860 – धारा 302 [सपठित भारतीय दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 की धारा 154] – हत्या – प्रथम इत्तिला रिपोर्ट में विलंब – अभियोजन द्वारा विलंब का स्पष्टीकरण न किया जाना – मृतक के अंतिम बार जीवित देखे जाने और उसके शव बरामद होने के बीच मृतक के संपर्क में अन्य किसी व्यक्ति के न आने का साक्ष्य न होना – प्रथम इत्तिला रिपोर्ट दर्ज कराए जाने में हुए विलंब का स्पष्टीकरण नहीं दिया गया है, साथ ही ऐसी कोई सामग्री नहीं है जिससे यह दर्शित होता हो कि मृतक को अंतिम बार अभियुक्तों के साथ देखा गया था और उसका शव बरामद होने तक की अंतर्वर्ती अवधि के दौरान उसके संपर्क में अन्य कोई व्यक्ति नहीं आया था, ऐसी स्थिति में अभियुक्तों को संदेह का लाभ दिया जाएगा और उनकी दोषसिद्धि अनुचित होगी ।

इस मामले में पांच अभियुक्तों पर मृतक की हत्या का आरोप लगाया गया था, विचारण न्यायालय में उनका विचारण किया गया और प्रथम तीन

अभियुक्तों को दोषसिद्ध करते हुए शेष दो अभियुक्तों को दोषमुक्त कर दिया । दोषसिद्ध किए गए तीनों अभियुक्तों ने विचारण न्यायालय के दोषसिद्धि के आदेश से व्यथित होकर तमिलनाडु उच्च न्यायालय के समक्ष अपील फाइल की । उच्च न्यायालय ने अपने आक्षेपित निर्णय द्वारा तीनों अभियुक्तों की अपील खारिज कर दी । उच्च न्यायालय के इस आदेश के विरुद्ध अभियुक्तों ने उच्चतम न्यायालय के समक्ष अपील फाइल की । उच्चतम न्यायालय ने निचले दोनों न्यायालयों के आदेशों को अपास्त करते हुए अपीलार्थियों को दोषमुक्त कर दिया । अपील मंजूर करते हुए,

अभिनिर्धारित – मृतक मणिकंदन की माता वलारमती (अभि. सा. 1) ने जिस रीति में तारीख 4 अप्रैल, 2004 को घटित हुई घटना के ब्यौरे दिए हैं उससे यह दर्शित होता है जैसे वलारमती ने घटना के प्रत्येक प्रक्रम को देखा हो अर्थात् अभियुक्तों ने मृतक मणिकंदन का किस प्रकार अपहरण किया, किस प्रकार उसे मरियम्मन मंदिर में पीटा गया, किस प्रकार ऑटोरिक्शा में ले जाया गया, किस प्रकार एक स्थान से दूसरे स्थान पर पहुंचाया गया और किस प्रकार वे पुलिस थाने गए । अभियुक्त-3 के संबंध में वलारमती (अभि. सा. 1) का कथन (अभियोजन वृत्तांत में) सुधार दर्शाता है जिसका स्पष्टीकरण नहीं दिया गया है । वलारमती के अभिसाक्ष्य में ऑटोरिक्शा में घटित हुई अभियुक्तों से लेकर मृतक तक की कहानी एक अन्य सुधार है जिसका उल्लेख वलारमती ने प्रथमइत्तिला रिपोर्ट (प्रदर्श पी-13) में नहीं किया है । अभियोजन पक्षकथन मुख्य रूप से घटनास्थल और मृतक मणिकंदन का अभियुक्त-1 से अभियुक्त-3 के साथ देखे जाने पर आधारित है । वलारमती (अभि. सा. 1) के अनुसार मृतक मणिकंदन को अंतिम बार अभियुक्त-1 से अभियुक्त-4 के साथ मरियम्मन मंदिर में देखा गया था । अमृतावल्ली (अभि. सा. 2) मृतक की मौसी है । वलारमती (अभि. सा. 1) ने घटनास्थल पर अमृतावल्ली (अभि. सा. 2) की मौजूदगी को प्रकट नहीं किया है जहां पर मृतक को अभियुक्त-1 से अभियुक्त-4 के साथ अंतिम बार देखा गया था । यदि अमृतावल्ली (अभि. सा. 2) के कथन को स्वीकार कर लिया जाए, तब भी उसके कथानुसार मृतक को अंतिम बार अभियुक्त-1 अर्थात् रामास्वामी के साथ पुलिस थाने में देखा गया था जो मृतक मणिकंदन को वहां लेकर आया था । अभियोजन पक्ष अमृतावल्ली (अभि. सा. 2) के उस कथन को स्पष्ट करने में असफल रहा है जो उसने अपनी प्रतिपरीक्षा के दौरान दिया था जिसमें अमृतावल्ली ने यह उल्लेख किया था कि जब उसने पुलिस से मणिकंदन के बारे में मालूम किया तब

पुलिस ने यह उत्तर दिया कि मणिकंदन उनके सुपुर्द नहीं किया गया है । अतः, अमृतावल्ली (अभि. सा. 2) की घटनास्थल पर मौजूदगी संदिग्ध हो जाती है । इस साक्षी के अत्यंत हितबद्ध होने और उपर्युक्त विरोधाभासों को दृष्टिगत करने पर उसके कथन का अवलंब नहीं लिया जा सकता । सह-अपराधी के परिसाक्ष्य को एक अन्य अभियुक्त के विरुद्ध प्रयोग नहीं किया जा सकता है । अभियुक्त-3 के परिसाक्ष्य के आधार पर, यदि शव बरामद किया गया है, तब अभियुक्त-1 और अभियुक्त-2 को दोषसिद्ध नहीं किया जा सकता है । यदि राजेन्द्रन **उर्फ** सक्काराई (अभियुक्त-4) तथा अभियुक्त-1 से अभियुक्त-3 को अंतिम बार मृतक मणिकंदन के साथ देखा गया था तब ऐसी स्थिति में विचारण न्यायालय ने अभियुक्त-4 को संदेह का लाभ दिया है किंतु यह स्पष्ट नहीं है कि यही लाभ अभियुक्त-1 से अभियुक्त-3 को क्यों नहीं दिया है । (पैरा 16, 18, 19 और 20)

प्रथम इत्तिला रिपोर्ट दर्ज कराए जाने में छह दिन का विलंब है जिसके संबंध में स्पष्टीकरण नहीं दिया गया है । अभियोजन वृत्तांत के अनुसार मृतक मणिकंदन को अंतिम बार 4 अप्रैल, 2004 को वडाक्कुमेलुर ग्राम में पंगुनी उतिरम त्यौहार के दौरान मरियम्मन मंदिर में देखा गया था । मृतक का शव सात दिनों से अधिक समय के पश्चात् अग्निशमन सेवा के कार्मिकों द्वारा बोर-वैल से निकाला गया था । अभिलेख पर अन्य कोई भी सकारात्मक सामग्री नहीं है जिससे यह दर्शित होता हो कि मृतक को अंतिम बार अभियुक्तों के साथ देखा गया था और सात दिनों की अंतर्वर्ती अवधि के दौरान मृतक के संपर्क में अन्य कोई व्यक्ति नहीं आया था । वर्तमान मामले में जैसाकि ऊपर विचार किया गया है, सेशन न्यायाधीश ने अंतिम बार देखे गए साक्ष्य के आधार पर अभियुक्त-1 से अभियुक्त-3 को दोषसिद्ध किया है; "अंतिम बार देखे जाने" की परिस्थिति के संबंध में वलारमती (अभि. सा. 1), अमृतावल्ली (अभि. सा. 2) और मुरुगन (अभि. सा. 4) का साक्ष्य और अभियोजन पक्षकथन संदिग्ध हो जाता है । उच्च न्यायालय उपर्युक्त तथ्य का मूल्यांकन करने में असफल रहा है और सेशन न्यायाधीश द्वारा पारित किए गए दोषसिद्धि के आदेश की पुष्टि करने में त्रुटि की है । (पैरा 23 और 25)

अवलंबित निर्णय

		पैरा
[2005]	(2005) 12 एस. सी. सी. 438 : **जसवंत गीर** बनाम **पंजाब राज्य** ;	23

[2002]	(2002) 8 एस. सी. सी. 45 : **बोधराज** बनाम **जम्मू-कश्मीर राज्य** ;	22
[1994]	(1994) (सप्ली.) 2 एस. सी. सी. 372 : **अर्जुन मारिक और अन्य** बनाम **बिहार राज्य** ।	21

अपीली (दांडिक) अधिकारिता : 2010 की दांडिक अपील सं. 512.

2005 की दांडिक अपील सं. 1009 में मद्रास, उच्च न्यायालय के तारीख 31 मार्च, 2008 के निर्णय और आदेश के विरुद्ध अपील ।

अपीलार्थी की ओर से	सर्वश्री आर. बालासुब्रह्मण्यम (वरिष्ठ अधिवक्ता), टी. आर. बी. शिवकुमार, कर्वणाकर और के. वी. विजय कुमार
प्रत्यर्थी की ओर से	सर्वश्री एम. योगेश कन्ना, ए. संत कुमारन और (सुश्री) वनीता सी. गिरि

न्यायालय का निर्णय न्यायमूर्ति सुधांशु ज्योति मुखोपाध्याय ने दिया ।

न्या. मुखोपाध्याय – यह अपील 2005 की दांडिक अपील सं. 1009 में मद्रास, उच्च न्यायालय द्वारा पारित किए गए तारीख 31 मार्च, 2008 के निर्णय के विरुद्ध की गई है । विद्वान् सेशन न्यायाधीश ने अपीलार्थियों को भारतीय दंड संहिता, 1860 (जिसे संक्षेप में "दंड संहिता" कहा गया है) की धारा 34 के साथ पठित धारा 364, 302 और 201 के अधीन अपराधों के लिए दोषसिद्ध और दंडादिष्ट किया और अपीलार्थियों ने इस आदेश के विरुद्ध उच्च न्यायालय के समक्ष अपील फाइल की, उच्च न्यायालय ने अपने आक्षेपित निर्णय द्वारा विचारण न्यायालय द्वारा की गई दोषसिद्धि और उसके दंडादेश की पुष्टि करते हुए अपील खारिज कर दी ।

2. संक्षेप में अभियोजन पक्षकथन निम्न प्रकार है :–

> घटना की तारीख अर्थात् 4 अप्रैल, 2004 के पूर्व मृतक मणिकंदन ने कृष्णन **उर्फ** रामास्वामी (अभियुक्त-1) और सेलवम (अभियुक्त-5) की पुत्री राजेश्वरी के समक्ष अपना प्रेम-प्रस्ताव रखा । इस कारण तनाव पैदा हो गया जिसके परिणामस्वरूप एक ओर अभियुक्तों और दूसरी ओर मृतक मणिकंदन के बीच शत्रुता हो गई ।

मृतक को नेवेली क्षेत्र से निष्कासित कर दिया गया । तत्पश्चात् तारीख 4 अप्रैल, 2004 को वेलुदैयानपट्टू ग्राम में चल रहे पंगुनी उतिरम कबड्डी समारोह के दौरान मृतक उसमें सम्मिलित होने आया । उक्त तारीख को लगभग 6.30 बजे अपराह्न में मृतक वडक्कुमेलुर स्थिति स्कूल के पीछे अपने साथियों के साथ बात कर रहा था । उस समय कृष्णन **उर्फ** रामास्वामी (अभियुक्त-1), राजेन्द्रन **उर्फ** चिन्नू (अभियुक्त-2), रामालिंगम (अभियुक्त-3) और सेलवम (अभियुक्त-5) वहां आए और मृतक मणिकंदन को मरियम्मन मंदिर के निकट एक स्थान पर ले गए और उस पर हमला किया । इसके पश्चात् वे उसे ऑटोरिक्शा में ले गए जिसका पंजीकरण सं. टीएन-31वाई-2376 था और इस बहाने से उसका अपहरण कर लिया कि मृतक को पुलिस थाने ले जाया जा रहा है । रास्ते में अभियुक्तों ने 6.15 बजे अपराह्न में विजेन्द्रन की दुकान से ब्रांडी खरीदी और मृतक को ऑटोरिक्शा से बाहर निकाला गया । विजेन्द्रन ने अभियुक्तों को वहां जमा होने से मना किया । इसके पश्चात् अभियुक्त-1, अभियुक्त-2 और अभियुक्त-3 मृतक मणिकंदन को सड़क के उस ओर ले गए जहां से वडक्कुमेलुर को रास्ता जाता है और नीम के पेड़ के नीचे मणिकंदन को ब्रांडी पीने के लिए विवश किया गया । मध्यरात्रि में लगभग 12.00 बजे अभियुक्त-1 और अभियुक्त-2 ने मृतक मणिकंदन की गर्दन के चारों ओर उसकी तौलिया को लपेटकर उसका गला घोंट दिया । इसके पश्चात्, अभियुक्त-1 अभियुक्त-2 और अभियुक्त-3 ने शव को बोर-वैल में डाल दिया ।

3. तारीख 10 अप्रैल, 2004 को मृतक मणिकंदन की माता द्वारा की गई शिकायत के आधार पर दंड संहिता की धारा 365 के अधीन अपराध के लिए मामला रजिस्ट्रीकृत किया गया । तारीख 13 अप्रैल, 2004 को पुलिस ने रामास्वामी (अभियुक्त-3) को गिरफ्तार किया जिसने स्वेच्छया संस्वीकृति कथन दिया जिसके अनुसरण में अभियुक्त-3 पुलिस को बोर-वेल पर ले गया जहां पर अभियुक्तों ने शव छुपाया था । अभियुक्त-3 द्वारा बोर-वेल की शनाख्त किए जाने के आधार पर पुलिस द्वारा कुरिन्जीपड़ी अग्निशमन सेवा के कार्मिक की सहायता से शव बोर-वेल से बाहर निकाला गया । वलारमती (अभि. सा. 1), अमृतावल्ली (अभि. सा. 2), गोपाल (अभि. सा. 3), मुरुगन (अभि. सा. 4) और राजेश्वरी (अभि. सा. 5) द्वारा शव की शनाख्त की गई कि यह मणिकंदन का है । शव को पनरुति

सरकारी अस्पताल भेज दिया गया जहां पर तारीख 14 मार्च, 2004 को 6.00 बजे पूर्वाह्न में साक्षियों और पंचायतदारों की मौजूदगी में कब्बादासन (अभि. सा. 13) द्वारा मृत्यु समीक्षा की गई । मृत्यु समीक्षा रिपोर्ट प्रदर्श पी-17 है । प्रदर्श पी-9 शवपरीक्षण प्रमाणपत्र है और प्रदर्श पी-10 उस चिकित्सक द्वारा दी गई राय है जिसने शवपरीक्षण किया है । अन्वेषक अधिकारी कन्नादासन (अभि. सा. 13) को यह पता चला कि अन्य अभियुक्तों ने स्वयं न्यायालय के समक्ष अभ्यर्पण किया है । तारीख 26 मई, 2004 को जांच पूरी करने के पश्चात्, कन्नादासन (अभि. सा. 13) ने दंड संहिता की धारा 364, 365, 302 और 201 के अधीन अपराधों के लिए अभियुक्तों के विरुद्ध न्यायालय में आरोप पत्र प्रस्तुत किया है । सेशन न्यायाधीश ने अभियुक्तों को न्यायालय में पेश कराया, उनके विरुद्ध दंड संहिता की धारा 364, 365, 302 और 201 के अधीन आरोप विरचित किए । सभी अभियुक्तों ने दोषी न होने का अभिवाक् किया और विचारण किए जाने की मांग की ।

4. अभियोजन पक्ष ने अपना पक्षकथन साबित करने के लिए कुल मिलाकर 13 साक्षियों की परीक्षा की, प्रदर्श पी-1 से प्रदर्श पी-22 तक दस्तावेज प्रस्तुत किए और तात्विक वस्तु - 1 से 4 तक को चिह्नांकित किया । जब अभियुक्तों से उनके विरुद्ध उपलब्ध अपराधजन्य सामग्री के आधार पर दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 की धारा 313 के अधीन प्रश्न किए गए तो उन्होंने अपने विरुद्ध रखी गई प्रत्येक परिस्थिति से इनकार करते हुए उसे मिथ्या और तथ्यों के प्रतिकूल बताया । अभियुक्तों की ओर से न तो कोई मौखिक साक्ष्य और न ही कोई दस्तावेजी साक्ष्य प्रस्तुत किया गया है । अभिलेख पर प्रस्तुत संपूर्ण सामग्री पर विचार करने और पक्षकारों को सुनने के पश्चात्, सेशन न्यायालय ने यह निष्कर्ष निकाला कि अभियोजन पक्ष ने दंड संहिता की धारा 34 के साथ पठित धारा 364, 302 और 201 के अधीन अपराधों के लिए केवल अभियुक्त-1 से अभियुक्त-3 के विरुद्ध ही अपना पक्षकथन साबित किया है और सेशन न्यायालय ने अभियुक्त-4 और अभियुक्त-5 को उन पर लगाए गए आरोपों से दोषमुक्त कर दिया ।

5. अभियुक्त-1 से अभियुक्त-3 ने अपनी दोषसिद्धि और दंडादेश को चुनौती देने के लिए उच्च न्यायालय के समक्ष आवेदन किया और उच्च न्यायालय ने अपने आक्षेपित निर्णय द्वारा उनकी अपील खारिज कर दी ।

6. अपीलार्थियों के विद्वान् काउंसेल ने यह दलील दी है कि सेशन न्यायाधीश ने हितबद्ध साक्षियों के परिसाक्ष्य को स्वीकार किया है और पारिस्थितिक साक्ष्य के आधार पर अपीलार्थियों को दोषसिद्ध किया गया है । उन्होंने यह भी दलील दी है कि अभियोजन पक्षकथन केवल पारिस्थितिक साक्ष्य पर आधारित है किंतु अभियोजन पक्ष साक्ष्य की शृंखला की किसी भी कड़ी को तोड़े बिना परिस्थितियों को साबित करने में असफल रहा है और उसने अपीलार्थियों को अंतिम बार देखे गए सिद्धांत तथा अभियुक्त-3 की संस्वीकृति के आधार पर ही दोषसिद्ध किया है । काउंसेल ने यह भी दलील दी है कि अपीलार्थी (अभियुक्त-1 से अभियुक्त-3) का भी यही पक्षकथन है जैसा अभियुक्त-4 और अभियुक्त-5 ने किया है जिन्हें संदेह का लाभ दिया गया है और ऐसा लाभ अभियुक्त-1 से अभियुक्त-3 को नहीं दिया गया है ।

7. सेशन न्यायाधीश द्वारा पारित किए गए निर्णय से, जिसकी पुष्टि उच्च न्यायालय द्वारा की गई है, हमारा यह निष्कर्ष है कि आयोजन पक्षकथन केवल पारिस्थितिक साक्ष्य पर आधारित है । न्यायालय ने मुख्य रूप से मृतक मणिकंदन की माता वलारमती (अभि. सा. 1) के साक्ष्य, अभियुक्त-3 की संस्वीकृति और शवपरीक्षण रिपोर्ट का अवलंब लिया है ।

8. वलारमती (अभि. सा. 1) के साक्ष्य से यह प्रकट होता है कि उसके पुत्र मणिकंदन ने अभियुक्त-1 की पुत्री को एक फूल दिया था और चूंकि अभियुक्त-1 मणिकंदन से अत्यधिक खिन्न था इसलिए वलारमती ने अपने पुत्र को अभियुक्त से बचाने के लिए नियोजन हेतु केरल भेज दिया । कुछ समय पश्चात् मणिकंदन पंगुनी उतिरम का त्यौहार मनाने के लिए अपने मूल ग्राम में आया और जब एक दिन सायंकाल में वह अपने मित्रों से बात कर रहा था, अभियुक्त-1 उसे अभियुक्त-4 के पास पूछताछ के लिए ले गया और यह सुनकर वलारमती (अभि. सा. 1) उस स्थान अर्थात् मरियम्मन मंदिर पर गई जहां अभियुक्त-1 से अभियुक्त-4 मणिकंदन से पूछताछ कर रहे थे । उसने अभियुक्तों द्वारा अपने पुत्र की पिटाई होते हुए देखा और वह उस समय अचेत अवस्था में था । वह वहां से चली गई और ग्राम के मुखिया को लेकर आई । इसके पश्चात्, अभियुक्त मणिकंदन को वहां से ऑटोरिक्शा में बैठाकर ले गए । वलारमती ने तुरंत ग्राम के वरिष्ठ व्यक्तियों को सूचित किया । ग्राम का मुखिया उसके साथ आया और उसने इस प्रकार की जा रही पिटाई को रोका । मुखिया ने अभियुक्तों से कहा कि वे उसे पुलिस थाने में छोड़ दें । अभियुक्तों ने मणिकंदन को

7.30 बजे अपराह्न तक अपने पास रखा । उन्होंने चिन्नू **उर्फ** राजेन्द्रन (अभियुक्त-2) को ऑटोरिक्शा लाने के लिए भेजा, अभियुक्त-1, अभियुक्त-2 और अभियुक्त-3 ने वलारमती के पुत्र को उस ऑटोरिक्शा में बैठाया । उसका पुत्र अगले दिन तक वापस नहीं आया । इसके पश्चात् रामास्वामी (अभियुक्त-1) वलारमती के मकान के पास से गुजरा जिससे उसने अपने पुत्र के बारे में पूछताछ की, जिस पर रामास्वामी ने यह उत्तर दिया कि उसका पुत्र दो दिन के भीतर वापस आ जाएगा । जब वलारमती ने अभियुक्त-1 से और पूछताछ की तो उसने यह उत्तर दिया कि उसने उसके पुत्र को 100/- रुपए देकर केरल भेज दिया है । अगले दिन अर्थात् छठे दिन वलारमती ने पुनः अभियुक्त-1 से अपने पुत्र के बारे में मालूम किया और उसने उससे कहा कि वह अपने पुत्र के लापता होने की शिकायत करेगी । तत्पश्चात्, छह दिन बीत जाने पर वलारमती ने पुलिस थाने (नेवेली टाउनशिप, ब्लॉक - 8) में शिकायत फाइल की । पुलिस पहले ही रामालिंगम (अभियुक्त-3) से इस मामले के संबंध में जांच कर रही थी और उसके द्वारा दिए गए कथन के आधार पर वलारमती के पुत्र का शव अग्निशमन सेवा के कार्मिकों द्वारा एक गहरे बोर-वैल से बरामद किया गया ।

9. वलारमती (अभि. सा. 1) ने अपनी प्रतिपरीक्षा के दौरान यह स्वीकार किया है कि उसने अपने पुत्र के लापता होने के छह दिन बाद शिकायत दर्ज कराई थी । उसने यह भी स्वीकार किया है कि उसने अपनी शिकायत में यह कथन नहीं किया है कि निरीक्षक द्वारा जांच कराए जाने के दौरान उसने अभियुक्त-1 से अपने पुत्र के बारे में मालूम किया था और अभियुक्त-1 ने वलारमती को यह उत्तर दिया था कि उसका पुत्र दो दिनों के भीतर वापस आ जाएगा । वलारमती ने यह भी कथन किया है कि उसने यह शिकायत (प्रदर्श पी-1) एक ऑटोरिक्शा के ड्राइवर को बोल-बोलकर लिखाई थी । ऑटोरिक्शा के ड्राइवर की परीक्षा नहीं कराई गई है ।

10. अमृतावल्ली (अभि. सा. 2), वलारमती अर्थात् अभि. सा. 1 (शिकायतकर्ता) की बड़ी बहिन है । उसने यह कथन किया है कि मणिकंदन केरल गया था और वह पंगुनी उतिरम का त्यौहार मनाने पिछले वर्ष वापस आया था । जब वह लगभग 6.00 बजे मकान के प्रवेशद्वार पर लेटा हुआ था, पांचों अभियुक्तों ने, जो वहां मौजूद थे, वलारमती के मकान पर आए और वे मणिकंदन को पूछताछ के लिए मरियम्मन मंदिर ले गए । उन्होंने वहां पर मणिकंदन की पिटाई की । इसके पश्चात् ग्राम के मुखिया

ने उनसे मणिकंदन की पिटाई न करने को कहा और उनसे यह भी कहा कि वे मणिकंदन को पुलिस के सुपुर्द कर दें । तत्पश्चात् 8.00 बजे अभियुक्त राजेन्द्रन एक ऑटोरिक्शा लाया । अभियुक्त राजेन्द्रन, चक्काराई, रामास्वामी और रामालिंगम ने मणिकंदन को उस ऑटो में बैठा दिया । वे उनके साथ नहीं गए क्योंकि अंधेरा हो गया था ।

11. अमृतावल्ली ने अपनी प्रतिपरीक्षा में यह कथन किया है कि जब वे पुलिस थाने गए, रामास्वामी (अभियुक्त-1) मृतक मणिकंदन को पुलिस थाने लाया । अतः उन्होंने मालूम किया कि क्या मणिकंदन वहां मौजूद है । पुलिस वालों ने यह उत्तर दिया कि मणिकंदन उनके सुपुर्द नहीं किया गया है ।

12. नेवेली के एक निवासी कुली ने, जिसका नाम मुरुगन (अभि. सा. 4) है, यह कथन किया है कि वह मणिकंदन का दोस्त है । उसने यह भी कथन किया है कि मृतक और अभियुक्त के बीच शत्रुता थी क्योंकि मणिकंदन अभियुक्त-1 और अभियुक्त-5 की पुत्री राजेश्वरी से प्रेम करता था । अभियुक्त-1 से धमकी दिए जाने के कारण, मणिकंदन ग्राम छोड़कर चला गया था । इस साक्षी ने यह कथन किया है कि लगभग 6.00 बजे अपराह्न में वह मंदिर गया था । इसके पश्चात् यह पाया गया कि सभी अभियुक्तों और रामास्वामी ने मणिकंदन से मंदिर में पूछताछ की । जब वे पूछताछ कर रहे थे, तब उन्होंने मणिकंदन की पिटाई की । अपनी प्रतिपरीक्षा के दौरान मुरुगन (अभि. सा. 4) ने यह स्वीकार किया है कि उसने किसी भी व्यक्ति को मणिकंदन के बारे में कोई सूचना नहीं दी थी । उसने मणिकंदन के लापता होने पर की गई तलाशी में भाग नहीं लिया था । उसने मणिकंदन की माता से तीसरे दिन उसके लापता होने के संबंध में मालूम किया था और मणिकंदन की माता ने उससे बताया कि मणिकंदन के संबंध में कोई भी जानकारी नहीं मिली है । मुरुगन ने यह भी स्वीकार किया है कि 11 अप्रैल, 2004 को, पुलिस ने उससे मणिकंदन के बारे में पूछताछ की थी, उसने मणिकंदन के संबंध में किसी भी व्यक्ति को यह नहीं बताया था कि घटना चौथे और ग्यारहवें दिन के बीच घटित हुई है ।

13. वलारमती (अभि. सा. 1) ने प्रथम इत्तिला रिपोर्ट में अमृतावल्ली (अभि. सा. 2) और मुरुगन (अभि. सा. 4) की घटनास्थल अर्थात् मरियम्मन मंदिर पर मौजूदगी को प्रकट नहीं किया है । अमृतावल्ली (अभि.

सा. 2) और मुरुगन (अभि. सा. 4) के संबंध में कोई भी कथन नहीं किया गया है । वलारमती (अभि. सा. 1) ने घटनास्थल पर अमृतावल्ली (अभि. सा. 2) की मौजूदगी को प्रकट नहीं किया है । ग्राम के मुखिया, सुप्पारायन द्वारा मृतक को अंतिम बार अभियुक्त-1 और अभियुक्त-4 के साथ देखा गया था जिसने यह कथन किया है कि वह घटनास्थल पर मौजूद था जहां पर मृतक को अंतिम बार अभियुक्तों के साथ देखा गया था और इस व्यक्ति को अभियोजन साक्षी के रूप में नामित नहीं किया गया है और न ही इसकी परीक्षा कराई गई है । मणिकंदन के लापता होने के संबंध में शिकायत दर्ज कराए जाने में छह दिनों से अधिक समय का असामान्य विलंब है किंतु वलारमती (अभि. सा. 1) ने इस शिकायत को दर्ज कराने में हुए विलंब को स्पष्ट नहीं किया है ।

14. वलारमती (अभि. सा. 1) ने अपने कथन में यह उल्लेख किया है कि मृतक मणिकंदन को अंतिम बार अभियुक्त-1 से अभियुक्त-4 के साथ मरियम्मन मंदिर में देखा गया था । अमृतावल्ली (अभि. सा. 2) ने अपने कथन में यह उल्लेख किया है कि मृतक को अंतिम बार पुलिस थाने में देखा गया था । अभियोजन का यह पक्षकथन है कि मृतक मणिकंदन को अंतिम बार उस ऑटोरिक्शा में देखा गया था जिसमें उसे अभियुक्त-1 के मकान से अपहरण करके ले जाया गया था ।

15. वलारमती (अभि. सा. 1) ने शिकायत (प्रदर्श पी-1) में यह उल्लेख किया है कि मणिकंदन रात में सो रहा था । प्रथमइत्तिला रिपोर्ट (प्रदर्श पी-13) में अभियुक्त का हेतु प्रकट नहीं किया गया है । अभियुक्त-3 को प्रथमइत्तिला रिपोर्ट में नामित भी नहीं किया गया है ।

16. मृतक मणिकंदन की माता वलारमती (अभि. सा. 1) ने जिस रीति में तारीख 4 अप्रैल, 2004 को घटित हुई घटना के ब्यौरे दिए हैं उससे यह दर्शित होता है जैसे वलारमती ने घटना के प्रत्येक प्रक्रम को देखा हो अर्थात् अभियुक्तों ने मृतक मणिकंदन का किस प्रकार अपहरण किया, किस प्रकार उसे मरियम्मन मंदिर में पीटा गया, किस प्रकार ऑटोरिक्शा में ले जाया गया, किस प्रकार एक स्थान से दूसरे स्थान पर पहुंचाया गया और किस प्रकार वे पुलिस थाने गए । अभियुक्त-3 के संबंध में वलारमती (अभि. सा. 1) का कथन (अभियोजन वृत्तांत में) सुधार दर्शाता है जिसका स्पष्टीकरण नहीं दिया गया है । वलारमती के अभिसाक्ष्य में ऑटोरिक्शा में घटित हुई अभियुक्तों से लेकर मृतक तक की कहानी एक

अन्य सुधार है जिसका उल्लेख वलारमती ने प्रथम इत्तिला रिपोर्ट (प्रदर्श पी-13) में नहीं किया है ।

17. अभिलेख पर प्रस्तुत सामग्री को निर्दिष्ट करते हुए, अपीलार्थियों के विद्वान् काउंसेल ने यह दलील दी है कि उस स्थान और समय के बारे में संदेह है जहां पर मृतक मणिकंदन को अभियुक्तों के साथ अंतिम बार देखा गया था ।

18. अभियोजन पक्षकथन मुख्य रूप से घटनास्थल और मृतक मणिकंदन का अभियुक्त-1 से अभियुक्त-3 के साथ देखे जाने पर आधारित है । वलारमती (अभि. सा. 1) के अनुसार मृतक मणिकंदन को अंतिम बार अभियुक्त-1 से अभियुक्त-4 के साथ मरियम्मन मंदिर में देखा गया था । अमृतावल्ली (अभि. सा. 2) मृतक की मौसी है । वलारमती (अभि. सा. 1) ने घटनास्थल पर अमृतावल्ली (अभि. सा. 2) की मौजूदगी को प्रकट नहीं किया है जहां पर मृतक को अभियुक्त-1 से अभियुक्त-4 के साथ अंतिम बार देखा गया था । यदि अमृतावल्ली (अभि. सा. 2) के कथन को स्वीकार कर लिया जाए, तब भी उसके कथानुसार मृतक को अंतिम बार अभियुक्त-1 अर्थात् रामास्वामी के साथ पुलिस थाने में देखा गया था जो मृतक मणिकंदन को वहां लेकर आया था ।

19. अभियोजन पक्ष अमृतावल्ली (अभि. सा. 2) के उस कथन को स्पष्ट करने में असफल रहा है जो उसने अपनी प्रतिपरीक्षा के दौरान दिया था जिसमें अमृतावल्ली ने यह उल्लेख किया था कि जब उसने पुलिस से मणिकंदन के बारे में मालूम किया तब पुलिस ने यह उत्तर दिया कि मणिकंदन उनके सुपुर्द नहीं किया गया है । अतः, अमृतावल्ली (अभि. सा. 2) की घटनास्थल पर मौजूदगी संदिग्ध हो जाती है । इस साक्षी के अत्यंत हितबद्ध होने और उपर्युक्त विरोधाभासों को दृष्टिगत करने पर उसके कथन का अवलंब नहीं लिया जा सकता ।

20. सह-अपराधी के परिसाक्ष्य को एक अन्य अभियुक्त के विरुद्ध प्रयोग नहीं किया जा सकता है । अभियुक्त-3 के परिसाक्ष्य के आधार पर, यदि शव बरामद किया गया है, तब अभियुक्त-1 और अभियुक्त-2 को दोषसिद्ध नहीं किया जा सकता है । यदि राजेन्द्रन **उर्फ** सक्काराई (अभियुक्त-4) तथा अभियुक्त-1 से अभियुक्त-3 को अंतिम बार मृतक मणिकंदन के साथ देखा गया था तब ऐसी स्थिति में विचारण न्यायालय ने अभियुक्त-4 को संदेह का लाभ दिया है किंतु यह स्पष्ट नहीं है कि यही

लाभ अभियुक्त-1 से अभियुक्त-3 को क्यों नहीं दिया है ।

21. मृतक के साथ अंतिम बार देखे गए मात्र पारिस्थितिक साक्ष्य के आधार पर दोषसिद्धि नहीं की जा सकती है । **अर्जुन मारिक और अन्य** बनाम **बिहार राज्य**[1] वाले मामले में इस न्यायालय ने निम्न मत व्यक्त किया है :–

> "31. इस प्रकार यह साक्ष्य अत्यंत संदिग्ध और निष्परिणामी है कि अपीलार्थी 19 जुलाई, 1985 को सायंकाल में सीताराम के पास गया था और मृतक सीताराम के मकान में रात्रि में ठहरा था । यदि यह स्वीकार कर लिया जाए कि वे वहां थे तब अपीलार्थियों का मृतक के साथ अंतिम बार देखा जाना सबसे ठोस साक्ष्य होता । किंतु यह सुस्थापित विधि है कि अंतिम बार देखे जाने की मात्र परिस्थिति यदि साक्ष्य की शृंखला को इस प्रकार पूरा न करे कि उसके आधार पर यह निष्कर्ष अभिलिखित किया जा सके कि साक्ष्य अभियुक्त के दोषी होने की परिकल्पना के साथ ही संगत है, तब ऐसी स्थिति में मात्र इस आधार पर दोषसिद्धि नहीं की जा सकती है ।"

22. **बोधराज** बनाम **जम्मू-कश्मीर राज्य**[2] वाले मामले में इस न्यायालय ने यह अभिनिर्धारित किया है कि अंतिम बार देखे जाने का सिद्धांत तब लागू होता है जहां मृतक को अभियुक्त के साथ अंतिम बार जीवित देखे जाने और मृतक के मृत पाए जाने के बीच समयांतराल इतना कम हो कि अभियुक्त से अन्यथा किसी व्यक्ति के अपराध में भाग लेने की संभावना न रहे । ऐसे मामलों में अभियुक्त के दोषी होने का निष्कर्ष निकालना हानिकर होगा जिनमें अन्य कोई ऐसा सकारात्मक साक्ष्य न हो जिससे यह निष्कर्ष निकले कि अभियुक्त और मृतक को एक साथ अंतिम बार देखा गया था ।

23. प्रथम इत्तिला रिपोर्ट दर्ज कराए जाने में छह दिन का विलंब है जिसके संबंध में स्पष्टीकरण नहीं दिया गया है । अभियोजन वृत्तांत के अनुसार मृतक मणिकंदन को अंतिम बार 4 अप्रैल, 2004 को वडाक्कुमेलुर ग्राम में पंगुनी उतिरम त्यौहार के दौरान मरियम्मन मंदिर में देखा गया था । मृतक का शव सात दिनों से अधिक समय के पश्चात् अग्निशमन सेवा के

---

[1] (1994) (सप्ली.) 2 एस. सी. सी. 372.

[2] (2002) 8 एस. सी. सी. 45.

कार्मिकों द्वारा बोर-वैल से निकाला गया था । अभिलेख पर अन्य कोई भी सकारात्मक सामग्री नहीं है जिससे यह दर्शित होता हो कि मृतक को अंतिम बार अभियुक्तों के साथ देखा गया था और सात दिनों की अंतर्वर्ती अवधि के दौरान मृतक के संपर्क में अन्य कोई व्यक्ति नहीं आया था ।

24. **जसवंत गीर** बनाम **पंजाब राज्य**[1] वाले मामले में इस न्यायालय ने यह भी अभिनिर्धारित किया है कि पारिस्थितिक साक्ष्य की शृंखला में किसी भी कड़ी के न होने पर यदि अभियोजन साक्षियों के साक्ष्य को स्वीकार कर लिया जाए तब भी अपीलार्थी को मात्र "अंतिम बार एक साथ देखे गए" साक्ष्य के आधार पर दोषसिद्ध नहीं किया जा सकता है ।

25. वर्तमान मामले में जैसाकि ऊपर विचार किया गया है, सेशन न्यायाधीश ने अंतिम बार देखे गए साक्ष्य के आधार पर अभियुक्त-1 से अभियुक्त-3 को दोषसिद्ध किया है; "अंतिम बार देखे जाने" की परिस्थिति के संबंध में वलारमती (अभि. सा. 1), अमृतावल्ली (अभि. सा. 2) और मुरुगन (अभि. सा. 4) का साक्ष्य और अभियोजन पक्षकथन संदिग्ध हो जाता है । उच्च न्यायालय उपर्युक्त तथ्य का मूल्यांकन करने में असफल रहा है और सेशन न्यायाधीश द्वारा पारित किए गए दोषसिद्धि की आदेश की पुष्टि करने में त्रुटि की है ।

26. उपर्युक्त कारणों के आधार पर हम 2005 की दांडिक अपील सं. 1009 में मद्रास उच्च न्यायालय द्वारा पारित किए गए तारीख 31 मार्च, 2008 के आक्षेपित निर्णय और 2005 के सेशन मामला सं. 61 में सेशन न्यायाधीश द्वारा पारित किए गए 17 नवंबर, 2005 के दोषसिद्धि के आक्षेपित आदेश और दंडादेश को अपास्त करते हैं । अपील मंजूर की जाती है । यदि अपीलार्थी अन्य किसी मामले में वांछित नहीं है तो उन्हें तत्काल उन्मुक्त किए जाने का निदेश दिया जाता है ।

अपील मंजूर की गई ।

अस./अनू.

---

[1] (2005) 12 एस. सी. सी. 438.

मनोहर लाल

बनाम

हरियाणा राज्य

1 जुलाई, 2014

न्यायमूर्ति सुधांशु ज्योति मुखोपाध्याय और न्यायमूर्ति दीपक मिश्रा

दंड संहिता, 1860 (1860 का 45) – धारा 304ख – दहेज मृत्यु – पत्नी की जला कर हत्या किया जाना – दहेज की मांग किया जाना किंतु मृतका को तंग किए जाने का साक्ष्य न होना – शिकायतकर्ता द्वारा विशेष घटना का उल्लेख न किया जाना – शिकायतकर्ता द्वारा घटना का विशेष उल्लेख न किए जाने और यह साबित न किए जाने पर कि मृतका की मृत्यु के कुछ पूर्व दहेज की मांग के लिए उसके साथ क्रूरता की गई थी, अपीलार्थी को दहेज मृत्यु के अपराध का दोषी ठहराना न्यायोचित नहीं होगा ।

इस मामले में मृतका फुल्लन **उर्फ** दर्शना का विवाह अपीलार्थी मनोहर लाल के साथ हुआ था । अभियोजन पक्षकथन के अनुसार मृतका को दहेज के लिए तंग किया गया जिसके परिणामस्वरूप मृतका को आग में जलाकर उसकी हत्या कर दी गई । अपीलार्थी सहित अन्य कई अभियुक्तों को, जो उसके परिवार के सदस्य थे, दंड संहिता की धारा 498क और धारा 304ख के अधीन अपराध के लिए विचारण न्यायालय द्वारा आरोपित किया गया । विचारण के पश्चात् न्यायालय ने अपीलार्थी सहित सभी अभियुक्तों को दंड संहिता की धारा 498क के अधीन अपराध से दोषमुक्त कर दिया किंतु केवल अपीलार्थी को दंड संहिता की धारा 304ख के अधीन दहेज मृत्यु के अपराध के लिए दोषसिद्ध कर दिया । इसके पश्चात् अपीलार्थी ने विचारण न्यायालय के इस आदेश के विरुद्ध हरियाणा उच्च न्यायालय के समक्ष अपील फाइल की । उच्च न्यायालय ने विचारण न्यायालय के निर्णय को उचित ठहराते हुए अपीलार्थी की अपील खारिज कर दी और अपीलार्थी की दोषसिद्धि कायम रखी । अपीलार्थी ने उच्च न्यायालय के आक्षेपित निर्णय से व्यथित होकर उच्चतम न्यायालय के समक्ष अपील फाइल की । उच्चतम न्यायालय ने निचले दोनों न्यायालयों के निर्णयों को अमान्य ठहराया । अपीलार्थी की अपील मंजूर करते हुए,

अभिनिर्धारित – शिकायतकर्ता (अभि. सा. 1) का कथन साधारण है न कि विशिष्ट । कोई भी विशेष घटना का उल्लेख नहीं किया गया है जिससे यह

उपदर्शित होता हो कि अभियुक्त मनोहर लाल द्वारा क्रूरता की गई है या तंग किया गया है । इस साक्षी का कथन विश्वसनीय और विश्वासप्रद नहीं है । यद्यपि दहेज की मांग किए जाने का अभिकथन किया गया है किंतु अभि. सा. 1 सहित किसी भी साक्षी ने यह कथन नहीं किया है कि मृतका को उसकी मृत्यु के कुछ पूर्व दहेज की मांग के लिए या उसके संबंध में तंग किया गया था । अभियुक्त अपीलार्थी को दंड संहिता की धारा 498क और 304ख के अधीन आरोपित किया गया है किंतु विचारण न्यायालय ने अभियुक्त को दंड संहिता की धारा 498क के अधीन दोषसिद्ध नहीं किया है । इस पृष्ठभूमि के आधार पर, हमारा यह मत है कि अभियोजन पक्ष यह साबित करने में पूर्णतया असफल रहा है कि अभियुक्त ने मृतका को दहेज की मांग के लिए या उसके संबंध में उसकी मृत्यु के कुछ पूर्व उसे तंग किया था । उपर्युक्त कारणों के आधार पर, विचारण न्यायालय द्वारा पारित किए गए तारीख 26 अगस्त, 1994 के निर्णय को, जिसे उच्च न्यायालय के तारीख 26 मार्च, 2007 के आक्षेपित निर्णय द्वारा कायम रखा गया था, कायम नहीं रखा जा सकता है । (पैरा 21 और 22)

निर्दिष्ट निर्णय

		पैरा
[2004]	(2004) 7 एस. सी. सी. 724 : **बलवंत सिंह और एक अन्य** बनाम **पंजाब राज्य** ;	19
[2003]	ए. आई. आर. 2003 एस. सी. 3828 : **कालियापेरूमल** बनाम **तमिलनाडु राज्य** ;	17
[2003]	(2003) 8 एस. सी. सी. 80 : **हीरा लाल और अन्य** बनाम **राज्य (राष्ट्रीय राजधानी राज्यक्षेत्र, दिल्ली सरकार)** ;	19
[2001]	(2001) 9 एस. सी. सी. 417 : **सुनील बजाज** बनाम **मध्य प्रदेश राज्य** ।	18

अपीली (दांडिक) अधिकारिता : 2009 की दांडिक अपील सं. 1188.

1994 की दांडिक अपील सं. 529 में पंजाब और हरियाणा उच्च न्यायालय की एकल न्यायपीठ के तारीख 26 मार्च, 2007 के निर्णय और आदेश के विरुद्ध अपील ।

अपीलार्थी की ओर से सर्वश्री मुकेश शर्मा और रामेश्वर प्रसाद गोयल

प्रत्यर्थी की ओर से सुश्री संतोष सिंह, श्री राकेश कुमार मुदगल, श्री दिनेश मुदगल और सुश्री शारदा हुड्डा

न्यायालय का निर्णय न्यायमूर्ति सुधांशु ज्योति मुखोपाध्याय ने दिया ।

न्या. मुखोपाध्याय – यह अपील 1994 की दांडिक अपील सं. 529 में पंजाब और हरियाणा, उच्च न्यायालय, चण्डीगढ़ की एकल न्यायपीठ द्वारा पारित किए गए तारीख 26 मार्च, 2007 के निर्णय के विरुद्ध फाइल की गई है । उच्च न्यायालय ने आक्षेपित निर्णय द्वारा उस अपील को खारिज कर दिया और भारतीय दंड संहिता, 1860 (जिसे संक्षेप में "दंड संहिता" कहा गया है) की धारा 304ख के अधीन अपीलार्थी की दोषसिद्धि और दंडादेश को कायम रखा जिसके लिए उसे सात वर्ष का कठोर कारावास भोगने के लिए दंडादिष्ट किया गया ।

2. अभियोजन पक्षकथन इस प्रकार है कि फुल्लन **उर्फ** दर्शना (मृतका) का विवाह उसकी मृत्यु के लगभग 5 वर्ष पूर्व अर्थात् 27 अगस्त, 1991 को अभियुक्त मनोहर लाल के साथ हुआ था । उसे दहेज के लिए तंग किया गया और अंत में दाह क्षतियों के कारण उसकी मृत्यु हो गई । मृतका की माता राज रानी (अभि. सा. 1), घटना की जानकारी प्राप्त होने पर, सिविल अस्पताल गई और उसने वहां पर मृतका को मृत पाया । इसके पश्चात्, राज रानी ने तारीख 28 अगस्त, 1991 को 12.05 बजे अपराह्न में पुलिस के समक्ष कथन (प्रदर्श-पी.डी.) दिया जिसके आधार पर प्रथम इत्तिला रिपोर्ट रजिस्ट्रीकृत की गई । अपीलार्थी के अतिरिक्त उसके भाई कृष्ण लाल हरबंस लाल, उसके पिता गोपाल दास, माता शांति और भाई की पत्नी श्रीमती चम्पा को भी अभियुक्त बनाया हुआ है ।

सहायक उपनिरीक्षक सूरत कांत (अभि. सा. 9) ने मामले में अन्वेषण किया और हंसराज (अभि. सा. 8) और सतपाल के कथन के आधार पर डी.डी.आर. (प्रदर्श-पी.एम.) अभिलिखित की । इसके पश्चात् अन्वेषक अधिकारी उपर्युक्त व्यक्तियों के साथ उस मकान पर गया जहां मृत्यु हुई थी और उसने मृत्युसमीक्षा रिपोर्ट (प्रदर्श-पी.एच./1) तैयार की । उसने एक पीपी (छोटा डिब्बा) जो प्रदर्श-पी.7 है, स्टील का कटोरा (प्रदर्श-पी.8) माचिस की जली हुई तीलियां (प्रदर्श-पी.9 से प्रदर्श-पी.11) और आधा जला हुआ कपड़ा तथा कुछ नकदी कब्जे में ली । इस सामान को अलग-अलग पुलन्दों में एस. के. की मुहर से मुहरबंद किया और इस संबंध में बरामदगी ज्ञापन प्रदर्श-पी.एन. तैयार किया जिसे अभियोजन साक्षियों द्वारा अनुप्रमाणित कराया गया, अन्वेषक अधिकारी द्वारा स्थल-नक्शा भी तैयार

किया गया जिसके हाशिए में उचित टिप्पणी भी की गई । स्वर्ण कुमार (अभि. सा. 7) द्वारा शव के फोटो-चित्र भी लिए गए । शव, कांस्टेबल किशन लाल द्वारा शवपरीक्षण के लिए सिविल अस्पताल भेज दिया गया । अगले दिन राज रानी (अभि. सा. 1) ने अपना कथन (प्रदर्श-पी.डी.) दिया जिसके आधार पर पृष्ठांकन (प्रदर्श-पी.डी./1) किया गया और इस पृष्ठांकन के आधार पर औपचारिक प्रथम इत्तिला रिपोर्ट (प्रदर्श-पी.डी./2) सहायक उपनिरीक्षक राम कृष्ण द्वारा अभिलिखित की गई । कांस्टेबल कृष्ण लाल ने उसके समक्ष सोने की एक जोड़ी कान की बालियां प्रस्तुत कीं जिसे एक पुलन्दे में रखकर एस. के. की मुहर से मुहरबंद किया गया और उसे बरामदगी ज्ञापन (प्रदर्श-पी.पी.) के अनुसार कब्जे में लिया गया । अभियुक्तों को तारीख 30 अगस्त, 1991 को गिरफ्तार किया गया और दहेज का सामान बरामद किया गया और उसे भी बरामदगी ज्ञापन (प्रदर्श-पी.ओ.) के अनुसार कब्जे में लिया गया । शिकायतकर्ता राज रानी (अभि. सा. 1) ने भी उसके समक्ष कन्यादान के सामान की एक सूची प्रस्तुत की जिसे "ए" चिह्न से चिह्नांकित किया गया है । अन्वेषण पूरा होने के पश्चात् सभी अभियुक्तों को दंड संहिता की धारा 498क/34 और धारा 304ख/34 के अधीन अपराध के लिए आरोपित किया गया जिसके लिए अभियुक्तों ने दोषी न होने का अभिवाक् किया और विचारण की मांग की ।

3. अभियोजन पक्ष ने कुल मिलाकर 9 साक्षियों की परीक्षा कराई और अभिलेख पर दस्तावेजी साक्ष्य प्रस्तुत किए । प्रतिरक्षा पक्ष ने भी राम प्रकाश को प्रतिरक्षा साक्षी के रूप में प्रस्तुत किया । विचारण न्यायालय ने पक्षकारों को सुनने और साक्ष्य का मूल्यांकन करने के पश्चात् तारीख 25 अगस्त, 1994 के निर्णय द्वारा दंड संहिता की धारा 304ख के अधीन दंडनीय अपराध के लिए अपीलार्थी को दोषसिद्ध किया और सात वर्ष का कठोर कारावास भोगने के लिए दंडादिष्ट किया । शेष अभियुक्तों को अर्थात् उसके भाई कृष्ण लाल, हरबंस लाल, उसके पिता गोपाल दास, माता शांति और भाई की पत्नी श्रीमती चम्पा को विचारण न्यायालय द्वारा इस आधार पर दोषमुक्त कर दिया गया कि वे घटनास्थल अर्थात् जहां पर मृतका अपीलार्थी के साथ रहती थी, से दूर एक स्थान पर अलग रह रहे थे ।

4. अपीलार्थी के विद्वान् काउंसेल ने निम्न दलीलें दी हैं :–

(क) प्रथम इत्तिला रिपोर्ट दर्ज कराने में 20 घंटों का असाधारण विलंब है ।

(ख) अभियोजन पक्ष यह साबित करने में असफल रहा है कि

अभियुक्त ने मृतका को उसकी 'मृत्यु के कुछ पूर्व' दहेज की मांग के लिए या उसके संबंध में तंग किया था ।

(ग) बोधाराम के पुत्र सतपाल और पूरनचंद ने दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 की धारा 174 के अधीन अपने कथनों में दहेज की मांग से संबंधित क्रूरता के बारे में कोई भी उल्लेख नहीं किया है ।

(घ) अभियुक्त मनोहर लाल का विवाह दर्शना **उर्फ** फुल्लन के साथ उसकी मृत्यु के पांच वर्ष पूर्व हुआ था । अतः, दंड संहिता की धारा 304ख के उपबंध इस मामले को लागू नहीं होंगे ।

5. मृतका दर्शना **उर्फ** फुल्लन की मां राज रानी (अभि. सा. 1) ने यह कथन किया है कि अभियुक्त ने लगभग पांच वर्ष पूर्व उसकी पुत्री के साथ विवाह किया था । अभियुक्त कम दहेज लाने के लिए उसकी पुत्री को तंग किया करता था और नकदी की मांग किया करता था । अभि. सा. 1 के अनुसार अभियुक्त ने 10,000/- रुपए की मांग की थी जो राज रानी पूरी नहीं कर सकी थी । सभी अभियुक्त दर्शना **उर्फ** फुल्लन की पिटाई किया करते थे और उसे और अधिक दहेज लाने के लिए विवश किया जाता था जबकि विवाह के समय अभियुक्तों को पर्याप्त दहेज दिया गया था । आरंभ में लगभग आठ दिन तक अभियुक्तों ने उसकी पुत्री को ठीक प्रकार से रखा किंतु इसके पश्चात् उसे अभियुक्तों द्वारा तंग किया जाने लगा और उसकी पिटाई भी की जाने लगी । मृतका के पिता के जीवनकाल के दौरान, उसका पिता अपीलार्थी द्वारा की गई दहेज की मांगों को पूरा कर दिया करता था । मृतका यह शिकायत किया करती थी कि उसका पति उसे उसके वैवाहिक गृह में नहीं रहने देगा जब तक कि उसे कुछ धन का संदाय न कर दिया जाए और शिकायतकर्ता (अभि. सा. 1) मृतका को धन देती रहती थी और इस प्रकार अपीलार्थी की मांग पूरी करके मृतका को उसके वैवाहिक गृह भेज दिया करती थी ।

6. पिछले वर्ष राखी के त्यौहार के एक दिन पूर्व जिन्दू राम अर्थात् अभि. सा. 1 का श्वसुर दर्शना **उर्फ** फुल्लन से मिलने उसकी ससुराल गया और वापस आकर जिन्दू राम ने शिकायतकर्ता को बताया कि दर्शना **उर्फ** फुल्लन ने यह कहा है कि अभियुक्त शराब पीकर उसकी पिटाई करता है और अब उसके लिए उसके वैवाहिक गृह में रहना संभव नहीं है । यह सूचना जिन्दू राम द्वारा अभि. सा. 1 को उसके मामा देवी लाल की मौजूदगी में दी गई ।

7. शिकायतकर्ता ने यह भी कथन किया है कि राखी के त्यौहार के लगभग 8-9 मास पश्चात् उसकी पुत्री दर्शना **उर्फ** फुल्लन की मृत्यु हो

गई । उसके ससुराल वालों द्वारा उसकी हत्या की गई है । इसके पश्चात् वह यमुना नगर आई और उसने अपनी पुत्री का शव देखा जिसके सिर पर बाह्य क्षतियां आई हुई थीं जिनसे यह प्रतीत हो रहा था कि मृतका का गला घोंटा गया है । पुलिस ने अभि. सा. 1 का कथन अभिलिखित किया और उसके अंगूठे की छाप ली जिसे प्रदर्श-पी.डी. के रूप में चिह्नांकित किया गया है । उपर्युक्त कथन की पुष्टि किसी भी साक्ष्य से नहीं होती है और यह शवपरीक्षण रिपोर्ट के विरोधाभासी है, जिससे यह दर्शित होता है कि मृत्यु दाह क्षतियों के परिणामस्वरूप होने वाले आघात से हुई है ।

8. इस साक्षी ने प्रतिपरीक्षा के दौरान यह कथन किया है कि उसने पुलिस को यह बताया था कि उसका पति अपनी मृत्यु होने तक अपनी पुत्री के माध्यम से अभियुक्त की मांगें पूरी करता रहा और वह धन और अन्य सामान भी देता रहा था । इस साक्षी ने प्रतिपरीक्षा के दौरान यह भी कथन किया है कि उसे उसके श्वसुर जिन्दू राम ने यह बताया था कि मृतका की उसका पति शराब पीकर पिटाई किया करता है और यह कि मृतका एक बार सदैव के लिए इस मामले को तय करना चाहती है । जब इस साक्षी को उसका कथन प्रदर्श-पी.डी. दिखाया गया तब यह पाया गया कि ऐसा कोई भी कथन पुलिस को नहीं दिया गया है । उसका यह कथन कि उसका मामा भी मौजूद था, प्रदर्श-पी.डी. को देखने पर पता चलता है कि उसके पूर्ववर्ती कथन में ऐसा कोई उल्लेख नहीं है । अभि. सा. 1 के श्वसुर जिन्दू राम ने भी अभियोजन पक्ष कथन का समर्थन नहीं किया है । अतः, उसे पक्षद्रोही घोषित किया गया है ।

9. मृतका की पड़ोसन श्रीमती उषा रानी (अभि. सा. 5) ने भी अभियोजन वृत्तांत का समर्थन नहीं किया है । अतः, उसे भी पक्षद्रोही घोषित किया गया है ।

10. डा. एन. के. गर्ग (अभि. सा. 3) ने तारीख 28 अगस्त, 1991 को 12.30 बजे अपराह्न में मृतका दर्शना **उर्फ** फुल्लन का शवपरीक्षण किया है । डा. ए. के. गुप्ता भी अभि. सा. 3 के साथ मौजूद थे । शवपरीक्षण रिपोर्ट की कार्बन प्रति से यह उपदर्शित होता है कि दाह क्षतियों के परिणामस्वरूप होने वाले आघात से मृत्यु हुई है । नक्शानवीस ओम प्रकाश (अभि. सा. 4) ने घटनास्थल का स्थल-नक्शा (प्रदर्श-पी.जे.) तैयार किया है ।

11. जैसाकि ऊपर कथन किया गया है उषा रानी (अभि. सा. 5) ने यह सूचना दी है कि मनोहर लाल अपनी पत्नी दर्शना **उर्फ** फुल्लन के साथ रहता था और उसे यह पता नहीं था कि मृतका दर्शना **उर्फ** फुल्लन के

साथ उसके पति द्वारा कैसा व्यवहार किया जाता था । इस साक्षी ने अपनी प्रतिपरीक्षा में यह कथन किया है कि जब उसने मृतका से मालूम किया तो उसने बताया कि उसके पति ने मृतका की पिटाई की है । किंतु उसने कोई विशिष्ट तारीख नहीं बताई । अभि. सा. 5 को भी पक्षद्रोही घोषित किया गया है ।

12. कांस्टेबल राम मेहर सिंह (अभि. सा. 6) ने साक्ष्य में अपना शपथपत्र (प्रदर्श-पी.एम.) प्रस्तुत किया है । फोटोग्राफर स्वर्ण कुमार (अभि. सा. 7) अभियुक्त मनोहर लाल के घर गया था और उसने तीन फोटो (प्रदर्श-पी. 1 से प्रदर्श-पी. 3) खींचे जिनके पॉजेटिव प्रदर्श-पी.4 से प्रदर्श-पी.6 हैं । हंसराज (अभि. सा. 8) ने सतपाल के साथ देखा कि मनोहर लाल के मकान से धुंआ निकल रहा है । वे वहां गए और यह देखा कि एक लड़की पड़ी हुई जल रही है । वे पुलिस चौकी गए और रिपोर्ट (प्रदर्श-पी.एम.) दर्ज कराई इसके पश्चात् वे पुलिस के साथ वापस आए और पुलिस ने उनसे कहा कि वे ग्राम अंतावा जाएं और अभियुक्त के माता-पिता को सूचित करें कि उनकी बहू की मृत्यु हो गई है । इसके पश्चात् वे वहां गए और तदनुसार सूचना दी ।

13. अन्वेषक अधिकारी अर्थात् सहायक उपनिरीक्षक सूरत कांत (अभि. सा. 9) ने अभियोजन वृत्तांत का समर्थन किया है और साक्ष्य के रूप में न्यायालयिक प्रयोगशाला की रिपोर्ट (प्रदर्श-पी.आर.) प्रस्तुत की है ।

14. अभियोजन साक्ष्य पूरा होने के पश्चात् दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 की धारा 313 के अधीन अभियुक्तों की परीक्षा, उनके विरुद्ध प्रस्तुत सभी महत्वपूर्ण साक्ष्य के संबंध में, कराई गई । अभियुक्त मनोहर लाल ने मृतका के साथ हुए अपने विवाह को स्वीकार किया है । उसने उस पर लगाए गए अन्य अभिकथनों से इनकार किया है । अभियुक्त ने विशेष रूप से यह अभिवाक् किया है कि विवाह के तुरंत बाद वह अपने माता-पिता से अलग हो गया था और वह यमुनानगर में रहता है । अभियुक्त ने निर्दोष होने का अभिवाक् किया है तथा यह कथन किया है कि पिछले 4 या 5 वर्षों से वह ड्राइवर के रूप में प्रकाश ट्रांसपोर्ट में कार्यरत है और अपनी पत्नी के साथ कुशलतापूर्वक रहता है । इस विवाह से एक पुत्री का जन्म हुआ । उसने कभी भी दहेज की मांग नहीं की और मृतका दर्शना **उर्फ** फुल्लन के साथ कभी भी दुर्व्यवहार नहीं किया । उसने यह भी कथन किया है कि उसकी पत्नी मृतका दर्शना **उर्फ** फुल्लन ने अपनी चचेरी बहिन संतोष की सगाई अपने भाई किशन से इस घटना के लगभग दो वर्ष पूर्व कराई थी । इस घटना के लगभग ढाई मास पूर्व, उसके भाई ने नातेदारी के इस प्रस्ताव

को स्वीकार करने से इनकार कर दिया है जिसके कारण उसके ससुराल वालों और उसके माता-पिता के बीच संबंध तनावपूर्ण हो गए । उन्होंने उसके माता-पिता के यहां आना-जाना बंद कर दिया और उसके माता-पिता ने भी उसके ससुराल वालों के यहां आना-जाना बंद कर दिया । घटना के दिन, वह घर पर नहीं था और शाम को वापस आने पर उसने अपनी पत्नी को मृत पाया । उसने यह भी कथन किया है कि उसके ससुराल वाले धन की मांग कर रहे थे जो उसने नहीं दिया और इसके परिणामस्वरूप, उसके विरुद्ध दहेज मृत्यु का मिथ्या मामला रजिस्ट्रीकृत करा दिया गया ।

15. अभियुक्त ने अपनी प्रतिरक्षा में प्रकाश ट्रांसपोर्ट के स्वामी राम प्रकाश को प्रस्तुत किया है । उसने यह कथन किया है कि तारीख 26 अगस्त, 1991 को, अभियुक्त मनोहर लाल उसके यहां ट्रक ड्राइवर के रूप में नियोजित था और वह कैथल गया था । वह 5.00 बजे अपराह्न में वापस आया और उसने घटना के बारे में बताया । उसने अभियुक्त मनोहर लाल को पुलिस के सुपुर्द कर दिया ।

16. दंड संहिता की धारा 304ख दहेज मृत्यु से संबंधित है और निम्न प्रकार है :–

> "**304ख दहेज मृत्यु** – (1) जहां किसी स्त्री की मृत्यु किसी दाह या शारीरिक क्षति द्वारा कारित की जाती है या उसके विवाह के सात वर्ष के भीतर सामान्य परिस्थितियों से अन्यथा हो जाती है और यह दर्शित किया जाता है कि उसकी मृत्यु के कुछ पूर्व उसके पति ने या उसके पति के किसी नातेदार ने, दहेज की किसी मांग के लिए, या उसके संबंध में, उसके साथ क्रूरता की थी या उसे तंग किया था वहां ऐसी मृत्यु को 'दहेज मृत्यु' कहा जाएगा और ऐसा पति या नातेदार उसकी मृत्यु कारित करने वाला समझा जाएगा ।
>
> **स्पष्टीकरण** – इस उपधारा के प्रयोजनों के लिए 'दहेज' का वही अर्थ है जो दहेज प्रतिषेध अधिनियम, 1961 (1961 का 28) की धारा 2 में है ।
>
> (2) जो कोई दहेज मृत्यु कारित करेगा वह कारावास से, जिसकी अवधि सात वर्ष से कम की नहीं होगी किंतु जो आजीवन कारावास तक की हो सकेगी, दंडित किया जाएगा ।"

17. उक्त धारा के प्रयोजन के लिए निम्न संघटकों के साबित किए जाने पर ही उपधारणा की जा सकती है :–

(क) स्त्री की मृत्यु दाह क्षतियों या शारीरिक क्षति द्वारा या

सामान्य परिस्थितियों से अन्यथा कारित हुई हो,

(ख) उक्त मृत्यु उसके विवाह के सात वर्षों के भीतर हुई हो,

(ग) स्त्री के साथ उसके पति या पति के नातेदारों द्वारा उसके साथ क्रूरता की गई हो या उसे तंग किया गया हो,

(घ) ऐसी क्रूरता या इस प्रकार तंग किया जाना दहेज की किसी भी प्रकार की मांग के लिए या उसके संबंध में हो,

(ङ) उसकी मृत्यु के कुछ पूर्व उसके साथ ऐसी क्रूरता की गई हो या उसे तंग किया गया हो ।

इस संबंध में हम **कालियापेरूमल** बनाम **तमिलनाडु राज्य**[1] वाले मामले में किए गए विनिश्चय को निर्दिष्ट कर रहे हैं ।

18. **सुनील बजाज** बनाम **मध्य प्रदेश राज्य**[2] वाले मामले में इस न्यायालय ने यह अभिनिर्धारित किया है :–

"5. हमने पक्षकारों के विद्वान् काउंसेलों द्वारा दी गई दलीलों पर सावधानीपूर्वक विचार किया है । आम तौर पर यह न्यायालय विचारण न्यायालय के दोषसिद्धि के आदेश को उलटने में जल्दबाजी से काम नहीं लेता है चाहे उच्च न्यायालय ने अभिलेख पर प्रस्तुत साक्ष्य का मूल्यांकन करके विचारण न्यायालय के उस आदेश की पुष्टि की हो । किंतु ऐसे मामलों में जिनमें दोनों न्यायालयों ने समवर्ती रूप से यह निष्कर्ष अभिलिखित किया हो कि अभियुक्त अपराध का दोषी है जबकि अभिलेख पर ऐसा कोई साक्ष्य न हो जिससे अपराध के आवश्यक संघटकों का समाधान हो सके, अन्य शब्दों में यह कहा जा सकता है कि जब कोई भी अपराध नहीं बनता हो, तब न्याय के लिए दोषसिद्धि और दंडादेश में हस्तक्षेप करना आवश्यक हो जाता है । दंड संहिता की धारा 304ख के अधीन अपराध के लिए किसी अभियुक्त को दोषसिद्ध करने हेतु निम्न संघटकों का समाधान किया जाना चाहिए –

(1) स्त्री की मृत्यु दाह क्षतियों या शारीरिक क्षति के कारण या सामान्य परिस्थितियों से अन्यथा हुई हो ;

(2) ऐसी मृत्यु उसके विवाह के सात वर्ष के भीतर हुई

---

[1] ए. आई. आर. 2003 एस. सी. 3828.

[2] (2001) 9 एस. सी. सी. 417.

हो ;

(3) स्त्री की मृत्यु के कुछ पूर्व, उसके पति या पति के नातेदारों द्वारा उसके साथ क्रूरता की गई हो या उसे तंग किया गया हो ;

(4) ऐसी क्रूरता या इस प्रकार तंग किया जाना दहेज की मांग के लिए या उसके संबंध में हो ।

6. ऐसा केवल तब होता है जब ऊपर उल्लिखित संघटक स्वीकार्य साक्ष्य द्वारा सिद्ध हो जाते हैं और ऐसी मृत्यु को तब ही 'दहेज मृत्यु' कहा जाएगा और ऐसे पति या पति के नातेदार को यह समझा जाएगा कि उन्होंने उस स्त्री की मृत्यु कारित की है । इस बात पर भी विचार किया जा सकता है कि दंड संहिता की धारा 304ख के अधीन दहेज मृत्यु के अपराध के लिए दंड सात वर्ष के कारावास से कम नहीं है जो आजीवन कारावास तक हो सकता है । दंड संहिता की धारा 498क के प्रतिकूल किसी स्त्री का पति या पति का नातेदार उसके साथ क्रूरता करता है तो वह कारावास के लिए दायी होगा जिसकी अवधि तीन वर्ष तक की हो सकेगी और वह जुर्माने के लिए भी दायी होगा । सामान्यतः, आपराधिक मामले में अभियुक्त को साक्ष्य के आधार पर, चाहे साक्ष्य प्रत्यक्ष हो या पारिस्थितिक या दोनों, उस अपराध के कारित किए जाने के सिद्ध होने पर ही दंडित किया जा सकता है । किंतु दंड संहिता की धारा 304ख के अधीन अपराध के मामले में मृत्यु की प्रकृति को 'दहेज मृत्यु' मानने के लिए इस उपबंध में अपवाद है और पति या पति का नातेदार, जो कोई भी हो, यह समझा जाएगा कि उसने यह मृत्यु कारित की है, भले ही इन पहलुओं को साबित करने के लिए कोई साक्ष्य न हो किंतु तर्कसम्मत साक्ष्य द्वारा उक्त अपराध के संघटक साबित किए जाने पर ही ऐसा किया जा सकता है । इस प्रकार, कड़ी सावधानी और सतर्कता आवश्यक है और उक्त अपराध के लिए विहित दंड की गंभीरता पर भी विचार किया जाना चाहिए, साक्ष्य का मूल्यांकन करने और इस निष्कर्ष पर पहुंचने के लिए भी सावधानी बरतनी चाहिए कि क्या इस अपराध के ऊपर उल्लिखित सभी संघटक अभियोजन पक्ष द्वारा साबित कर दिए गए हैं । वर्तमान मामले में, अपीलार्थी के विद्वान् काउंसेल ने इस बात पर विवाद नहीं किया है कि ऊपर उल्लिखित पहले दो संघटकों का समाधान हो गया है ।"

19. **हीरा लाल और अन्य** बनाम **राज्य (राष्ट्रीय राजधानी राज्यक्षेत्र,**

दिल्ली सरकार)[1] वाले मामले में इस न्यायालय ने दंड संहिता की धारा 304ख और साक्ष्य अधिनियम की धारा 113ख में प्रयोग की गई "मृत्यु के कुछ पूर्व" अभिव्यक्ति पर विचार किया है जो निम्न प्रकार है :–

"8. दंड संहिता की धारा 304ख जो दहेज मृत्यु के बारे में है, निम्न प्रकार है –

304ख दहेज मृत्यु – (1) जहां किसी स्त्री की मृत्यु किसी दाह या शारीरिक क्षति द्वारा कारित की जाती है या उसके विवाह के सात वर्ष के भीतर सामान्य परिस्थितियों से अन्यथा हो जाती है और यह दर्शित किया जाता है कि उसकी मृत्यु के कुछ पूर्व उसके पति ने या उसके पति के किसी नातेदार ने, दहेज की किसी मांग के लिए, या उसके संबंध में, उसके साथ क्रूरता की थी या उसे तंग किया था वहां ऐसी मृत्यु को 'दहेज मृत्यु' कहा जाएगा और ऐसा पति या नातेदार उसकी मृत्यु कारित करने वाला समझा जाएगा ।

स्पष्टीकरण – इस उपधारा के प्रयोजनों के लिए 'दहेज' का वही अर्थ है जो दहेज प्रतिषेध अधिनियम, 1961 (1961 का 28) की धारा 2 में है ।

(2) जो कोई दहेज मृत्यु कारित करेगा वह कारावास से, जिसकी अवधि सात वर्ष से कम की नहीं होगी किंतु जो आजीवन कारावास तक की हो सकेगी, दंडित किया जाएगा ।

इस धारा के उपबंध वहां लागू होंगे जहां स्त्री की मृत्यु उसके विवाह के सात वर्ष के भीतर दाह क्षतियों या शारीरिक क्षति द्वारा या सामान्य परिस्थितियों से अन्यथा हुई है और यह दर्शाया गया है कि उसकी मृत्यु के कुछ पूर्व उसके पति या पति के किसी भी नातेदारों द्वारा दहेज की मांग के लिए या उसके संबंध में क्रूरता की गई हो या उसे तंग किया गया हो । दंड संहिता की धारा 304ख के लागू होने के लिए आवश्यक संघटक निम्न प्रकार हैं –

(i) स्त्री की मृत्यु दाह क्षतियों या शारीरिक क्षति द्वारा या सामान्य परिस्थितियों से अन्यथा कारित की जानी चाहिए,

(ii) उक्त मृत्यु उसके विवाह के सात वर्षों के भीतर होनी चाहिए,

(iii) स्त्री के साथ उसके पति या पति के नातेदारों द्वारा

---

[1] (2003) 8 एस. सी. सी. 80.

उसके साथ क्रूरता की जानी चाहिए या उसे तंग किया जाना चाहिए,

(iv) ऐसी क्रूरता या इस प्रकार तंग किया जाना दहेज की किसी भी प्रकार की मांग के लिए या उसके संबंध में किया जाना चाहिए,

(v) उसकी मृत्यु के कुछ पूर्व उसके साथ ऐसी क्रूरता की गई हो या उसे तंग किया गया हो ।

साक्ष्य अधिनियम की धारा 113ख भी वर्तमान मामले के लिए सुसंगत है । दंड संहिता की धारा 304ख और साक्ष्य अधिनियम की धारा 113ख दोनों को ही, जैसाकि पहले ही उल्लेख किया गया है, दहेज प्रतिषेध (संशोधन) अधिनियम, 1986 (1986 का 43) में निगमित किया गया है ताकि दहेज मृत्यु जैसी बढ़ती हुई बुराई को रोका जा सके । साक्ष्य अधिनियम की धारा 113ख निम्न प्रकार है –

'**धारा 113ख – दहेज मृत्यु के बारे में उपधारणा** – जब प्रश्न यह है कि किसी व्यक्ति ने किसी स्त्री की दहेज मृत्यु की है और यह दर्शित किया जाता है कि मृत्यु के कुछ पूर्व ऐसे व्यक्ति ने दहेज की किसी मांग के लिए, या उसके संबंध में उस स्त्री के साथ क्रूरता की थी या उसको तंग किया गया था तो न्यायालय यह उपधारणा करेगा कि ऐसे व्यक्ति ने दहेज मृत्यु कारित की थी ।

स्पष्टीकरण – इस धारा के प्रयोजन के लिए 'दहेज मृत्यु' का वही अर्थ है जो भारतीय दंड संहिता (1860 का 45) की धारा 304ख में है ।'

भारतीय विधि आयोग ने तारीख 10 अगस्त, 1988 की अपनी 21वीं रिपोर्ट में 'दहेज मृत्यु और विधि सुधार' पर व्यापक रूप से दोनों उपबंधों के निगमित किए जाने के संबंध में विश्लेषण किया है । पूर्व-विद्यमान विधि में आने वाली रुकावटों को दृष्टिगत करते हुए दहेज से संबंधित मृत्यु को साबित करने के लिए साक्ष्य जुटाने में विधान-मंडल ने कतिपय संघटकों के साबित किए जाने के आधार पर दहेज मृत्यु की उपधारणा से संबंधित ऐसे उपबंध को निगमित करना उचित समझा है । इस पृष्ठभूमि को दृष्टिगत करते हुए साक्ष्य अधिनियम में उपधारणात्मक धारा 113ख निगमित की गई है । दंड संहिता की धारा 304ख में 'दहेज मृत्यु' की परिभाषा और साक्ष्य अधिनियम की

उपधारणात्मक धारा 113ख की भाषा के अनुसार आवश्यक संघटकों में एक संघटक यह है कि संबंधित स्त्री के साथ उसकी 'मृत्यु के कुछ पूर्व' 'दहेज की मांग के लिए या उसके संबंध में' उसके साथ क्रूरता की गई हो या उसे तंग किया गया हो । धारा 113ख के अधीन उपधारणा विधि की उपधारणा है । इस धारा में उल्लिखित संघटकों को साबित किए जाने पर, न्यायालय के लिए यह आवश्यक हो जाता है कि वह यह उपधारित करे कि अभियुक्त ने दहेज मृत्यु कारित की है । यह उपधारणा निम्न संघटकों के साबित किए जाने पर ही की जा सकती है –

(1) न्यायालय के समक्ष इस प्रश्न पर विचार किया जाना चाहिए कि क्या अभियुक्त ने स्त्री की दहेज मृत्यु कारित की है । (इसका यह अर्थ हुआ कि उपधारणा केवल तब की जा सकती है जब अभियुक्त का विचारण दंड संहिता की धारा 304ख के अधीन अपराध के लिए किया जा रहा है ।)

(2) स्त्री के पति या उसके नातेदारों द्वारा उसके साथ क्रूरता की गई हो या उसे तंग किया गया हो ।

(3) दहेज की मांग के लिए या उसके संबंध में ऐसी क्रूरता की गई हो या तंग किया गया हो ।

(4) स्त्री की 'मृत्यु के कुछ पूर्व' उसके साथ क्रूरता की गई हो या उसे तंग किया गया हो ।"

बलवंत सिंह और एक अन्य बनाम **पंजाब राज्य**[1] वाले मामले में इस न्यायालय ने ऐसा ही मत व्यक्त किया है । उक्त मामले में इस न्यायालय ने यह अभिनिर्धारित किया है :–

"10. इस न्यायालय के इन विनिश्चयों और अन्य विनिश्चयों के अधीन सामीप्य परीक्षण अधिकथित किया गया है । इस न्यायालय के अनेक विनिश्चयों में यह दोहराया गया है कि 'कुछ पूर्व' ऐसी अभिव्यक्ति है जिसमें लचीलापन है और इसीलिए प्रत्येक मामले के तथ्यों और परिस्थितियों को ध्यान में रखते हुए सामीप्य परीक्षण लागू किया जाना चाहिए । तथ्यों से यह दर्शित होना चाहिए कि दहेज की मांग के आधार पर की गई क्रूरता और आहत की मृत्यु के बीच सामीप्य संबंध होना चाहिए ।"

---

[1] (2004) 7 एस. सी. सी. 724.

20. वर्तमान मामले में अभि. सा. 1 के कथन से यह प्रतीत होता है कि आहत की मृत्यु विवाह के सात वर्ष के भीतर हुई है । स्वीकृततः, मृतका की मृत्यु जलने से हुई है अर्थात् सामान्य परिस्थितियों में नहीं हुई है । अभिलेख पर उपलब्ध साक्ष्य पर विचार करने के पश्चात् अब हमें यह देखना होगा कि क्या शेष दो संघटकों का समाधान हुआ है या नहीं ।

21. शिकायतकर्ता (अभि. सा. 1) का कथन साधारण है न कि विशिष्ट । कोई भी विशेष घटना का उल्लेख नहीं किया गया है जिससे यह उपदर्शित होता हो कि अभियुक्त मनोहर लाल द्वारा क्रूरता की गई है या तंग किया गया है । इस साक्षी का कथन विश्वसनीय और विश्वासप्रद नहीं है । यद्यपि दहेज की मांग किए जाने का अभिकथन किया गया है किंतु अभि. सा. 1 सहित किसी भी साक्षी ने यह कथन नहीं किया है कि मृतका को उसकी मृत्यु के कुछ पूर्व दहेज की मांग के लिए या उसके संबंध में तंग किया गया था । अभियुक्त अपीलार्थी को दंड संहिता की धारा 498क और 304ख के अधीन आरोपित किया गया है किंतु विचारण न्यायालय ने अभियुक्त को दंड संहिता की धारा 498क के अधीन दोषसिद्ध नहीं किया है । इस पृष्ठभूमि के आधार पर, हमारा यह मत है कि अभियोजन पक्ष यह साबित करने में पूर्णतया असफल रहा है कि अभियुक्त ने मृतका को दहेज की मांग के लिए या उसके संबंध में उसकी मृत्यु के कुछ पूर्व उसे तंग किया था ।

22. उपर्युक्त कारणों के आधार पर, विचारण न्यायालय द्वारा पारित किए गए तारीख 26 अगस्त, 1994 के निर्णय को, जिसे उच्च न्यायालय के तारीख 26 मार्च, 2007 के आक्षेपित निर्णय द्वारा कायम रखा गया था, कायम नहीं रखा जा सकता है । तदनुसार ये अपास्त किए जाते हैं । अभियुक्त मनोहर लाल दंड संहिता की धारा 304ख के अधीन आरोप से दोषमुक्त किया जाता है । अपील मंजूर की जाती है । बंध-पत्र, यदि कोई हैं, उन्मोचित किए जाते हैं ।

अपील मंजूर की गई ।

अस./अनू.

राम कुमार और अन्य

बनाम

मध्य प्रदेश राज्य

1 जुलाई, 2014

न्यायमूर्ति दीपक मिश्रा और न्यायमूर्ति एन. वी. रमन

दंड संहिता, 1860 (1860 का 45) – धारा 302 – हत्या – चिकित्सीय साक्ष्य – क्षतियों की प्रकृति का घातक होना – विशिष्ट शवपरीक्षण रिपोर्ट की आवश्यकता – आहत को पहुंची क्षतियां और अस्थि भंग इतने घातक हैं कि उनसे किसी भी व्यक्ति की मृत्यु कारित हो जाए, तब ऐसी स्थिति में चिकित्सक के लिए यह आवश्यक नहीं होगा कि वह यह स्पष्ट करे कि क्षतियां प्रकृति के सामान्य अनुक्रम में मृत्यु कारित करने के लिए पर्याप्त हैं, अतः हत्या के अपराध के लिए की गई अपीलार्थी की दोषसिद्धि न्यायोचित होगी ।

दंड संहिता, 1860 – धारा 302 और धारा 34 [सपठित भारतीय साक्ष्य अधिनियम, 1872 की धारा 3] – हत्या – सामान्य आशय – चिकित्सीय साक्ष्य से संपुष्टि – अपीलार्थियों ने सामान्य आशय से मृतक को घातक क्षतियां पहुंचाकर उसकी मृत्यु कारित की है जिसकी संपुष्टि चिकित्सीय साक्ष्य से पूर्ण रूप से होती है, ऐसी स्थिति में अपीलार्थियों के दोषसिद्धि के निष्कर्ष में हस्तक्षेप नहीं किया जा सकता ।

इस मामले में पांच अभियुक्तों अर्थात् राम कुमार (अपीलार्थी-1), सुखमणि दास (अपीलार्थी-2), सुरेश (अपीलार्थी-3), चिन्तामणि और रमेश का विचारण सेशन न्यायालय द्वारा किया गया और उन्हें भारतीय दंड संहिता की धारा 302/149 और धारा 148 के अधीन दोषसिद्ध किया गया । इस आदेश से व्यथित होकर पांचों अभियुक्तों ने मध्य प्रदेश उच्च न्यायालय के समक्ष अपील फाइल की और उच्च न्यायालय ने रमेश को दोषमुक्त ठहराते हुए शेष चारों अभियुक्तों को दंड संहिता की धारा 302/149 के अधीन दोषसिद्ध किया और धारा 148 के अधीन किए गए अपराध से दोषमुक्त कर दिया । उच्च न्यायालय के इस आदेश से व्यथित होकर शेष अभियुक्तों ने उच्चतम न्यायालय के समक्ष अपील फाइल की । उच्चतम न्यायालय ने उच्च न्यायालय के निर्णय को मान्य ठहराते हुए

अपीलार्थियों की दोषसिद्धि कायम रखी । अपील खारिज करते हुए,

अभिनिर्धारित – न्यायालय ने दोनों पक्षकारों के विद्वान् काउंसेलों को सुना है और अभिलेख पर प्रस्तुत सामग्री का सावधानीपूर्वक परिशीलन भी किया है । निर्विवादित रूप से अभियुक्तों और शिकायतकर्ता पक्ष के बीच शत्रुता थी और यह प्रतीत होता है कि एक आपराधिक मामला भी उनके बीच लंबित चल रहा था । न्यायालय को अभिलेख से यह पता चलता है कि शिकायत रजिस्ट्रीकृत किए जाने के तत्काल पश्चात्, अन्वेषक अधिकारी (अभि. सा. 14) घटनास्थल पर पहुंचा और वहां अगले दिन अर्थात् 9 नवंबर, 1999 को मामले का अन्वेषण करने के लिए 1.00 बजे अपराह्न तक मौजूद रहा और उसने साक्षियों के कथन भी अभिलिखित किए । उस समय पर ही शिकायतकर्ता (अभि. सा. 1) ने सुरेश (अपीलार्थी सं. 3) के नाम और उसके द्वारा अपराध में निभाई गई भूमिका का उल्लेख किया है जिसके संबंध में अन्वेषक अधिकारी ने रोजनामचे में प्रविष्टि की है । शिकायतकर्ता (अभि. सा. 1) द्वारा भी उसके परिसाक्ष्य में इसी पक्षकथन की पुष्टि की गई है कि पांच व्यक्तियों ने हमला किया था और उसके पिता को क्षतियां कारित की हैं और यह भी अभिसाक्ष्य दिया है कि सुरेश, रामकुमार और सुखमणि दास ने उसके पिता पर लाठियों से वार किए थे । विशेष रूप से यह उल्लेख किया गया है कि सुरेश (अपीलार्थी सं. 3) ने मृतक की कनपटी (कर्णपटह) पर अपनी लाठी से वार किया है । टुकोदीलाल अर्थात् एक अन्य स्वतंत्र प्रत्यक्षदर्शी साक्षी (अभि. सा. 10) ने भी घटनास्थल पर अपीलार्थी सं. 3 की मौजूदगी की पुष्टि की है जिसने आहत को लाठी से क्षतियां कारित की हैं । इस साक्षी ने यह कथन किया है कि उसने रामकुमार, सुरेश और रमेश को मोहन साहू (मृतक) की, लाठी से पिटाई करते हुए देखा था और एक अन्य अभियुक्त चिन्तामणि ने मृतक पर तलवार से वार किया था । अतः, संदेह के परे यह कहा जा सकता है कि अपीलार्थी सं. 3 तथा अन्य अभियुक्तों ने अपराध में सक्रिय रूप से भाग लिया है और उन्होंने अपने-अपने हथियारों से मृतक की घातक रूप से पिटाई की है । चिकित्सीय साक्ष्य से यह भी दर्शित होता है कि शव की आंतरिक परीक्षा करने पर यह पाया गया है कि खोपड़ी, 10 पसलियां, दाईं प्रगंडास्थि और दाईं बहिर्जंघिका में अस्थि भंग है ; यकृत, प्लीहा और बायां यकृत विदीर्ण हैं । चिकित्सक (अभि. सा. 7) ने यह राय दी है कि मृतक की मृत्यु घाव और तंत्रिकाजन्य आघात से हुई है और यह मृत्यु 14 से 18 घंटों के भीतर हुई है । आहत को पहुंची उपर्युक्त क्षतियां और अस्थि भंग

इतने घातक हैं कि उनसे किसी व्यक्ति की मृत्यु कारित हो सकती है, इन क्षतियों और अस्थि भंगों पर विचार करने पर न्यायालय की यह राय है कि चिकित्सक के लिए यह आवश्यक नहीं है कि वह इस संबंध में विशिष्ट रिपोर्ट दे कि क्षतियां प्रकृति के सामान्य अनुक्रम में मृत्यु कारित करने के लिए पर्याप्त हैं । इन तथ्यों और परिस्थितियों में यह कहा जा सकता है कि अपीलार्थियों ने सामान्य आशय को अग्रसर करते हुए आहत को गंभीर क्षतियां कारित की हैं जिनके परिणामस्वरूप उसकी मृत्यु हुई है । अतः, अपीलार्थी का यह पक्षकथन स्वीकार नहीं किया जा सकता है कि उनके मामले पर दंड संहिता की धारा 302/34 के अधीन कार्यवाही नहीं की जानी चाहिए । (पैरा 9, 10 और 11)

अपीलार्थियों द्वारा निचले न्यायालयों के और उच्चतम न्यायालय के समक्ष एक अन्य पक्षकथन निरंतर रूप से यह रखा जा रहा है कि अभियोजन साक्षियों के कथनों में अनेक फर्क और विरोधाभास हैं, इस पक्षकथन को अभियोजन साक्षियों विशेषकर प्रत्यक्षदर्शी साक्षी अभि. सा. 1 और एक अन्य स्वतंत्र प्रत्यक्षदर्शी साक्षी अभि. सा. 10 के संपोषक कथनों को दृष्टिगत करते हुए कायम नहीं रखा जा सकता है । मामले के तथ्यों और परिस्थितियों का परिशीलन करने के लिए न्यायालय का यह मत है कि यह साबित करने के लिए पर्याप्त साक्ष्य है कि अभियुक्तों ने सामान्य आशय से मृतक को घातक क्षतियां कारित की हैं जिनके परिणामस्वरूप उसकी मृत्यु हुई है । चिकित्सीय साक्ष्य से अभियोजन साक्षियों के साक्ष्य की पूर्ण रूप से संपुष्टि होती है । अतः, न्यायालय का यह निष्कर्ष है कि अभियुक्त को उनके द्वारा कारित किए गए अपराधों के लिए दोषी ठहराने वाले उच्च न्यायालय द्वारा पारित किए गए आक्षेपित निर्णय में कोई कमी नहीं है । (पैरा 12 और 13)

अपीली (दांडिक) अधिकारिता : 2010 की दांडिक अपील सं. 375.

2000 की दांडिक अपील सं. 1467 में मध्य प्रदेश, उच्च न्यायालय, जबलपुर के तारीख 4 दिसंबर, 2008 के निर्णय और आदेश के विरुद्ध अपील ।

अपीलार्थी की ओर से	सर्वश्री सी. एल. साहू, सुश्री हेमा साहू, राजेन्द्र साहू, ऋषभ साहू और गोविन्द राम मिश्रा
प्रत्यर्थी की ओर से	श्री नवीन शर्मा और सुश्री स्वाति बी. शर्मा (सौरभ मिश्रा की ओर से)

न्यायालय का निर्णय न्यायमूर्ति एन. वी. रमन ने दिया ।

न्या. रमन – विचारण न्यायालय द्वारा दंड संहिता की धारा 302/149 और 148 के अधीन अपीलार्थियों की दोषसिद्धि की गई है और उनकी दोषसिद्धि को 2000 की दांडिक अपील सं. 1467 में मध्य प्रदेश उच्च न्यायालय, जबलपुर के तारीख 4 दिसंबर, 2008 के निर्णय और आदेश द्वारा दंड संहिता की धारा 302/34 में परिवर्तित किया गया है और उच्च न्यायालय के इस आदेश से व्यथित होकर विशेष इजाजत द्वारा यह अपील फाइल की गई है ।

2. अभियोजन वृत्तांत के अनुसार संक्षेप में तथ्य इस प्रकार हैं कि तारीख 8 नवंबर, 1999 को लगभग 5.00 बजे अपराह्न में एक ओर शिकायतकर्ता हीरालाल (अभि. सा. 1) और दूसरी ओर सुखमणि दास (अपीलार्थी सं. 2) और दो अन्य अभियुक्तों के बीच झगड़ा हो गया था । इसके पश्चात् शिकायतकर्ता अपने पिता मोहनलाल साहू के साथ उन अभियुक्तों के विरुद्ध रिपोर्ट दर्ज कराने के लिए तुरंत पुलिस थाना, अमदारा गया जिन्होंने उसके साथ झगड़ा किया था । जब लगभग 9.00 बजे अपराह्न में शिकायतकर्ता और उसका पिता (मृतक) पुलिस थाने से वापस आ रहे थे तब बीच-रास्ते में सुरेश (अपीलार्थी सं. 3) अचानक पीछे से आया और उसने शिकायतकर्ता के पिता मोहनलाल साहू पर लाठी से हमला किया और घातक वार किए जिसके परिणामस्वरूप मोहनलाल साहू जमीन पर गिर गया । इसके तत्काल पश्चात्, अन्य अभियुक्त अर्थात् चिन्तामणि जिसके पास तलवार थी, सुखमणि दास जिसके पास सरिया था और सुरेश, राम कुमार तथा रमेश जिनके हाथों में लाठियां थीं, वहां आए और उन्होंने अपने हथियारों से मोहनलाल साहू की निरंतर पिटाई की । शिकायतकर्ता घबरा गया और उसने डरकर झाड़ियों के पीछे जाकर शरण ली और अभियुक्तों के घटनास्थल से चले जाने के तुरंत पश्चात्, शिकायतकर्ता और ग्रामवासी रामकिशोर साहू (अभि. सा. 2) ने यह देखा कि मोहन साहू (मृतक) रक्त से लथपथ हो गया है और अभियुक्त द्वारा कारित की गई क्षतियों से उसकी मृत्यु हो गई है । शिकायतकर्ता अपने भाई और माता को इस घटना के संबंध में सूचित करने के पश्चात् पुलिस थाने चला गया और अभियुक्तों के विरुद्ध प्रथम इत्तिला रिपोर्ट (प्रदर्श-पी.1) दर्ज कराई ।

3. मामला रजिस्ट्रीकृत करने के पश्चात् पुलिस ने तत्काल अन्वेषण किया । अन्वेषक अधिकारी (अभि. सा. 14) घटनास्थल पर पहुंचा, मृत्यु

समीक्षा की, साक्षियों के कथन अभिलिखित किए और अभियुक्तों को गिरफ्तार किया । अभियुक्तों के कहने पर, अन्वेषक अधिकारी ने अपराध में प्रयोग किए गए हथियारों को बरामद किया, अभिग्रहण ज्ञापन तैयार किया और मृतक का शव शवपरीक्षण के लिए भेजा । तदनुसार पांचों अभियुक्तों के विरुद्ध दंड संहिता की धारा 148 और 302/149 के अधीन आरोप पत्र फाइल किया गया और इसके पश्चात् यह मामला सेशन न्यायालय के सुपुर्द कर दिया गया । अपीलार्थियों ने दोषी न होने का अभिवाक् किया और विचारण की मांग की ।

4. विचारण के दौरान अभियोजन पक्ष ने अपना पक्षकथन सिद्ध करने के लिए कुल मिलाकर 15 साक्षियों की परीक्षा की और अभियुक्तों ने अपनी प्रतिरक्षा में उनके विरुद्ध लगाए गए आरोपों को खारिज करने के लिए 3 साक्षियों की परीक्षा की । विचारण न्यायालय ने मामले के तथ्यों और परिस्थितियों के आधार पर संपूर्ण साक्ष्य का विश्लेषण करते हुए यह राय व्यक्त की कि अभियोजन पक्ष किसी भी संदेह के परे अभियुक्त के दोष को साबित करने में सफल रहा है । परिणामस्वरूप सभी अभियुक्तों को दंड संहिता की धारा 302/149 के अधीन अपराध कारित किए जाने के लिए दोषसिद्ध किया तथा आजीवन कारावास भोगने और 500/- रुपए के जुर्माने का संदाय करने जिसका व्यतिक्रम किए जाने पर दो मास का अतिरिक्त कारावास भोगने का दंडादेश दिया जबकि दंड संहिता की धारा 148 के अधीन कारित किए गए अपराध के लिए उन्हें एक वर्ष का कारावास भोगने के लिए दंडादिष्ट किया गया । तथापि, दोनों दंडादेश साथ-साथ चलाए जाने का निदेश दिया गया ।

5. विचारण न्यायालय द्वारा की गई दोषसिद्धि और पारित किए गए दंडादेश से व्यथित होकर सभी अभियुक्तों ने उच्च न्यायालय में अपील फाइल की है । उच्च न्यायालय ने, अभिलेख पर प्रस्तुत सामग्री पर विचार किया है और इस साक्ष्य पर भी विचार किया है कि चिकित्सक (अभि. सा. 7) ने, जिसने मृतक के शव का शवपरीक्षण किया है, यह निष्कर्ष निकाला है कि शिकायतकर्ता का साक्ष्य एक अभियुक्त अर्थात् रमेश साहू को छोड़कर सभी अभियुक्तों के विरुद्ध विश्वसनीय पाया गया है । अतः उच्च न्यायालय ने संदेह का लाभ देते हुए उक्त रमेश साहू को सभी आरोपों से दोषमुक्त कर दिया । जहां तक अन्य अभियुक्तों का दोषसिद्धि का संबंध है, उच्च न्यायालय ने उनकी दोषसिद्धि को दंड संहिता की धारा 302/149 से दंड संहिता की धारा 302/34 में परिवर्तित कर दिया है और

तदनुसार अभियुक्तों को आजीवन कारावास भोगने और 500/- रुपए के जुर्माने का संदाय करने जिसका व्यतिक्रम किए जाने पर दो मास का अतिरिक्त कठोर कारावास भोगने के लिए दंडादिष्ट किया गया है । जहां तक दंड संहिता की धारा 148 के अधीन की गई दोषसिद्धि का संबंध है, सभी अभियुक्तों को इस आरोप से दोषमुक्त किया गया है ।

6. वर्तमान अपील में, केवल तीन अभियुक्त अर्थात् रामकुमार, सुखमणि दास और सुरेश ने उच्च न्यायालय द्वारा पारित किए गए आक्षेपित आदेश को चुनौती दी है ।

7. अपीलार्थियों के विद्वान् काउंसेल ने हमारे समक्ष मुख्य रूप से यह दलील दी है कि अपीलार्थियों को इस मामले में मिथ्या फंसाया गया है । विशेष रूप से यह तर्क दिया गया है कि सुरेश (अपीलार्थी सं. 3) का नाम प्रथम इत्तिला रिपोर्ट में उल्लिखित नहीं है और उसे बाद में आए विचार द्वारा इस मामले में साशय आलिप्त किया गया है । अभियोजन साक्षियों का साक्ष्य संगत नहीं है और एक-दूसरे के कथन में कई विरोधाभास और कमियां हैं । विद्वान् काउंसेल द्वारा यह भी दलील दी गई है कि अपीलार्थियों के विरुद्ध लगाए गए आरोपों को साबित करने के लिए शिकायतकर्ता (प्रत्यक्षदर्शी साक्षी) के साक्ष्य की चिकित्सीय साक्ष्य से संपुष्टि नहीं होती है । चूंकि चिकित्सक ने यह स्पष्ट नहीं किया है कि मृतक के शरीर पर आई क्षतियां मृत्यु कारित करने के लिए पर्याप्त हैं, इसलिए दंड संहिता की धारा 302 को लागू किया जाना उचित नहीं है । अतः विद्वान् काउंसेल ने यह दलील दी है कि निचले न्यायालयों द्वारा की गई दोषसिद्धि और पारित किए गए दंडादेश त्रुटिपूर्ण और अवैध हैं जो अपास्त किए जाने चाहिए ।

8. इसके प्रतिकूल राज्य की ओर से विद्वान् काउंसेल ने दृढ़तापूर्वक यह दलील दी है कि विद्वान् विचारण न्यायाधीश द्वारा यह निष्कर्ष निकाला गया है कि अपीलार्थी उन पर लगाए गए आरोपों के दोषी हैं और यह निष्कर्ष अभिलेख पर प्रस्तुत संपूर्ण सामग्री का सावधानीपूर्वक परिशीलन किए जाने पर आधारित है जिसका समर्थन प्रत्यक्षदर्शी साक्ष्य तथा चिकित्सीय साक्ष्य से भी होता है । उच्च न्यायालय ने भी संपूर्ण साक्ष्य का मूल्यांकन करने के पश्चात् अभियुक्तों को इन अपराधों का दोषी पाया है और तदनुसार उनकी दोषसिद्धि की पुष्टि की है । अपीलार्थियों ने मृतक की बर्बरतापूर्ण हत्या की है जिसके लिए उन्हें न्यायोचित रूप से दंडित किया गया है और इस प्रकार, उच्च न्यायालय के निर्णय पर प्रश्न नहीं उठाया जा

सकता है । उन्होंने अंतिमतः यह दलील दी है कि इस अपील में ऐसी कोई गुणता नहीं है कि इस न्यायालय द्वारा हस्तक्षेप किया जाए और यह अपील खारिज किए जाने योग्य है ।

9. हमने दोनों पक्षकारों के विद्वान् काउंसेलों को सुना है और अभिलेख पर प्रस्तुत सामग्री का सावधानीपूर्वक परिशीलन भी किया है । निर्विवादित रूप से अभियुक्तों और शिकायतकर्ता पक्ष के बीच शत्रुता थी और यह प्रतीत होता है कि एक आपराधिक मामला भी उनके बीच लंबित चल रहा था । हमें अभिलेख से यह पता चलता है कि शिकायत रजिस्ट्रीकृत किए जाने के तत्काल पश्चात्, अन्वेषक अधिकारी (अभि. सा. 14) घटनास्थल पर पहुंचा और वहां अगले दिन अर्थात् 9 नवंबर, 1999 को मामले का अन्वेषण करने के लिए 1.00 बजे अपराह्न तक मौजूद रहा और उसने साक्षियों के कथन भी अभिलिखित किए । उस समय पर ही शिकायतकर्ता (अभि. सा. 1) ने सुरेश (अपीलार्थी सं. 3) के नाम और उसके द्वारा अपराध में निभाई गई भूमिका का उल्लेख किया है जिसके संबंध में अन्वेषक अधिकारी ने रोजनामचे में प्रविष्टि की है । शिकायतकर्ता (अभि. सा. 1) द्वारा भी उसके परिसाक्ष्य में इसी पक्षकथन की पुष्टि की गई है कि पांच व्यक्तियों ने हमला किया था और उसके पिता को क्षतियां कारित की हैं और यह भी अभिसाक्ष्य दिया है कि सुरेश, रामकुमार और सुखमणि दास ने उसके पिता पर लाठियों से वार किए गए थे । विशेष रूप से यह उल्लेख किया गया है कि सुरेश (अपीलार्थी सं. 3) ने मृतक की कनपटी (कर्णपटह) पर अपनी लाठी से वार किया है । टुकोदीलाल अर्थात् एक अन्य स्वतंत्र प्रत्यक्षदर्शी साक्षी (अभि. सा. 10) ने भी घटनास्थल पर अपीलार्थी सं. 3 की मौजूदगी की पुष्टि की है जिसने आहत को लाठी से क्षतियां कारित की हैं । इस साक्षी ने यह कथन किया है कि उसने रामकुमार, सुरेश और रमेश को मोहन साहू (मृतक) की, लाठी से पिटाई करते हुए देखा था और एक अन्य अभियुक्त चिन्तामणि ने मृतक पर तलवार से वार किया था । अतः, संदेह के परे यह कहा जा सकता है कि अपीलार्थी सं. 3 तथा अन्य अभियुक्तों ने अपराध में सक्रिय रूप से भाग लिया है और उन्होंने अपने-अपने हथियारों से मृतक की घातक रूप से पिटाई की है ।

10. शवपरीक्षण रिपोर्ट (प्रदर्श पी-10) से हमारा यह निष्कर्ष है कि ब्लॉक मेडिकल ऑफिसर, पी.एच.सी. अमदारा, जिला सतना के डा. गंगा प्रसाद (अभि. सा. 7) ने मृतक के शव का शवपरीक्षण किया है और उन्होंने निम्न क्षतियां अभिलिखित की हैं :–

(i) मध्य ललाट के बालों वाले भाग के 3 सें.मी. ऊपर की ओर धारदार क्षति है जिसका आकार 4 सें.मी. × 2 सें.मी. है । रक्त का थक्का मौजूद है । घाव की दिशा ऊर्ध्वाधर है ।

(ii) कर्णपटह के बाईं ओर वेधित घाव मौजूद है जिसका आकार 1 सें.मी. × 1 सें.मी. × 2 सें.मी. है ।

(iii) दाईं प्रगंडास्थि के 1/3 भाग में ऊपर की ओर अस्थि भंग है ।

(iv) दाईं बहिर्जंघिका (पिण्डली) के 1/3 भाग में नीचे की ओर अस्थि भंग है ।

(v) दाईं टांग के पार्श्विक भाग में एक-तिहाई दूरी पर नीचे की ओर विदीर्ण घाव है ।

(vi) बाईं टांग के मध्य भाग में चार वेधित घाव हैं जिनमें प्रत्येक घाव का आकार 2 सें.मी. × 1.5 सें.मी. × 2 सें.मी. है । यह घाव चार दांत वाले किसी औजार से बना प्रतीत होता है ।

(vii) वक्ष के दोनों ओर लाल-नीले रंग के अनेक गुमटे हैं और ऐसे ही गुमटे उदर तथा पीठ पर हैं ।

(viii) दोनों हाथों की अंगुलियां आधी मुड़ी हुई हैं, बाईं बाह भी आधी मुड़ी हुई स्थिति में है ।

चिकित्सीय साक्ष्य से यह भी दर्शित होता है कि शव की आंतरिक परीक्षा करने पर यह पाया गया है कि खोपड़ी, 10 पसलियां, दाईं प्रगंडास्थि और दाईं बहिर्जंघिका में अस्थि भंग है ; यकृत, प्लीहा और बायां यकृत विदीर्ण हैं । चिकित्सक (अभि. सा. 7) ने यह राय दी है कि मृतक की मृत्यु घाव और तंत्रिकाजन्य आघात से हुई है और यह मृत्यु 14 से 18 घंटों के भीतर हुई है ।

11. आहत को पहुंची उपर्युक्त क्षतियां और अस्थि भंग इतने घातक हैं कि उनसे किसी व्यक्ति की मृत्यु कारित हो सकती है, इन क्षतियों और अस्थि भंगों पर विचार करने पर हमारी यह राय है कि चिकित्सक के लिए यह आवश्यक नहीं है कि वह इस संबंध में विशिष्ट रिपोर्ट दे कि क्षतियां प्रकृति के सामान्य अनुक्रम में मृत्यु कारित करने के लिए पर्याप्त हैं । इन तथ्यों और परिस्थितियों में यह कहा जा सकता है कि अपीलार्थियों ने सामान्य आशय को अग्रसर करते हुए आहत को गंभीर क्षतियां कारित की

हैं जिनके परिणामस्वरूप उसकी मृत्यु हुई है । अतः, अपीलार्थी का यह पक्षकथन स्वीकार नहीं किया जा सकता है कि उनके मामले पर दंड संहिता की धारा 302/34 के अधीन कार्यवाही नहीं की जानी चाहिए ।

12. अपीलार्थियों द्वारा निचले न्यायालयों के और हमारे समक्ष एक अन्य पक्षकथन निरंतर रूप से यह रखा जा रहा है कि अभियोजन साक्षियों के कथनों में अनेक फर्क और विरोधाभास हैं, इस पक्षकथन को अभियोजन साक्षियों विशेषकर प्रत्यक्षदर्शी साक्षी अभि. सा. 1 और एक अन्य स्वतंत्र प्रत्यक्षदर्शी साक्षी अभि. सा. 10 के संपोषक कथनों को दृष्टिगत करते हुए कायम नहीं रखा जा सकता है ।

13. मामले के तथ्यों और परिस्थितियों का परिशीलन करने के लिए हमारा यह मत है कि यह साबित करने के लिए पर्याप्त साक्ष्य है कि अभियुक्तों ने सामान्य आशय से मृतक को घातक क्षतियां कारित की हैं जिनके परिणामस्वरूप उसकी मृत्यु हुई है । चिकित्सीय साक्ष्य से अभियोजन साक्षियों के साक्ष्य की पूर्ण रूप से संपुष्टि होती है । अतः, हमारा यह निष्कर्ष है कि अभियुक्त को उनके द्वारा कारित किए गए अपराधों के लिए दोषी ठहराने वाले उच्च न्यायालय द्वारा पारित किए गए आक्षेपित निर्णय में कोई कमी नहीं है ।

14. उपर्युक्त सभी कारणों के आधार पर, हमारा यह निष्कर्ष है कि इस अपील में कोई सार नहीं है और उच्च न्यायालय के निर्णय में संविधान के अनुच्छेद 136 के अधीन हस्तक्षेप करने की कोई आवश्यकता नहीं है और यह अपील एतदद्वारा खारिज की जाती है ।

अपील खारिज की गई ।

अस./अनू.

संजीव लाल और अन्य

बनाम

आय-कर आयुक्त, चंडीगढ़ और एक अन्य

1 जुलाई, 2014

न्यायमूर्ति अनिल आर. दवे और न्यायमूर्ति शिव कीर्ति सिंह

आय-कर अधिनियम, 1961 (1961 का 43) – धारा 54 और 2(47) – निवास-गृह का विक्रय करने पर उसके अंतरण से होने वाले दीर्घकालिक पूंजी अभिलाभ पर आय-कर से राहत – निवास-गृह को बेचने के लिए अग्रिम धन लेकर विक्रय करार किया जाना – मुकदमेबाजी के कारण विक्रय-विलेख विलंब से रजिस्ट्रीकृत किया जाना – विक्रय करार न कि विक्रय-विलेख के निष्पादन की तारीख से एक वर्ष के भीतर एक नया निवास-गृह खरीदा जाना – निर्धारण अधिकारी द्वारा दीर्घकालिक पूंजी अभिलाभ पर राहत न दिया जाना – अंतरिती-अपीलार्थी मुकदमेबाजी के लंबित रहते हुए सक्षम न्यायालय के आदेश के कारण विक्रय-विलेख निष्पादित करने के लिए अवरुद्ध हो गए थे किंतु विक्रय करार करने के पश्चात् प्रश्नगत पूंजी आस्ति की बाबत कुछ अधिकार क्रेता के पक्ष में अंतरित होना, इसलिए मामले के विशिष्ट तथ्यों के आधार पर विक्रय करार की तारीख को पूंजी आस्ति के अंतरण की तारीख माना जा सकता है और अंतरिती-अपीलार्थी दीर्घकालिक पूंजी अभिलाभ पर आय-कर की बाबत राहत के हकदार हैं ।

सेक्टर 9-सी, चंडीगढ़ स्थित एक निवास-गृह श्री अमृत लाल की स्व-अर्जित संपत्ति थी और उसने एक विल निष्पादित की थी जिसके द्वारा उपर्युक्त गृह में आजीवन हित अपनी पत्नी को दिया गया था और उसकी पत्नी की मृत्यु उपरांत गृह को उसके पूर्व-मृत पुत्र की विधवा और उसके दो पुत्रों के पक्ष में दिया जाना था । श्री अमृत लाल की मृत्यु उपरांत गृह का कब्जा उसकी विधवा को दिया गया । उसकी विधवा का तारीख 29 अगस्त, 1993 को स्वर्गवास हो गया । उसकी मृत्यु उपरांत, विल के अनुसार, प्रश्नगत गृह का स्वामित्व अपीलार्थियों और स्वर्गीय श्री अमृत लाल के एक अन्य पौत्र में निहित हो गया । अमृत लाल के पौत्रों में से एक पौत्र और पुत्रवधु इन अपीलों में अपीलार्थी हैं । अपीलार्थियों ने गृह का विक्रय करने का विनिश्चय किया और इस आशय से उन्होंने तारीख 27

दिसम्बर, 2002 को 1.32 करोड़ रुपए के प्रतिफल पर गृह के विक्रय का करार किया । अपीलार्थियों द्वारा उक्त रकम में से 15 लाख रुपए की राशि अग्रिम धन के रूप में प्राप्त की गई । क्योंकि अपीलार्थियों ने प्रश्नगत गृह का विक्रय करने का विनिश्चय कर लिया था, इसलिए उन्होंने एक अन्य निवास-गृह क्रय करने का विनिश्चय किया ताकि पूंजी अभिलाभ सहित विक्रय आगमों को उपर्युक्त गृह क्रय करने के लिए उपयोग किया जा सके । उक्त गृह तारीख 30 अप्रैल, 2003 को क्रय किया गया था अर्थात् उस तारीख से ठीक एक वर्ष के भीतर जिस तारीख को अपीलार्थियों द्वारा विक्रय करार किया गया था । श्री रंजीत लाल, जो मृत वसीयतकर्ता श्री अमृत लाल का एक अन्य पुत्र है, द्वारा विल की विधिमान्यता को एक सिविल वाद फाइल करके प्रश्नगत किया गया, जिसमें विचारण न्यायालय ने एक अंतरिम आदेश द्वारा अपीलार्थियों को गृह संपत्ति की बाबत व्यौहार करने से अवरुद्ध कर दिया । वाद के लंबित रहने के दौरान श्री रंजीत लाल का अपने पीछे कोई विधिक वारिस न छोड़कर स्वर्गवास हो गया । उसके द्वारा फाइल किए वाद को मई, 2004 में खारिज कर दिया गया । ऊपर उल्लिखित वाद में अनुदत्त अंतरिम अनुतोष के कारण अपीलार्थी जब तक वाद खारिज नहीं हो गया और विल की विधिमान्यता को मान्य नहीं ठहराया गया, तब तक विक्रय-विलेख निष्पादित नहीं कर सके । इस प्रकार, अपीलार्थियों ने वर्ष 2004 में विक्रय-विलेख निष्पादित किया और इसे तारीख 24 सितम्बर, 2004 को रजिस्ट्रीकृत किया गया । गृह सम्पत्ति के अंतरण के उपरांत, दीर्घकालिक पूंजी अभिलाभ उद्भूत हुआ था, किंतु अपीलार्थियों ने एक नया निवास-गृह क्रय कर लिया था और पूंजी अभिलाभ की रकम को उक्त नई आस्ति क्रय करने के लिए यह विश्वास करते हुए उपयोग किया था कि दीर्घकालिक पूंजी अभिलाभ आय-कर अधिनियम की धारा 54 के उपबंधों के अनुसार आय-कर के लिए प्रभार्य नहीं है, निर्धारण वर्ष 2005-2006 के लिए फाइल की गई अपनी आय-कर की विवरणी में उक्त दीर्घकालिक पूंजी अभिलाभ को प्रकट नहीं किया । अधिनियम के अधीन निर्धारण वर्ष 2005-2006 की निर्धारण कार्यवाहियों में निर्धारण अधिकारी का यह मत था कि अपीलार्थी अधिनियम की धारा 54 के अधीन किसी फायदे के हकदार नहीं हैं और इसका कारण यह है कि मूल आस्ति अर्थात् निवास-गृह का अंतरण तारीख 24 सितम्बर, 2004 को किया गया था जबकि अपीलार्थियों ने निवास-गृह तारीख 30 अप्रैल, 2003 को अर्थात् नई आस्ति क्रय करने के एक वर्ष से अधिक पहले क्रय किया

था और इसलिए अपीलार्थी अधिनियम की धारा 45 के अधीन पूंजी अभिलाभ पर आय-कर का संदाय करने के दायी बनाए गए । अपीलार्थियों द्वारा आय-कर आयुक्त (अपील) के समक्ष चुनौती दी गई । अपील खारिज कर दी गई और इसलिए अपीलार्थियों ने आय-कर अपील अधिकरण के समक्ष समावेदन किया । अधिकरण ने भी आयुक्त द्वारा पारित किए गए आदेशों को मान्य ठहराया । अपीलार्थियों ने अधिनियम की धारा 260क के अधीन अपीलें फाइल करके उच्च न्यायालय में समावेदन किया, जो आक्षेपित निर्णय द्वारा खारिज कर दी गईं । अपीलार्थियों ने उच्चतम न्यायालय में अपीलें फाइल कीं । उच्चतम न्यायालय द्वारा अपीलें मंजूर करते हुए,

अभिनिर्धारित – आय-कर अधिनियम, 1961 की धारा 54 के वाचन से यह सुस्पष्ट है कि अधिनियम की धारा 54 के अधीन फायदा लेने के लिए कोई निवास-गृह/नई आस्ति उस तारीख के, जिसको उस निवास-गृह का अंतरण हुआ है जिसकी बाबत दीर्घकालिक पूंजी अभिलाभ उद्भूत हुआ था, एक वर्ष पहले या दो वर्ष पश्चात् तक खरीदा जाना आवश्यक है । प्रस्तुत मामले में, तीन तारीखें विवादग्रस्त नहीं हैं । अपीलार्थियों द्वारा निवास-गृह अंतरित किया गया था और विक्रय-विलेख तारीख 24 सितम्बर, 2004 को रजिस्ट्रीकृत हुआ था । विक्रय-विलेख उस विक्रय करार जो तारीख 27 दिसम्बर, 2002 को निष्पादित किया गया था, के अनुसरण में निष्पादित किया गया था और जब विक्रय करार निष्पादित किया गया था तब अपीलार्थियों द्वारा 1.32 करोड़ रुपए के कुल प्रतिफल में से 15 लाख रुपए अग्रिम धन के रूप में प्राप्त किए गए थे तथा अपीलार्थियों द्वारा तारीख 30 अप्रैल, 2003 को एक नए निवास-गृह/नई आस्ति की खरीद की गई थी । यह भी विवादग्रस्त नहीं है कि एक मुकदमेबाजी चल रही थी जिसमें स्वर्गीय श्री अमृत लाल की विल को उसके पुत्र द्वारा चुनौती दी गई थी और अपीलार्थियों को एक न्यायिक आदेश द्वारा प्रश्नगत गृह की बाबत व्यौहार करने से अवरुद्ध किया गया था तथा उक्त न्यायिक आदेश केवल मई, 2004 में बातिल किया गया था और इसलिए विक्रय-विलेख उक्त आदेश के बातिल होने से पूर्व निष्पादित नहीं किया जा सका था, यद्यपि विक्रय करार तारीख 27 सितम्बर, 2002 को निष्पादित किया गया था । उस तारीख, जिसको संपत्ति का विक्रय करने का विनिश्चय किया गया था अर्थात् 27 दिसम्बर, 2002 को यदि अंतरण या विक्रय की तारीख के रूप में समझा जाए तो यह विवादग्रस्त नहीं किया जा सकता है कि अपीलार्थी

अधिनियम की धारा 54 के उपबंधों के अधीन फायदे के हकदार होंगे क्योंकि अपीलार्थियों द्वारा अर्जित दीर्घकालिक पूंजी अभिलाभ का उपयोग तारीख 30 अप्रैल, 2003 को अर्थात् उस गृह, जिससे दीर्घकालिक पूंजी अभिलाभ हुआ था, के अंतरण की तारीख से एक वर्ष के भीतर नई आस्ति/निवास-गृह खरीदने के लिए किया गया था । इस न्यायालय द्वारा इस प्रश्न पर विचार किया जाना है कि क्या विक्रय करार, जो तारीख 27 दिसम्बर, 2002 को निष्पादित किया गया था, की तारीख को उस तारीख के रूप में समझा जा सकता है जिसको संपत्ति अर्थात् निवास-गृह अंतरित किया गया था । सामान्य परिस्थितियों में, किसी स्थावर संपत्ति की बाबत विक्रय करार निष्पादित करने से अंतरिती/क्रेता के पक्ष में व्यक्तिबंधी अधिकार सृजित किया जाता है । जब क्रेता के पक्ष में ऐसा अधिकार सृजित किया जाता है, तो विक्रेता किसी अन्य व्यक्ति को उक्त संपत्ति बेचने से अवरुद्ध हो जाता है क्योंकि क्रेता को, जिसके पक्ष में व्यक्तिबंधी अधिकार सृजित किया जाता है, तब यदि विक्रेता किसी कारणवश विक्रय-विलेख निष्पादित नहीं कर रहा है तो क्रेता को करार के विनिर्दिष्ट पालन को कार्यान्वित करने का विधिसम्मत अधिकार होता है । इस प्रकार, विक्रय करार के आधार पर विक्रेता द्वारा क्रेता को कुछ अधिकार दिया जाता है । प्रश्न यह है कि क्या यह कहा जा सकता है कि जब विक्रय करार किया जाता है, तो उस समय संपूर्ण संपत्ति बेच दी गई थी । सामान्य परिस्थितियों में, पूर्वोल्लिखित प्रश्न का उत्तर नकारात्मक दिया जाना चाहिए । तथापि, अधिनियम की धारा 2(47), जिसमें पूंजी आस्ति के संबंध में "अंतरण" शब्द को परिभाषित किया गया है, के उपबंधों पर विचार करने पर कोई भी यह कह सकता है कि यदि विक्रय करार के निष्पादन से संपत्ति में अधिकार समाप्त हो जाता है तो यह समझा जा सकता है कि पूंजी आस्ति अंतरित कर दी गई है । अधिनियम की धारा 2(47) में यथा परिभाषित "अंतरण" की परिभाषा को ध्यान में रखते हुए, यह स्पष्ट हो जाता है कि जब किसी पूंजी आस्ति के संबंध में कोई अधिकार समाप्त हो जाता है और वह अधिकार किसी अन्य व्यक्ति को अंतरित हो जाता है, तो यह किसी पूंजी आस्ति के अंतरण की कोटि में आएगा । पूर्वोल्लिखित परिभाषा को ध्यान में रखते हुए, वर्तमान मामले के तथ्यों पर विचार करते हैं, जहां प्रश्नगत निवास-गृह/मूल आस्ति को अंतरित करने के लिए पूंजी आस्ति के संबंध में विक्रय करार तारीख 27 दिसम्बर, 2002 को निष्पादित किया गया था और 15 लाख रुपए की राशि अग्रिम धन के रूप में प्राप्त

की गई थी । यह भी विवादग्रस्त नहीं है कि विक्रय-विलेख एक ओर श्री रंजीत सिंह तथा दूसरी ओर अपीलार्थियों के बीच चल रही मुकदमेबाजी के लंबित रहने के कारण निष्पादित नहीं किया जा सका था क्योंकि श्री रंजीत लाल ने उस विल की विधिमान्यता को चुनौती दी थी, जिसके अधीन अपीलार्थियों को संपत्ति न्यागत हुई थी । श्री रंजीत लाल द्वारा फाइल किए गए वाद में पारित किए गए आदेश के आधार पर अपीलार्थी उक्त निवास-गृह का व्यौहार करने के लिए अवरुद्ध थे और विधि का पालन करने वाले किसी नागरिक से यह प्रत्याशा नहीं की जा सकती कि वह किसी तृतीय पक्षकार के पक्ष में विक्रय-विलेख निष्पादित करके, जबकि वह ऐसा करने के लिए अवरुद्ध हो, न्यायालय के निदेश का अतिक्रमण करे । इन परिस्थितियों में, एक न्यायसंगत कारण से, जो अपीलार्थियों के नियंत्रणाधीन नहीं था, वे विक्रय-विलेख निष्पादित नहीं कर सके थे और विक्रय-विलेख श्री रंजीत लाल द्वारा विल की विधिमान्यता को चुनौती देते हुए फाइल किए गए वाद के खारिज होने के पश्चात् ही तारीख 24 सितम्बर, 2004 को रजिस्ट्रीकृत किया गया था । पूर्वोल्लिखित तथ्यों को ध्यान में रखते हुए और "अंतरण" शब्द की परिभाषा को देखते हुए कोई भी इस निष्कर्ष पर पहुंच सकता है कि प्रश्नगत पूंजी आस्ति के संबंध में कुछ अधिकार क्रेता के पक्ष में अंतरित किया गया था और इसलिए प्रश्नगत पूंजी आस्ति के संबंध में कुछ अधिकार, जो अपीलार्थियों के पास था, समाप्त हो गया था क्योंकि विक्रय करार निष्पादित करने के पश्चात् अपीलार्थियों को विधि के अनुसार संपत्ति किसी अन्य व्यक्ति को बेचने की स्वतंत्रता नहीं थी । क्रेता, जिसके पक्ष में विक्रय करार निष्पादित किया गया था और जिसने अग्रिम धन के रूप में 15 लाख रुपए भी संदत्त किए थे, के पक्ष में एक व्यक्तिबंधी अधिकार सृजित किया गया था । निस्संदेह, पक्षकारों द्वारा ऐसे संविदात्मक अधिकार को पश्चात्वर्ती संविदा या आचरण द्वारा अभ्यर्पित या निष्क्रिय किया जा सकता है जिससे प्रस्तावित क्रेता को संपत्ति का अंतरण न किया जाए, किंतु प्रस्तुत मामले में ऐसा नहीं है । इस तथ्य के अतिरिक्त कि "अंतरण" शब्द को अधिनियम की धारा 2(47) में परिभाषित किया गया है, यदि अधिनियम की धारा 54, जिसमें ऐसे व्यक्ति को राहत दी गई है जिसने अपना एक निवास-गृह अंतरित किया है और एक अन्य निवास-गृह अंतरण के एक वर्ष पहले या यहां तक कि अंतरण के दो वर्ष पश्चात् खरीदा है, के उपबंधों पर विचार किया जाए तो विधान-मंडल का आशय ऐसे व्यक्ति को दीर्घकालिक पूंजी अभिलाभ पर कर के संदाय के

मामले में राहत देना है । यदि कोई व्यक्ति, जिसे अपने पुराने निवास परिसर के अंतरण पर कुछ अधिक रकम प्राप्त होती है और वह उसके पश्चात् अधिनियम की धारा 54 में अनुबंधित समय के भीतर एक नया परिसर खरीद लेता है या निर्माण करता है, तो विधान-मंडल ऐसे व्यक्ति पर दीर्घकालिक पूंजी अभिलाभ पर कर का बोझ डालना नहीं चाहता है और इसलिए उसे दीर्घकालिक पूंजी अभिलाभ पर आय-कर के संदाय में राहत दी गई है । विधान-मंडल के आशय या उस प्रयोजन, जिसके साथ अधिनियम में उक्त उपबंध अंतःस्थापित किया गया है, से भी यह पूर्णतः स्पष्ट है कि निर्धारिती को कुछ राहत दी जानी चाहिए । यद्यपि बहुधा यह कहा गया है कि सामान्य बोध आय-कर अधिनियम का बेमेल और एक असंगत सहयोगी है और यह भी कहा जाता है कि साम्या और कर परस्पर अजनबी हैं, फिर भी इस न्यायालय ने प्रायः यह मत व्यक्त किया है कि अधिनियम के उपबंधों का प्रयोजनात्मक निर्वचन किया जाना चाहिए । विक्रय करार के निष्पादन के परिणाम भी पूर्णतः स्पष्ट हैं और वे यह हैं कि अपीलार्थियों ने किसी अन्य व्यक्ति को संपत्ति नहीं बेची थी । व्यवहारिक जीवन में, ऐसी घटनाएं देखने में आती हैं कि किसी व्यक्ति के पक्ष में स्थावर संपत्ति का विक्रय करार निष्पादित करने के पश्चात् भी संपत्ति को किसी अन्य व्यक्ति को बेचने की कोशिश की जाती है । न्यायालय की राय में, ऐसा कार्य विधि के अनुसार नहीं होगा क्योंकि जब एक बार किसी व्यक्ति के पक्ष में विक्रय करार निष्पादित कर दिया जाता है, तो उक्त व्यक्ति को विनिर्दिष्ट पालन के लिए वाद फाइल करके संपत्ति अपने पक्ष में अंतरित करवाने का अधिकार प्राप्त हो जाता है और इसलिए न्यायालय निःसंकोच यह कह सकता है कि जब विक्रय करार निष्पादित किया गया था, तब अपीलार्थियों का उक्त संपत्ति की बाबत कुछ अधिकार समाप्त हो गया था और क्रेता/अंतरिती के पक्ष में कुछ अधिकार सृजित हो गया था । इस प्रकार, अपीलार्थियों द्वारा पूंजी आस्ति अर्थात् प्रश्नगत संपत्ति की बाबत अधिकार तारीख 27 दिसम्बर, 2002 को क्रेता/अंतरिती के पक्ष में अंतरित कर दिया गया था । विक्रय-विलेख इस कारण निष्पादित नहीं किया जा सका था क्योंकि अपीलार्थियों को एक सक्षम न्यायालय के आदेश द्वारा वास-गृह के विषय में व्यौहार करने से अवरुद्ध किया गया था, जिसका वे अतिक्रमण नहीं कर सकते थे । मामले के पूर्वोल्लिखित विशिष्ट तथ्यों को देखते हुए और अधिनियम की धारा 2(47) में यथा परिभाषित "अंतरण" शब्द की परिभाषा पर विचार करते हुए न्यायालय का यह मत है कि

अपीलार्थी अधिनियम की धारा 54 के अधीन उस दीर्घकालिक पूंजी अभिलाभ की बाबत राहत के हकदार थे, जो उन्होंने अपनी गृह-संपत्ति, चंडीगढ़ के सेक्टर 9-सी स्थित मकान सं. 267, के अंतरण के अनुसरण में उपार्जित किया था और एक नई आस्ति/निवास-गृह खरीदने के लिए उपयोग किया था । (पैरा 17, 18, 19, 20, 21, 22, 23, 24 और 25)

अवलंबित निर्णय

		पैरा
[2001]	(2001) 3 एस. सी. सी. 359 : **ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रैस** बनाम **आय-कर आयुक्त** ।	22

अपीली (सिविल) अधिकारिता : 2014 की सिविल अपील सं. 5899 और 5900.

2012 की आय-कर अपील सं. 153 और 154 में चंडीगढ़ स्थित पंजाब और हरियाणा उच्च न्यायालय के तारीख 29 जनवरी, 2013 के निर्णय और आदेश के विरुद्ध अपील ।

अपीलार्थियों की ओर से सर्वश्री पी. एस. पटवालिया और अशोक के. महाजन

प्रत्यर्थियों की ओर से सर्वश्री अरिजीत प्रसाद, (सुश्री) पूर्णिमा भट काक और (सुश्री) तानुश्री सिन्हा (श्रीमती अनिल कटियार की ओर से)

न्यायालय का निर्णय न्यायमूर्ति अनिल आर. दवे ने दिया ।

न्या. दवे – इजाजत दी गई ।

2. क्योंकि दोनों अपीलों के तथ्य एक जैसे हैं, इसलिए पक्षकारों की ओर से हाजिर होने वाले विद्वान् काउंसेलों के अनुरोध पर दोनों अपीलें एक-साथ सुनी गई हैं ।

3. 2012 की आय-कर अपील सं. 153 और 154 में पंजाब और हरियाणा उच्च न्यायालय द्वारा तारीख 29 जनवरी, 2013 को दिए गए निर्णय से व्यथित होकर निर्धारितियों द्वारा ये अपीलें फाइल की गई हैं ।

4. वे तथ्य जिनसे वर्तमान मुकदमेबाजी उद्भूत हुई, संक्षेप में निम्नलिखित हैं :–

सेक्टर 9-सी, चंडीगढ़ स्थित एक निवास-गृह सं. 267 श्री अमृत लाल की स्व-अर्जित संपत्ति थी और उसने एक विल निष्पादित की थी जिसके द्वारा उपर्युक्त गृह में आजीवन हित अपनी पत्नी को दिया गया था और उसकी पत्नी की मृत्यु उपरांत गृह को उसके पूर्व-मृत पुत्र-स्वर्गीय श्री मोती लाल की विधवा और उसके दो पुत्रों के पक्ष में दिया जाना था । अमृत लाल के ऊपर उल्लिखित पौत्रों में से एक पौत्र और पुत्रवधू इन अपीलों में अपीलार्थी हैं । श्री अमृत लाल की मृत्यु उपरांत गृह का कब्जा उसकी विधवा को दिया गया । उसकी विधवा श्रीमती शकुंतला देवी का तारीख 29 अगस्त, 1993 को स्वर्गवास हो गया । श्रीमती शकुंतला देवी की मृत्यु उपरांत, विल के अनुसार, प्रश्नगत गृह का स्वामित्व वर्तमान अपीलार्थियों और स्वर्गीय श्री अमृत लाल के एक अन्य पौत्र में निहित हो गया ।

अपीलार्थियों ने गृह का विक्रय करने का विनिश्चय किया और इस आशय से उन्होंने तारीख 27 दिसम्बर, 2002 को श्री संदीप तलवार के साथ 1.32 करोड़ रुपए के प्रतिफल पर गृह के विक्रय का करार किया । अपीलार्थियों द्वारा उक्त रकम में से 15 लाख रुपए की राशि अग्रिम धन के रूप में प्राप्त की गई । क्योंकि अपीलार्थियों ने प्रश्नगत गृह का विक्रय करने का विनिश्चय किया था, इसलिए उन्होंने एक अन्य निवास-गृह, सं. 528, सेक्टर 8, चंडीगढ़, क्रय करने का विनिश्चय किया ताकि पूंजी अभिलाभ सहित विक्रय आगमों को उपर्युक्त गृह सं. 528 क्रय करने के लिए उपयोग किया जा सके । उक्त गृह तारीख 30 अप्रैल, 2003 को क्रय किया गया था अर्थात् उस तारीख से ठीक एक वर्ष के भीतर जिस तारीख को अपीलार्थियों द्वारा विक्रय करार किया गया था ।

श्री रंजीत लाल, जो मृत वसीयतकर्ता श्री अमृत लाल का एक अन्य पुत्र है, द्वारा विल की विधिमान्यता को एक सिविल वाद फाइल करके प्रश्नगत किया गया था, जिसमें विचारण न्यायालय ने एक अंतरिम आदेश द्वारा अपीलार्थियों को गृह संपत्ति की बाबत व्यौहार करने से अवरुद्ध कर दिया था । वाद के लंबित रहने के दौरान तारीख 2 दिसम्बर, 2000 को श्री रंजीत लाल का अपने पीछे कोई विधिक वारिस न छोड़कर स्वर्गवास हो गया । उसके द्वारा फाइल किए वाद को मई, 2004 में खारिज कर दिया

गया, क्योंकि वाद में उसकी ओर से कोई अभ्यावेदन नहीं दिया गया था ।

5. ऊपर उल्लिखित वाद में अनुदत्त अंतरिम अनुतोष के कारण अपीलार्थी जब तक वाद खारिज नहीं हो गया और विल की विधिमान्यता को मान्य नहीं ठहराया गया, तब तक विक्रय-विलेख निष्पादित नहीं कर सके । इस प्रकार, अपीलार्थियों ने वर्ष 2004 में विक्रय-विलेख निष्पादित किया और इसे तारीख 24 सितम्बर, 2004 को रजिस्ट्रीकृत किया गया ।

6. गृह सम्पत्ति के अंतरण के उपरांत, दीर्घकालीन पूंजी अभिलाभ उद्भूत हुआ था, किंतु क्योंकि अपीलार्थियों ने एक नया निवास-गृह क्रय कर लिया था और पूंजी अभिलाभ की रकम को उक्त नई आस्ति क्रय करने के लिए यह विश्वास करते हुए उपयोग किया था कि दीर्घकालिक पूंजी अभिलाभ आय-कर अधिनियम, 1961 (जिसे इसमें इसके पश्चात् ''अधिनियम'' कहा गया है) की धारा 54 के उपबंधों के अनुसार आय-कर के लिए प्रभार्य नहीं है, निर्धारण वर्ष 2005-2006 के लिए फाइल की गई अपनी आय-कर की विवरणी में उक्त दीर्घकालिक पूंजी अभिलाभ को प्रकट नहीं किया ।

7. अधिनियम के अधीन निर्धारण वर्ष 2005-2006 की निर्धारण कार्यवाहियों में निर्धारण अधिकारी का यह मत था कि अपीलार्थी अधिनियम की धारा 54 के अधीन किसी फायदे के हकदार नहीं हैं और इसका कारण यह है कि मूल आस्ति अर्थात् निवास-गृह का अंतरण तारीख 24 सितम्बर, 2004 को किया गया था जबकि अपीलार्थियों ने निवास-गृह तारीख 30 अप्रैल, 2003 को अर्थात् नई आस्ति क्रय करने के एक वर्ष से अधिक पहले क्रय किया था और इसलिए अपीलार्थी अधिनियम की धारा 45 के अधीन पूंजी अभिलाभ पर आय-कर का संदाय करने के दायी बनाए गए ।

8. अधिनियम की धारा 54 का सुसंगत भाग निम्नलिखित है :–

> ''**54 निवास के लिए उपयोग में लाई गई संपत्ति के विक्रय पर लाभ** – (1) उपधारा (2) के उपबंधों के अधीन रहते हुए, जहां ऐसे निर्धारिती की दशा में जो एक व्यष्टि या हिन्दू अविभाजित कुटुम्ब है, पूंजी अभिलाभ ऐसी दीर्घकालिक पूंजी आस्ति के अंतरण से पैदा होता है और जो ऐसे भवनों या उनसे लगी भूमि है और ऐसा निवास-गृह है, जिसकी आय 'गृह संपत्ति से आय' शीर्ष के अधीन प्रभार्य है (जिसे इस धारा में आगे 'मूल आस्ति' कहा गया है) तथा निर्धारिती ने कोई निवास-गृह उस तारीख के, जिसको अंतरण हुआ है, एक वर्ष पहले

या दो वर्ष पश्चात् खरीदा है या उस तारीख के पश्चात् तीन वर्ष की अवधि के भीतर बनाया है, वहां पूंजी अभिलाभ पर उस पूर्व वर्ष के लिए जिसमें अंतरण हुआ था आय के रूप में आय-कर प्रभारित किए जाने के बजाय, उसके संबंध में इस धारा के निम्नलिखित उपबंधों के अनुसार कार्रवाई की जाएगी, अर्थात् –

(i) यदि पूंजी अभिलाभ की रकम इस प्रकार खरीदे गए या बनाए गए निवास-गृह की लागत से अधिक है (जिसे इस धारा के आगे 'नई आस्ति' कहा गया है) तो पूंजी अभिलाभ की राशि और नई आस्ति का अंतर धारा 45 के अधीन पूर्व वर्ष की आय के रूप में प्रभारित किया जाएगा; और नई आस्ति की बाबत, उसके क्रय या निर्माण, जो भी हो, के तीन वर्ष की अवधि के भीतर उसके अंतरण से होने वाले पूंजी अभिलाभ की संगणना करने के प्रयोजन के लिए लागत शून्य होगी ; या

(ii) यदि पूंजी अभिलाभ की रकम नई आस्ति की लागत के बराबर या उससे कम है, तो पूंजी अभिलाभ धारा 45 के अधीन प्रभारित नहीं किया जाएगा; और नई आस्ति की बाबत यथास्थिति उसके क्रय या निर्माण के संबंध में तीन वर्ष की अवधि के भीतर उसके अंतरण से होने वाले पूंजी अभिलाभ की संगणना करने के प्रयोजन के लिए पूंजी अभिलाभ की रकम में से लागत घटा दी जाएगी ।"

9. अधिनियम की धारा 54(1) के परिशीलन से यह पूर्णतः स्पष्ट है कि अधिनियम की धारा 54 के अधीन दीर्घकालिक पूंजी अभिलाभ की बाबत राहत का उपभोग केवल तब किया जा सकता है यदि कोई निवास-गृह अर्थात् नई आस्ति उस तारीख के, जिसको अंतरण हुआ है, एक वर्ष पहले या दो वर्ष पश्चात् खरीदा है । वर्तमान मामले में, अपीलार्थी-निर्धारितियों द्वारा वास-गृह तारीख 24 सितम्बर, 2004 को अंतरित किया गया था जबकि उन्होंने एक अन्य गृह तारीख 30 अप्रैल, 2003 को खरीदा था । इस प्रकार, नई आस्ति उस तारीख के, जिसको वास-गृह की बाबत अंतरण किया गया था, एक वर्ष से अधिक पहले खरीदा गया था ।

10. उपुर्यक्त कारणों से, निर्धारण अधिकारी ने अधिनियम की धारा 54 के अधीन फायदा प्रदान नहीं किया और इसलिए अपीलार्थियों द्वारा आय-कर आयुक्त (अपील) के समक्ष चुनौती दी गई थी । अपील, जहां तक

इसका संबंध अधिनियम की धारा 54 के अधीन फायदे की बाबत था, खारिज कर दी गई और इसलिए अपीलार्थियों ने आय-कर अपील अधिकरण के समक्ष समावेदन किया । अधिकरण ने भी आयुक्त द्वारा पारित किए गए आदेशों को मान्य ठहराया और इसलिए अपीलार्थियों ने अधिनियम की धारा 260क के अधीन अपीलें फाइल करके उच्च न्यायालय में समावेदन किया, जो आक्षेपित निर्णयों द्वारा खारिज कर दी गईं । इसलिए अपीलार्थियों ने इस न्यायालय के समक्ष अपीलें फाइल की हैं ।

11. अपीलार्थियों की ओर से हाजिर होने वाले विद्वान् काउंसेल ने मुख्य रूप से यह दलील दी है कि निचले प्राधिकारियों और उच्च न्यायालय ने अधिनियम की धारा 54 का निर्वचन करने में गलती की है । विद्वान् काउंसेल के अनुसार, यद्यपि प्रश्नगत संपत्ति स्पष्ट तौर पर तारीख 24 सितम्बर, 2004 को अंतरित की गई थी और नई आस्ति अर्थात् नया वास-गृह तारीख 30 अप्रैल, 2003 को अर्थात् उस तारीख के, जिसको संपत्ति विक्रय की गई थी, एक वर्ष पहले खरीदी गई थी, इसलिए प्राधिकारियों को उस तारीख को गृह/मूल आस्ति के अंतरण की तारीख के रूप में विचार में लेना चाहिए था जिसको अपीलार्थियों द्वारा प्रश्नगत संपत्ति का अंतरण करने के लिए विक्रय करार किया गया था । उक्त करार तारीख 27 दिसम्बर, 2002 को हस्ताक्षरित किया गया था अर्थात् जो पूरी तरह से अधिनियम की धारा 54 के अधीन विहित अवधि के भीतर था । यदि 27 दिसम्बर, 2002 पर उस तारीख के रूप में विचार किया जाए जिसको संपत्ति अंतरित की गई थी या संपत्ति में का अधिकार अंतरित किया गया था, तो अपीलार्थी अधिनियम की धारा 54 के अधीन फायदे के हकदार बन जाते हैं ।

12. अपीलार्थियों की ओर से विद्वान् काउंसेल ने अपनी दलीलों को सिद्ध करने के लिए यह दलील दी कि अपीलार्थी प्रश्नगत संपत्ति का अंतरण करना चाहते थे और इसलिए उन्होंने तारीख 27 दिसम्बर, 2002 को एक विक्रय करार किया था, किंतु दुर्भाग्यवश वे मुकदमेबाजी, जो प्रश्नगत संपत्ति की बाबत लंबित थी, के कारण और अपीलार्थियों को संपत्ति का व्यौहार करने से अवरुद्ध करते हुए पारित आदेश के कारण विक्रय-विलेख निष्पादित नहीं कर सके । सिविल न्यायालय द्वारा पारित किए गए आदेश को ध्यान में रखते हुए, अपीलार्थी विक्रय-विलेख निष्पादित नहीं कर सके थे और विलंब ऐसी बात के कारण हुआ था जो अपीलार्थियों के नियंत्रण से परे थी ।

13. अपीलार्थियों की ओर से हाजिर होने वाले विद्वान् काउंसेल के अनुसार, वह तारीख, जिसको विक्रय करार किया गया था, अंतरण की तारीख समझी जानी चाहिए । विद्वान् काउंसेल ने अधिनियम की धारा 2(47) को निर्दिष्ट किया जिसमें "अंतरण" पद को परिभाषित किया गया है । "अंतरण" पद की एक समावेशित परिभाषा दी गई है और उक्त परिभाषा के अनुसार जब कभी किसी पूंजी आस्ति की बाबत किसी अधिकार की समाप्ति होती है, तो उस समाप्ति का अर्थ संपत्ति का अंतरण होगा । इसलिए विद्वान् काउंसेल ने यह दलील दी कि विक्रय करार के आधार पर संपत्ति के क्रेता के पक्ष में एक अधिकार सृजित हो गया था और निवास-गृह की बाबत कतिपय अधिकार, जो अपीलार्थियों के पास था, निर्वापित हो गया था और इसलिए तारीख 27 दिसम्बर, 2002 अंतरण की तारीख समझी जानी चाहिए ।

14. विद्वान् काउंसेल ने अपनी दलीलों के समर्थन में विभिन्न उच्च न्यायालयों द्वारा दिए गए कतिपय निर्णयों का भी अवलंब लिया ।

15. दूसरी ओर, राजस्व प्राधिकारियों की ओर से हाजिर होने वाले विद्वान् काउंसेल ने जोरदार रूप से यह दलील दी कि विक्रय करार के निष्पादन मात्र से संपति की बाबत विक्रेता/अंतरक का अधिकार निर्वापित नहीं किया जा सकता है । विद्वान् काउंसेल के अनुसार, जब तारीख 27 दिसम्बर, 2002 को विक्रय करार निष्पादित किया गया था, तब प्रश्नगत संपत्ति का विक्रय संपन्न नहीं हुआ था । उसके अनुसार, अपीलार्थियों ने मूल आस्ति तारीख 24 सितम्बर, 2004 को बेची थी और एक नया गृह/नई आस्ति तारीख 30 अप्रैल, 2003 को अर्थात् मूल आस्ति के विक्रय से एक वर्ष से अधिक पहले खरीदी थी और इसलिए अपीलार्थियों द्वारा अधिनियम की धारा 54 के अधीन फायदा नहीं लिया जा सकता है और इसलिए राजस्व प्राधिकारियों के साथ-साथ उच्च न्यायालय ने अपीलार्थियों द्वारा दावाकृत फायदा प्रदान न करके पूर्णतः सही किया है ।

16. हमने विद्वान् काउंसेलों को विस्तारपूर्वक सुना और अधिनियम के सुसंगत उपबंधों और विद्वान् काउंसेलों द्वारा उद्धृत किए गए निर्णयों पर भी विचार किया ।

17. अधिनियम की धारा 54 के स्पष्ट वाचन से यह प्रकट होता है कि अधिनियम की धारा 54 के अधीन फायदा लेने के लिए कोई निवास-गृह/नई आस्ति उस तारीख के, जिसको उस निवास-गृह का अंतरण हुआ

है जिसकी बाबत दीर्घकालिक पूंजी अभिलाभ उद्भूत हुआ था, एक वर्ष पहले या दो वर्ष पश्चात् तक खरीदा जाना आवश्यक है ।

18. प्रस्तुत मामले में, तीन तारीखें विवादग्रस्त नहीं हैं । अपीलार्थियों द्वारा निवास-गृह अंतरित किया गया था और विक्रय-विलेख तारीख 24 सितम्बर, 2004 को रजिस्ट्रीकृत हुआ था । विक्रय-विलेख उस विक्रय करार जो तारीख 27 दिसम्बर, 2002 को निष्पादित किया गया था, के अनुसरण में निष्पादित किया गया था और जब विक्रय करार निष्पादित किया गया था तब अपीलार्थियों द्वारा 1.32 करोड़ रुपए के कुल प्रतिफल में से 15 लाख रुपए अग्रिम धन के रूप में प्राप्त किए गए थे तथा अपीलार्थियों द्वारा तारीख 30 अप्रैल, 2003 को एक नए निवास-गृह/नई आस्ति की खरीद की गई थी । यह भी विवादग्रस्त नहीं है कि एक मुकदमेबाजी चल रही थी जिसमें स्वर्गीय श्री अमृत लाल की विल को उसके पुत्र द्वारा चुनौती दी गई थी और अपीलार्थियों को एक न्यायिक आदेश द्वारा प्रश्नगत गृह की बाबत व्यौहार करने से अवरुद्ध किया गया था तथा उक्त न्यायिक आदेश केवल मई, 2004 में बातिल किया गया था और इसलिए विक्रय-विलेख उक्त आदेश के बातिल होने से पूर्व निष्पादित नहीं किया जा सका था, यद्यपि विक्रय करार तारीख 27 सितम्बर, 2002 को निष्पादित किया गया था ।

19. उस तारीख, जिसको संपत्ति का विक्रय करने का विनिश्चय किया गया था अर्थात् 27 दिसम्बर, 2002 को यदि अंतरण या विक्रय की तारीख के रूप में समझा जाए तो यह विवादग्रस्त नहीं किया जा सकता है कि अपीलार्थी अधिनियम की धारा 54 के उपबंधों के अधीन फायदे के हकदार होंगे क्योंकि अपीलार्थियों द्वारा अर्जित दीर्घकालिक पूंजी अभिलाभ का उपयोग तारीख 30 अप्रैल, 2003 को अर्थात् उस गृह, जिससे दीर्घकालिक पूंजी अभिलाभ हुआ था, के अंतरण की तारीख से एक वर्ष के भीतर नई आस्ति/निवास-गृह खरीदने के लिए किया गया था ।

20. इस न्यायालय द्वारा इस प्रश्न पर विचार किया जाना है कि क्या विक्रय करार, जो तारीख 27 दिसम्बर, 2002 को निष्पादित किया गया था, की तारीख को उस तारीख के रूप में समझा जा सकता है जिसको संपत्ति अर्थात् निवास-गृह अंतरित किया गया था । सामान्य परिस्थितियों में, किसी स्थावर संपत्ति की बाबत विक्रय करार निष्पादित करने से अंतरिती/क्रेता के पक्ष में व्यक्तिबंधी अधिकार सृजित किया जाता है । जब क्रेता के पक्ष में

ऐसा अधिकार सृजित किया जाता है, तो विक्रेता किसी अन्य व्यक्ति को उक्त संपत्ति बेचने से अवरुद्ध हो जाता है क्योंकि क्रेता को, जिसके पक्ष में व्यक्तिबंधी अधिकार सृजित किया जाता है, तब यदि विक्रेता किसी कारणवश विक्रय-विलेख निष्पादित नहीं कर रहा है तो क्रेता को करार के विनिर्दिष्ट पालन को कार्यान्वित करने का विधिसम्मत अधिकार होता है । इस प्रकार, विक्रय करार के आधार पर विक्रेता द्वारा क्रेता को कुछ अधिकार दिया जाता है । प्रश्न यह है कि क्या यह कहा जा सकता है कि जब विक्रय करार किया जाता है, तो उस समय संपूर्ण संपत्ति बेच दी गई थी । सामान्य परिस्थितियों में, पूर्वोल्लिखित प्रश्न का उत्तर नकारात्मक दिया जाना चाहिए । तथापि, अधिनियम की धारा 2(47), जिसमें पूंजी आस्ति के संबंध में "अंतरण" शब्द को परिभाषित किया गया है, के उपबंधों पर विचार करने पर कोई भी यह कह सकता है कि यदि विक्रय करार के निष्पादन से संपत्ति में अधिकार समाप्त हो जाता है तो यह समझा जा सकता है कि पूंजी आस्ति अंतरित कर दी गई है । धारा 2(47) का सुसंगत भाग, जिसमें "अंतरण" शब्द को परिभाषित किया गया है, निम्नलिखित है :–

> "2(47) पूंजी आस्ति के संबंध में, "अंतरण" के अंतर्गत है –
>
> (i) .....
>
> (ii) उसमें के किसी अधिकार की समाप्ति ; या
>
> ..... "

21. अधिनियम की धारा 2(47) में यथा परिभाषित "अंतरण" की परिभाषा को ध्यान में रखते हुए, यह स्पष्ट हो जाता है कि जब किसी पूंजी आस्ति के संबंध में कोई अधिकार समाप्त हो जाता है और वह अधिकार किसी अन्य व्यक्ति को अंतरित हो जाता है, तो यह किसी पूंजी आस्ति के अंतरण की कोटि में आएगा । पूर्वोल्लिखित परिभाषा को ध्यान में रखते हुए, वर्तमान मामले के तथ्यों पर विचार करते हैं, जहां प्रश्नगत निवास-गृह/मूल आस्ति को अंतरित करने के लिए पूंजी आस्ति के संबंध में विक्रय करार तारीख 27 दिसम्बर, 2002 को निष्पादित किया गया था और 15 लाख रुपए की राशि अग्रिम धन के रूप में प्राप्त की गई थी । यह भी विवादग्रस्त नहीं है कि विक्रय-विलेख एक ओर श्री रंजीत सिंह तथा दूसरी ओर अपीलार्थियों के बीच चल रही मुकदमेबाजी के लंबित रहने के कारण निष्पादित नहीं किया जा सका था क्योंकि श्री रंजीत लाल ने उस विल की

विधिमान्यता को चुनौती दी थी, जिसके अधीन अपीलार्थियों को संपत्ति न्यागत हुई थी । श्री रंजीत लाल द्वारा फाइल किए गए वाद में पारित किए गए आदेश के आधार पर अपीलार्थी उक्त निवास-गृह का व्यौहार करने के लिए अवरुद्ध थे और विधि का पालन करने वाले किसी नागरिक से यह प्रत्याशा नहीं की जा सकती कि वह किसी तृतीय पक्षकार के पक्ष में विक्रय-विलेख निष्पादित करके, जबकि वह ऐसा करने के लिए अवरुद्ध हो, न्यायालय के निदेश का अतिक्रमण करे । इन परिस्थितियों में, एक न्यायसंगत कारण से, जो अपीलार्थियों के नियंत्रणाधीन नहीं था, वे विक्रय-विलेख निष्पादित नहीं कर सके थे और विक्रय-विलेख श्री रंजीत लाल द्वारा विल की विधिमान्यता को चुनौती देते हुए फाइल किए गए वाद के खारिज होने के पश्चात् ही तारीख 24 सितम्बर, 2004 को रजिस्ट्रीकृत किया गया था । पूर्वोल्लिखित तथ्यों को ध्यान में रखते हुए और "अंतरण" शब्द की परिभाषा को देखते हुए कोई भी इस निष्कर्ष पर पहुंच सकता है कि प्रश्नगत पूंजी आस्ति के संबंध में कुछ अधिकार क्रेता के पक्ष में अंतरित किया गया था और इसलिए प्रश्नगत पूंजी आस्ति के संबंध में कुछ अधिकार, जो अपीलार्थियों के पास था, समाप्त हो गया था क्योंकि विक्रय करार निष्पादित करने के पश्चात् अपीलार्थियों को विधि के अनुसार संपत्ति किसी अन्य व्यक्ति को बेचने की स्वतंत्रता नहीं थी । क्रेता, जिसके पक्ष में विक्रय करार निष्पादित किया गया था और जिसने अग्रिम धन के रूप में 15 लाख रुपए भी संदत्त किए थे, के पक्ष में एक व्यक्तिबंधी अधिकार सृजित किया गया था । निस्संदेह, पक्षकारों द्वारा ऐसे संविदात्मक अधिकार को पश्चात्वर्ती संविदा या आचरण द्वारा अभ्यर्पित या निष्क्रिय किया जा सकता है जिससे प्रस्तावित क्रेता को संपत्ति का अंतरण न किया जाए, किंतु प्रस्तुत मामले में ऐसा नहीं है ।

22. इस तथ्य के अतिरिक्त कि "अंतरण" शब्द को अधिनियम की धारा 2(47) में परिभाषित किया गया है, यदि अधिनियम की धारा 54, जिसमें ऐसे व्यक्ति को राहत दी गई है जिसने अपना एक निवास-गृह अंतरित किया है और एक अन्य निवास-गृह अंतरण के एक वर्ष पहले या यहां तक कि अंतरण के दो वर्ष पश्चात् खरीदा है, के उपबंधों पर विचार किया जाए तो विधान-मंडल का आशय ऐसे व्यक्ति को दीर्घकालिक पूंजी अभिलाभ पर कर के संदाय के मामले में राहत देना है । यदि कोई व्यक्ति, जिसे अपने पुराने निवास परिसर के अंतरण पर कुछ अधिक रकम प्राप्त होती है और वह उसके पश्चात् अधिनियम की धारा 54 में अनुबंधित समय

के भीतर एक नया परिसर खरीद लेता है या निर्माण करता है, तो विधान-मंडल ऐसे व्यक्ति पर दीर्घकालिक पूंजी अभिलाभ पर कर का बोझ डालना नहीं चाहता है और इसलिए उसे दीर्घकालिक पूंजी अभिलाभ पर आय-कर के संदाय में राहत दी गई है । विधान-मंडल के आशय या उस प्रयोजन, जिसके साथ अधिनियम में उक्त उपबंध अंतःस्थापित किया गया है, से भी यह पूर्णतः स्पष्ट है कि निर्धारिती को कुछ राहत दी जानी चाहिए । यद्यपि बहुधा यह कहा गया है कि सामान्य बोध आय-कर अधिनियम का बेमेल और एक असंगत सहयोगी है और यह भी कहा जाता है कि साम्या और कर परस्पर अजनबी हैं, फिर भी इस न्यायालय ने प्रायः यह मत व्यक्त किया गया है कि अधिनियम के उपबंधों का प्रयोजनात्मक निर्वचन किया जाना चाहिए । **ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रैस** बनाम **आय-कर आयुक्त**[1] वाले मामले में इस न्यायालय ने यह मत व्यक्त किया कि कर से छूट के लिए किसी दावे पर विचार करते समय अधिनियम के उपबंधों का प्रयोजनात्मक निर्वचन किया जाना चाहिए । यह भी कहा गया है कि अधिनियम के किसी उपबंध का अर्थान्वयन करते समय उपबंधों का ऐसा सामंजस्यपूर्ण अर्थान्वयन किया जाना चाहिए जो उद्देश्य और प्रयोजन का साधन करे और विशिष्ट रूप से तब जब मामला कर के संदाय से छूट का हो । कर-विधियों से संबंधित कानून के निर्वचन की बाबत पूर्वोल्लिखित मताभिव्यक्तियों और सिद्धांतों पर विचार करते हुए कोई भी अधिनियम की धारा 2(47), अर्थात् "अंतरण" की परिभाषा, के साथ पठित धारा 54 के उपबंधों का भली-भांति ऐसा निर्वचन कर सकता है, जो अपीलार्थियों को अधिनियम की धारा 54 के अधीन फायदा प्राप्त करने के लिए समर्थ बनाएगा ।

23. विक्रय करार के निष्पादन के परिणाम भी पूर्णतः स्पष्ट हैं और वे यह हैं कि अपीलार्थियों ने किसी अन्य व्यक्ति को संपत्ति नहीं बेची थी । व्यवहारिक जीवन में, ऐसी घटनाएं देखने में आती हैं कि किसी व्यक्ति के पक्ष में स्थावर संपत्ति का विक्रय करार निष्पादित करने के पश्चात् भी संपत्ति को किसी अन्य व्यक्ति को बेचने की कोशिश की जाती है । हमारी राय में, ऐसा कार्य विधि के अनुसार नहीं होगा क्योंकि जब एक बार किसी व्यक्ति के पक्ष में विक्रय करार निष्पादित कर दिया जाता है, तो उक्त व्यक्ति को विनिर्दिष्ट पालन के लिए वाद फाइल करके संपत्ति अपने पक्ष में

---

[1] (2001) 3 एस. सी. सी. 359.

अंतरित करवाने का अधिकार प्राप्त हो जाता है और इसलिए निःसंकोच हम यह कह सकते हैं कि जब विक्रय करार निष्पादित किया गया था, तब अपीलार्थियों का उक्त संपत्ति की बाबत कुछ अधिकार समाप्त हो गया था और क्रेता/अंतरिती के पक्ष में कुछ अधिकार सृजित हो गया था ।

24. इस प्रकार, अपीलार्थियों द्वारा पूंजी आस्ति अर्थात् प्रश्नगत संपत्ति की बाबत अधिकार तारीख 27 दिसम्बर, 2002 को क्रेता/अंतरिती के पक्ष में अंतरित कर दिया गया था । विक्रय-विलेख इस कारण निष्पादित नहीं किया जा सका था क्योंकि अपीलार्थियों को एक सक्षम न्यायालय के आदेश द्वारा वास-गृह के विषय में व्यौहार करने से अवरुद्ध किया गया था, जिसका वे अतिक्रमण नहीं कर सकते थे ।

25. मामले के पूर्वोल्लिखित विशिष्ट तथ्यों को देखते हुए और अधिनियम की धारा 2(47) में यथा परिभाषित "अंतरण" शब्द की परिभाषा पर विचार करते हुए हमारा यह मत है कि अपीलार्थी अधिनियम की धारा 54 के अधीन उस दीर्घकालिक पूंजी अभिलाभ की बाबत राहत के हकदार थे, जो उन्होंने अपनी गृह-संपत्ति, चंडीगढ़ के सैक्टर 9-सी स्थित मकान सं. 267, के अंतरण के अनुसरण में उपार्जित किया था और एक नई आस्ति/निवास-गृह खरीदने के लिए उपयोग किया था ।

26. अतः ये अपीलें, खर्चे के लिए कोई आदेश किए बिना, मंजूर की जाती हैं । आक्षेपित निर्णय अभिखंडित और अपास्त किए जाते हैं तथा प्राधिकारियों को निदेश दिए जाते हैं कि अपीलार्थियों की निर्धारण वर्ष 2005-2006 की आय का, इस तथ्य को ध्यान में रखते हुए कि अपीलार्थी अन्य शर्तें पूर्ण करने के अधीन रहते हुए राहत के हकदार हैं, पुनर्निर्धारण किया जाए ।

अपीलें मंजूर की गईं ।

जस.

पंजाब राज्य

बनाम

गुरमीत सिंह

2 जुलाई, 2014

न्यायमूर्ति चन्द्रमौली कुमार प्रसाद और न्यायमूर्ति पिनाकी चन्द्र घोष

दंड संहिता, 1860 (1860 का 45) – धारा 304ख – दहेज मृत्यु – "पति के किसी नातेदार" शब्द का अर्थ – इसके अर्थान्तर्गत वे व्यक्ति आते हैं जो मृतका के पति से रक्त, विवाह या दत्तक-ग्रहण द्वारा संबंधी हैं और प्रत्यर्थी के रक्त, विवाह या दत्तक-ग्रहण द्वारा मृतका के पति का नातेदार न होने के कारण उसे धारा 304ख के अधीन अभियोजित नहीं किया जा सकता है ।

एक रिपोर्ट के आधार पर पुलिस थाना, खरड़ में भारतीय दंड संहिता की धारा 304ख के अधीन एक मामला दर्ज किया गया । प्रथम इत्तिला रिपोर्ट में इस मामले में प्रत्यर्थी गुरमीत सिंह सहित विभिन्न व्यक्तियों के नाम दिए गए थे । तथापि, प्रत्यर्थी सहित कुछ अन्य अभियुक्तों को, जिन्हें आरोप पत्रित नहीं किया गया था, विचारण का सामना करने के लिए समन किया गया । उन्होंने उक्त आदेश को उच्च न्यायालय के समक्ष चुनौती दी और उच्च न्यायालय ने प्रत्यर्थी सहित उन अभियुक्तों को समन करने वाले आदेश को अपास्त कर दिया, किंतु ऐसा करते हुए विचारण के समुचित प्रक्रम पर दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 319 के उपबंधों का अवलंब लेने की स्वतंत्रता दी गई । विचारण के दौरान शकुंतला रानी (अभि. सा. 1) नामक साक्षी का साक्ष्य अभिलिखित किया गया जिसने यह प्रकथन किया कि परमजीत सिंह की पत्नी गुरमीत कौर की मृत्यु के लिए इस मामले में प्रत्यर्थी भी उत्तरदायी है । इसके पश्चात्, अभियोजन पक्ष द्वारा उपर्युक्त गुरमीत सिंह और अन्य अभियुक्तों को समन करने के लिए संहिता की धारा 319 के अधीन शक्ति का प्रयोग करते हुए विचारण न्यायालय के समक्ष एक आवेदन फाइल किया गया । विचारण न्यायालय ने अपने आदेश द्वारा अन्य अभियुक्तों के अतिरिक्त प्रत्यर्थी को भारतीय दंड संहिता की धारा 304ख के अधीन अपराध कारित करने के लिए विचारण का सामना करने हेतु समन किया । प्रत्यर्थी ने उपर्युक्त आदेश को उच्च न्यायालय के समक्ष एक पुनरीक्षण आवेदन फाइल करके अन्य बातों के साथ-साथ इस आधार

पर चुनौती दी कि उसका संहिता की धारा 304ख के अधीन अपराध के लिए विचारण नहीं किया जा सकता है क्योंकि वह मृतका के पति का नातेदार नहीं है । यह उल्लेख किया गया कि परमजीत सिंह मृतका का पति है जबकि प्रत्यर्थी उसकी चाची का भाई है और इसलिए यह नहीं कहा जा सकता है कि वह मृतका के पति का नातेदार है । उच्च न्यायालय ने पूर्वोक्त दलील का समर्थन किया और तद्नुसार उच्च न्यायालय ने विचारण का सामना करने के लिए प्रत्यर्थी को समन करने वाले आदेश को अभिखंडित कर दिया । राज्य ने उच्च न्यायालय के निर्णय से व्यथित होकर उच्चतम न्यायालय में अपील फाइल की । उच्चतम न्यायालय द्वारा अपील खारिज करते हुए,

अभिनिर्धारित – भारतीय दंड संहिता, 1860 की धारा 304ख के उपबंध को पढ़ने मात्र से यह स्पष्ट है कि जब किसी स्त्री की किसी दाह या शारीरिक क्षति या अन्यथा द्वारा उसके विवाह के सात वर्ष के भीतर सामान्य परिस्थितियों से भिन्न परिस्थितियों में मृत्यु हो जाती है, और यदि यह दर्शित किया जाता है कि मृत्यु से ठीक पूर्व उस स्त्री के पति या उसके पति के किसी नातेदार द्वारा उसके साथ क्रूरता की गई थी या तंग किया गया था तो यह समझा जाएगा कि उसके पति या उसके पति के किसी नातेदार ने दहेज मृत्यु कारित की है । अतः, इस धारा में दहेज मृत्यु का अपराध कारित करने के लिए स्त्री के पति या उसके पति के किसी नातेदार को दायी बनाया गया है । स्वीकृततः, प्रत्यर्थी उस स्त्री का नातेदार नहीं है जिसकी मृत्यु हुई है और इसलिए अवधारण के लिए उद्भूत प्रश्न यह है कि क्या प्रत्यर्थी "उसके पति के किसी नातेदार" की परिधि के अंतर्गत आता है या नहीं । "नातेदार" अभिव्यक्ति को भारतीय दंड संहिता में परिभाषित नहीं किया गया है । जिस उपबंध से न्यायालय का सरोकार है वह एक शास्तिक उपबंध है जिसका कठोर अर्थान्वयन करना चाहिए । यह सुस्थिर है कि जब किसी कानून के शब्दों को परिभाषित नहीं किया गया हो, तो उन्हें उनके स्वाभाविक, साधारण या प्रचलित अर्थ में समझा जाना चाहिए । इस प्रयोजन के लिए, उस साधारण अर्थ जिसमें इस शब्द को बोलचाल की भाषा में समझा जाता है का पता लगाने के लिए शब्दकोशों को निर्दिष्ट करना अनुज्ञेय होगा । रामनाथ अय्यर की एडंवास लॉ लेक्सिकॉन (वाल्यूम 4, तृतीय संस्करण) में नातेदार शब्द का अर्थ है – कोई व्यक्ति जिससे रक्त, विवाह या दत्तक-ग्रहण द्वारा संबंध है । अधिकांश शब्दकोशों में नातेदार शब्द का इस संदर्भ में यही अर्थ दिया गया है । यह अर्थान्वयन का सुप्रसिद्ध नियम है कि जब विधान-मंडल कानून के विभिन्न भागों में एक जैसे शब्दों को प्रयुक्त करता है, तब यह उपधारणा की जाती

है कि वे शब्द उसी अर्थ में प्रयुक्त किए गए हैं जब तक कि संदर्भ द्वारा उस स्थान पर अलग अर्थ नहीं लगाया गया हो । हमें निर्वचन के साधारण नियम से विचलन करने के लिए संदर्भ में ऐसी कोई बात नहीं पाई है । इसलिए न्यायालय को किसी प्रकार का संदेह नहीं है कि भारतीय दंड संहिता की धारा 304ख में पति के नातेदार शब्द का अर्थ ऐसे व्यक्ति हैं जो रक्त, विवाह या दत्तक-ग्रहण द्वारा संबंधी हैं । अतः, न्यायालय की राय में, उच्च न्यायालय ने आक्षेपित आदेश पारित करने में कोई गलती नहीं की है । यह न्यायालय यह भी कहना चाहेगा कि ऐसा व्यक्ति, जो पति का नातेदार नहीं है, उसे भारतीय दंड संहिता की धारा 304ख के अधीन अभियोजित न किया जा सकता हो किंतु इसका यह अर्थ नहीं है कि यदि अभिकथनों से भारतीय दंड संहिता की धारा 304ख से भिन्न अपराध गठित होता है तो ऐसे व्यक्ति को किसी अन्य अपराध, अर्थात् भारतीय दंड संहिता की धारा 306, के लिए अभियोजित न किया जा सकता हो । (पैरा 6 और 9)

अवलंबित निर्णय

		पैरा
[2010]	(2010) 11 एस. सी. सी. 618 = ए. आई. आर. 2010 एस. सी. 2712 : **विजेता गजरा** बनाम **राष्ट्रीय राजधानी क्षेत्र दिल्ली राज्य** ;	8
[2009]	(2009) 6 एस. सी. सी. 787 = ए. आई. आर. 2009 एस. सी.(सप्ली.) 1451 : **यू. सुविता** बनाम **पुलिस निरीक्षक की मार्फत राज्य और एक अन्य** ।	7

अपीली (दांडिक) अधिकारिता : 2014 की दांडिक अपील सं. 1278.

2000 के दांडिक पुनरीक्षण आवेदन सं. 320 में पंजाब और हरियाणा उच्च न्यायालय के तारीख 7 सितम्बर, 2005 के निर्णय और आदेश के विरुद्ध अपील ।

अपीलार्थी की ओर से	सर्वश्री वी. मधुकर, अपर महाधिवक्ता और उनके साथ (सुश्री) अनविता कौशिष और कुलदीप सिंह
प्रत्यर्थी की ओर से	श्री सी. डी. सिंह और सुश्री साक्षी कक्कड़

न्यायालय का निर्णय न्यायमूर्ति चन्द्रमौली कुमार प्रसाद ने दिया ।

न्या. प्रसाद – पंजाब राज्य ने 2000 के दांडिक पुनरीक्षण आवेदन सं. 320 में पंजाब और हरियाणा उच्च न्यायालय द्वारा तारीख 7 सितम्बर, 2005 को पारित किए गए उस आदेश से व्यथित होकर यह विशेष इजाजत याचिका फाइल की, जिसके द्वारा उसने विचारण न्यायालय के दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 319 के अधीन प्रत्यर्थी गुरमीत सिंह को विचारण का सामना करने के लिए समन करते हुए तारीख 24 जनवरी, 2000 को पारित आदेश को अपास्त किया है ।

2. इजाजत प्रदान की जाती है ।

3. मामले के तथ्य बहुत ही संक्षिप्त हैं । एक रिपोर्ट के आधार पर पुलिस थाना, खरड़ में भारतीय दंड संहिता की धारा 304ख के अधीन एक मामला दर्ज किया गया । प्रथम इत्तिला रिपोर्ट में इस मामले में प्रत्यर्थी गुरमीत सिंह सहित विभिन्न व्यक्तियों के नाम दिए गए थे । तथापि, प्रत्यर्थी सहित कुछ अन्य अभियुक्तों को, जिन्हें आरोप पत्रित नहीं किया गया था, विचारण का सामना करने के लिए समन किया गया । उन्होंने उक्त आदेश को 1999 के दांडिक प्रकीर्ण सं. 1584एम में उच्च न्यायालय के समक्ष चुनौती दी और उच्च न्यायालय ने तारीख 25 फरवरी, 1999 के अपने आदेश द्वारा प्रत्यर्थी सहित उन अभियुक्तों को समन करने वाले आदेश को अपास्त कर दिया, किंतु ऐसा करते हुए विचारण के समुचित प्रक्रम पर दंड प्रक्रिया संहिता (जिसे इसमें इसके पश्चात् "संहिता" कहा गया है) की धारा 319 के उपबंधों का अवलंब लेने की स्वतंत्रता दी गई । विचारण के दौरान शकुंतला रानी (अभि. सा. 1) नामक साक्षी का साक्ष्य अभिलिखित किया गया जिसने यह प्रकथन किया कि परमजीत सिंह की पत्नी गुरमीत कौर की मृत्यु के लिए इस मामले में प्रत्यर्थी भी उत्तरदायी है । इसके पश्चात्, अभियोजन पक्ष द्वारा उपर्युक्त गुरमीत सिंह और अन्य अभियुक्तों को समन करने के लिए संहिता की धारा 319 के अधीन शक्ति का प्रयोग करते हुए विचारण न्यायालय के समक्ष एक आवेदन फाइल किया गया । विचारण न्यायालय ने तारीख 24 जनवरी, 2000 के अपने आदेश द्वारा अन्य अभियुक्तों के अतिरिक्त प्रत्यर्थी को, अन्य बातों के साथ-साथ यह मत व्यक्त करते हुए कि उनके नाम प्रथम इत्तिला रिपोर्ट, संहिता की धारा 161 के अधीन अभिलिखित साक्षियों के कथन तथा शकुंतला रानी (अभि. सा. 1) के साक्ष्य में आए हैं, दंड संहिता की धारा 304ख के अधीन अपराध कारित करने के लिए विचारण का सामना करने हेतु समन किया ।

4. प्रत्यर्थी ने उपर्युक्त आदेश को उच्च न्यायालय के समक्ष एक

पुनरीक्षण आवेदन फाइल करके अन्य बातों के साथ-साथ इस आधार पर चुनौती दी कि उसका संहिता की धारा 304ख के अधीन अपराध के लिए विचारण नहीं किया जा सकता है क्योंकि वह मृतका के पति का नातेदार नहीं है । यह उल्लेख किया गया कि परमजीत सिंह मृतका का पति है जबकि प्रत्यर्थी उसकी चाची का भाई है और इसलिए यह नहीं कहा जा सकता है कि वह मृतका के पति का नातेदार है । उच्च न्यायालय ने पूर्वोक्त दलील का समर्थन किया और तद्नुसार उच्च न्यायालय ने विचारण का सामना करने के लिए प्रत्यर्थी को समन करने वाले आदेश को अभिखंडित कर दिया । उच्च न्यायालय ने ऐसा करते हुए निम्नलिखित मत व्यक्त किया :–

> "यहां तक कि नातेदार का शब्दकोशीय अर्थ वह व्यक्ति है जिसका रक्त या विवाह द्वारा संबंध है । गुरमीत सिंह का परमजीत सिंह से न तो रक्त द्वारा और न ही विवाह द्वारा संबंध है । गुरमीत सिंह पति के नातेदार के प्रवर्ग के अंतर्गत नहीं आता है । इसलिए गुरमीत सिंह का नाम अभियुक्तों की सूची से निकाला जाना चाहिए । उसका परमजीत सिंह की पत्नी की दहेज मृत्यु के लिए भारतीय दंड संहिता की धारा 304ख के अधीन विचारण करना आवश्यक नहीं है ।"

5. राज्य की ओर से हाजिर होने वाले विद्वान् अपर महाधिवक्ता श्री वी. मधुकर ने यह दलील दी कि उच्च न्यायालय ने यह अभिनिर्धारित करके गलती की है कि प्रत्यर्थी मृतका के पति का नातेदार नहीं है । उसने यह उल्लेख किया कि बलबीर कौर परमजीत सिंह के पिता के भाई की पत्नी है और इस मामले में प्रत्यर्थी गुरमीत सिंह बलबीर कौर का भाई है, इसलिए परमजीत सिंह का नातेदार है । विद्वान् अपर महाधिवक्ता के अनुसार, उच्च न्यायालय ने यह अभिनिर्धारित करके गलती की है कि वह मृतका के पति का नातेदार नहीं है । तथापि, प्रत्यर्थी की ओर से हाजिर होने वाले विद्वान् काउंसेल श्री सी. डी. सिंह ने यह दलील दी कि प्रत्यर्थी को किसी भी रीति में मृतका के पति का नातेदार होना नहीं कहा जा सकता है और इसलिए उसे भारतीय दंड संहिता की धारा 304ख के अधीन अपराध के लिए अभियोजित नहीं किया जा सकता है । परस्पर विरोधी दलीलों को देखते हुए भारतीय दंड संहिता की धारा 304ख की परीक्षा करना आवश्यक है, जो निम्नलिखित रूप में हैं :–

> "304ख. **दहेज मृत्यु** – (1) जहां किसी स्त्री की मृत्यु किसी दाह या शारीरिक क्षति द्वारा की जाती है या उसके विवाह के सात

वर्ष के भीतर सामान्य परिस्थितियों से अन्यथा हो जाती है और यह दर्शित किया जाता है कि उसकी मृत्यु के कुछ पूर्व उसके पति ने या उसके पति के किसी नातेदार ने, दहेज की किसी मांग के लिए, या उसके संबंध में, उसके साथ क्रूरता की थी या उसे तंग किया था वहां ऐसी मृत्यु को 'दहेज मृत्यु' कहा जाएगा और ऐसा पति या नातेदार उसकी मृत्यु कारित करने वाला समझा जाएगा ।

स्पष्टीकरण – इस उपधारा के प्रयोजनों के लिए 'दहेज' का वही अर्थ है जो दहेज प्रतिषेध अधिनियम, 1961 (1961 का 28) की धारा 2 में है ।

(2) जो कोई दहेज मृत्यु कारित करेगा वह कारावास से, जिसकी अवधि सात वर्ष से कम की नहीं होगी किंतु जो आजीवन कारावास तक की हो सकेगी, दंडित किया जाएगा ।"

(हमारे द्वारा रेखांकन किया गया)

6. उपर्युक्त उपबंध को पढ़ने मात्र से यह स्पष्ट है कि जब किसी स्त्री की दाह या शारीरिक क्षति या अन्यथा द्वारा उसके विवाह के सात वर्ष के भीतर सामान्य परिस्थितियों से भिन्न परिस्थितियों में मृत्यु हो जाती है, और यदि यह दर्शित किया जाता है कि मृत्यु से कुछ पूर्व उस स्त्री के पति या उसके पति के किसी नातेदार द्वारा उसके साथ क्रूरता की गई थी या तंग किया गया था तो यह समझा जाएगा कि उसके पति या उसके पति के किसी नातेदार ने दहेज मृत्यु कारित की है । अतः, इस धारा में दहेज मृत्यु का अपराध कारित करने के लिए स्त्री के पति या उसके पति के किसी नातेदार को दायी बनाया गया है । स्वीकृततः, प्रत्यर्थी उस स्त्री का नातेदार नहीं है जिसकी मृत्यु हुई है और इसलिए अवधारण के लिए उद्भूत प्रश्न यह है कि क्या प्रत्यर्थी "उसके पति के किसी नातेदार" की परिधि के अंतर्गत आता है या नहीं । "नातेदार" अभिव्यक्ति को भारतीय दंड संहिता में परिभाषित नहीं किया गया है । जिस उपबंध से हमारा सरोकार है वह एक शास्तिक उपबंध है जिसका कठोर अर्थान्वयन करना चाहिए । यह सुस्थिर है कि जब किसी कानून के शब्दों को परिभाषित नहीं किया गया हो, तो उन्हें उनके स्वाभाविक, साधारण या प्रचलित अर्थ में समझा जाना चाहिए । इस प्रयोजन के लिए, उस साधारण अर्थ जिसमें इस शब्द को बोलचाल की भाषा में समझा जाता है का पता लगाने के लिए शब्दकोशों को निर्दिष्ट करना अनुज्ञेय होगा । रामनाथ अय्यर की एडंवास ला लेक्सिकॉन (वाल्यूम 4, तृतीय संस्करण) में नातेदार शब्द का अर्थ है कोई व्यक्ति जिससे रक्त,

विवाह या दत्तक-ग्रहण द्वारा संबंध है । अधिकांश शब्दकोशों में नातेदार शब्द का इस संदर्भ में यही अर्थ दिया गया है ।

7. यहां यह उल्लेखनीय है कि "पति के नातेदार" अभिव्यक्ति को भारतीय दंड संहिता की धारा 498क में प्रयुक्त किया गया है । **यू. सुविता** बनाम **पुलिस निरीक्षक की मार्फत राज्य और एक अन्य**[1] वाले मामले में इस न्यायालय ने उक्त अभिव्यक्ति का निर्वचन करते हुए यह अभिनिर्धारित किया कि इसका अर्थ ऐसा व्यक्ति है जिससे रक्त, विवाह या दत्तक-ग्रहण से संबंध है । निर्णय का सुसंगत भाग निम्नलिखित है :–

> "10. किसी कानूनी परिभाषा के अभाव में, 'नातेदार' शब्द का वही अर्थ लगाया जाना चाहिए जैसा कि आमतौर पर समझा जाता है । सामान्यतः इसके अंतर्गत किसी व्यक्ति का पिता, माता, पति या पत्नी, पुत्र, पुत्री, भाई, बहिन, भतीजा या भतीजी, पौत्र या पौत्री या किसी व्यक्ति का पति या पत्नी आते हैं । 'नातेदार' शब्द का अर्थ कानून की प्रकृति पर निर्भर करेगा । मुख्य तौर पर इसके अंतर्गत ऐसा व्यक्ति है जिससे रक्त, विवाह या दत्तक-ग्रहण द्वारा संबंध है ।"

8. **विजेता गजरा** बनाम **राष्ट्रीय राजधानी क्षेत्र दिल्ली राज्य**[2] वाले मामले में भी पति का नातेदार अभिव्यक्ति पर विचार किया गया और **यू. सुविता** (उपरोक्त) वाले मामले में इस न्यायालय के विनिश्चय का अनुमोदन करते हुए यह अभिनिर्धारित किया गया कि नातेदार शब्द रक्त संबंध या विवाह द्वारा संबंध तक ही सीमित होगा । उक्त निर्णय के निम्नलिखित उद्धरण को उद्धृत करना उचित है :–

> "12. 'नातेदार' शब्द के शब्दकोशीय अर्थ का अवलंब लेते हुए और इसके अतिरिक्त रामनाथ अय्यर के एडंवास ला लेक्सिकॉन (वाल्यूम 4, तृतीय संस्करण) का भी अवलंब लेते हुए न्यायालय यह अभिनिर्धारित करता है कि भारतीय दंड संहिता की धारा 498क, जो कि एक शास्तिक उपबंध है, का कठोर अर्थान्वयन करना आवश्यक है और जब तक कि कानून का संदर्भाधीन अर्थ दिया जाना अपेक्षित न हो, उक्त कानून का कठोरता से अर्थान्वयन किया जाना चाहिए । इस संबंध में न्यायालय ने टी. अशोक पाई **बनाम** आयकर आयुक्त

---

[1] (2009) 6 एस. सी. सी. 787 = ए. आई. आर. 2009 एस. सी. (सप्ली.) 1451.

[2] (2010) 11 एस. सी. सी. 618 = ए. आई. आर. 2010 एस. सी. 2712.

[(2007) 7 एस. सी. सी. 162] वाले मामले के निर्णय का अवलंब लिया । शिचरण लाल वर्मा **बनाम** मध्य प्रदेश राज्य [(2007) 15 एस. सी. सी. 369] वाले मामले के प्रति निर्देश किया गया । इस न्यायालय के विभिन्न विनिश्चयों से उद्धृत करने के पश्चात् यह अभिनिर्धारित किया गया कि भारतीय दंड संहिता की धारा 498क में नातेदार शब्द के प्रति निर्देश रक्त संबंधों या विवाह द्वारा संबंधों तक ही सीमित होगा ।"

9. यह अर्थान्वयन का सुप्रसिद्ध नियम है कि जब विधान-मंडल कानून के विभिन्न भागों में एक जैसे शब्दों को प्रयुक्त करता है, तब यह उपधारणा की जाती है कि वे शब्द उसी अर्थ में प्रयुक्त किए गए हैं जब तक कि संदर्भ द्वारा उस स्थान पर अलग अर्थ नहीं लगाया गया हो । हमें निर्वचन के साधारण नियम से विचलन करने के लिए संदर्भ में ऐसी कोई बात नहीं पाई है । इसलिए हमें किसी प्रकार का संदेह नहीं है कि भारतीय दंड संहिता की धारा 304ख में पति के नातेदार शब्द का अर्थ ऐसे व्यक्ति हैं जो रक्त, विवाह या दत्तक-ग्रहण द्वारा संबंधी हैं । अतः, हमारी राय में, उच्च न्यायालय ने आक्षेपित आदेश पारित करने में कोई गलती नहीं की है । हम यह भी कहना चाहेंगे कि ऐसा व्यक्ति, जो पति का नातेदार नहीं है, उसे भारतीय दंड संहिता की धारा 304ख के अधीन अभियोजित न किया जा सकता हो किंतु इसका यह अर्थ नहीं है कि यदि अभिकथनों से भारतीय दंड संहिता की धारा 304ख से भिन्न अपराध गठित होता है तो ऐसे व्यक्ति को किसी अन्य अपराध, अर्थात् भारतीय दंड संहिता की धारा 306, के लिए अभियोजित न किया जा सकता हो ।

10. परिणामतः, हम इस अपील में कोई गुणागुण नहीं पाते हैं और तद्नुसार इसे खारिज किया जाता है ।

अपील खारिज की गई ।

जस.

प्रदीप कुमार

बनाम

हरियाणा राज्य

2 जुलाई, 2014

न्यायमूर्ति सुधांशु ज्योति मुखोपाध्याय और न्यायमूर्ति एस. बी. बोबडे

दंड संहिता, 1860 (1860 का 45) – धारा 304ख और धारा 498क [सपठित भारतीय साक्ष्य अधिनियम, 1872 की धारा 6 और 32] – दहेज मृत्यु – पारिस्थितिक साक्ष्य – दो मृत्युकालिक कथन – एक मृत्युकालिक कथन की चिकित्सीय साक्ष्य से संपुष्टि – मृतक के चेहरे और खोपड़ी पर दाह क्षतियां न आना – मृतका के अनुसार स्टोव फटने से नहीं अपितु तेल उड़ेलने से क्षतियां कारित हुई थीं इसलिए उसके चेहरे और खोपड़ी पर क्षतियां नहीं आईं जिसकी पुष्टि चिकित्सीय साक्ष्य से होती है, ऐसी स्थिति में अपीलार्थी की दोषसिद्धि न्यायोचित होगी ।

दंड संहिता, 1860 – धारा 304ख और धारा 498क [सपठित भारतीय साक्ष्य अधिनियम, 1872 की धारा 113ख] – दहेज मृत्यु – पति द्वारा पत्नी की हत्या किया जाना – धारा 113ख के अधीन यह साबित होने पर कि स्त्री की मृत्यु उसके विवाह के सात वर्ष के भीतर सामान्य परिस्थितियों से अन्यथा हुई है और उस मृत्यु के कुछ पूर्व दहेज की मांग के लिए क्रूरता की गई थी, तब ऐसी स्थिति में यह उपधारित किया जाएगा कि अभियुक्त द्वारा दहेज मृत्यु कारित की गई है ।

इस मामले में अपीलार्थी प्रदीप कुमार का विवाह मृतका के साथ वर्ष 1995 में हुआ था । विवाह के पश्चात् अपीलार्थी ने मृतका को दहेज के लिए तंग करना आरंभ कर दिया और विवाह के एक वर्ष के भीतर ही अपीलार्थी ने मृतका को मिट्टी का तेल उड़ेलकर आग में जला दिया जिससे उसकी मृत्यु हो गई । मृतका ने दो मृत्युकालिक कथन दिए । विचारण न्यायालय ने मृतका के पश्चात्वर्ती कथन को सही पाते हुए अपीलार्थी को भारतीय दंड संहिता की धारा 304ख के अधीन दोषसिद्ध कर दिया । अपीलार्थी ने इस आदेश से व्यथित होकर उच्च न्यायालय के समक्ष आवेदन किया । उच्च न्यायालय ने भी विचारण न्यायालय के आदेश को सही ठहराते हुए अपीलार्थी की अपील खारिज कर दी । अपीलार्थी ने उच्च न्यायालय के निर्णय के विरुद्ध उच्चतम न्यायालय के समक्ष अपील फाइल

की है । उच्चतम न्यायलय ने निचले दोनों न्यायालयों के आदेशों की पुष्टि करते हुए अपीलार्थी की अपील खारिज कर दी । अपील खारिज करते हुए,

अभिनिर्धारित – डा. एस. एस. दहिया (अभि. सा. 7) ने प्रदीप कुमार की पत्नी मंजू के शव का शवपरीक्षण किया है । चिकित्सक ने यह कथन किया है कि शव पर चेहरे, खोपड़ी और दोनों टांगों और पैरों तथा बाईं बांह के ऊपरी भाग को छोड़कर, पूरे शरीर पर गहरी दाह क्षतियां हैं । शरीर के कुछ भाग में मवाद पड़ा हुआ है । यकृत, प्लीहा, वृक्क और दोनों फेफड़े सिकुड़े हुए हैं । चिकित्सक की राय में इस मामले में मृत्यु का कारण दाह क्षतियां हैं जो घटना के सामान्य अनुक्रम में मृत्यु पूर्व की हैं । क्षतियों और मृत्यु कारित होने के बीच संभावित समय कुछ घंटों से कुछ दिनों के भीतर है ; मृत्यु और शवपरीक्षण के बीच लगभग 24 घंटों का अंतर है । डा. एस. एस. दहिया (अभि. सा. 7) ने अपनी प्रतिपरीक्षा में यह कथन किया है कि चूंकि मृतका का शरीर जल गया था इसलिए यह संभव नहीं था कि शरीर पर आई अन्य क्षतियां दिखाई दे सकें । यदि मृतका स्टोव के सामने बैठी होती और स्टोव फट जाता तब ऐसी स्थिति में उसके चेहर और खोपड़ी पर क्षतियां पहुंचतीं जो कि इस मामले में नहीं हुआ है । चिकित्सक ने इस सुझाव से सहमति व्यक्त की है कि यदि मृतका के पीछे से मिट्टी का तेल उड़ेला जाता और उसमें आग लगाई जाती तब मृतका के शरीर के पीछे की ओर क्षतियां पहुंचतीं । यह संभव है कि मृतका को ऐसी स्थिति में भी दाह क्षतियां पहुंच सकती थीं कि स्टोव में पिन लगाया जाता और उससे अचानक तेल और आग की लपटें निकलतीं किंतु ऐसी स्थिति में भी मृतका का चेहरा और खोपड़ी भी जलने चाहिए थे जबकि इस मामले में ऐसा नहीं हुआ है । मृत्युकालिक कथन का परिशीलन करने पर न्यायालय ने यह अभिनिर्धारित किया है कि मृत्युकालिक कथन का द्वितीय भाग विश्वासोत्पादक है और इस पर मृतका के मृत्युकालिक कथन के रूप में विचार किया जाना चाहिए । मृत्युकालिक कथन का प्रथम भाग अभियुक्त पति द्वारा सिखाया-पढ़ाया गया है क्योंकि मृत्युकालिक कथन के उक्त भाग से यही स्पष्ट होता है । मृतका के पिता सपत्तर सिंह (अभि. सा. 8) ने भी अपीलार्थी द्वारा मांग किए जाने के संबंध में अभिसाक्ष्य दिया है । यद्यपि, अपीलार्थी ने अपनी पत्नी का जीवन बचाने के लिए रक्तदान किया था किंतु विलंब से किए जाने के कारण इस रक्तदान से कोई लाभ न हो सका । मृतका ने मृत्युकालिक कथन में यह उल्लेख किया है कि उसके पति ने यह कहा था कि यदि मृतका के माता-पिता द्वारा एक लाख रुपए की मांग पूरी नहीं की गई तो वह फांसी पर लटकाकर मृतका की हत्या

कर देगा और 1 मार्च, 1996 को उसके पति ने उसे फांसी पर लटकाने का प्रयास किया । अपीलार्थी ने इसके पहले भी उसे रात्रि में जलाने का प्रयास किया था और जब 5.30 बजे पूर्वाह्न में वह शौचालय गई तब अपीलार्थी ने पीछे से आकर उसके कपड़ों पर मिट्टी का तेल उड़ेल दिया और उसमें आग लगा दी । मृतका ने स्पष्ट रूप से यह कथन किया है कि मृत्युकालिक कथन का पूर्ववर्ती भाग उसके पति के उकसाए जाने पर दिया गया है । इसका कोई कारण नहीं है कि मृतका दाह क्षतियों से पीड़ित होकर अपने पति को मिथ्या फंसाएगी । उपर्युक्त बातों के आधार पर, सपत्तर सिंह (अभि. सा. 8) के साक्ष्य और मृत्युकालिक कथन का परिशीलन करने पर न्यायालय का यह निष्कर्ष है कि दहेज की मांग की गई थी और मृत्यु के कुछ पूर्व मृतका को तंग किया गया था । (पैरा 12, 13, 15 और 16)

धारा 304ख के उपबंध वहां लागू होंगे जहां किसी स्त्री की मृत्यु दाह या शारीरिक क्षति या उसके विवाह के सात वर्ष के भीतर सामान्य परिस्थितियों से अन्यथा हो जाती है और यह दर्शित किया जाता है कि उसकी मृत्यु के कुछ पूर्व उसके पति ने या उसके पति के किसी नातेदार ने दहेज की किसी मांग के लिए या उसके संबंध में उसके साथ क्रूरता की थी या उसे तंग किया था । भारतीय साक्ष्य अधिनियम, 1872 की धारा 113ख भी वर्तमान मामले में सुसंगत है । जैसाकि पहले ही विचार किया गया है कि दंड संहिता की धारा 304ख और साक्ष्य अधिनियम की धारा 113ख दोनों ही दहेज प्रतिषेध (संशोधन) अधिनियम, 1986 (1986 का 43) में निगमित किए गए हैं ताकि दहेज मृत्यु की बढ़ती हुई बुराई से निपटा जा सके । भारतीय विधि आयोग ने तारीख 10 अगस्त, 1988 की अपनी 21वीं रिपोर्ट में "दहेज मृत्यु और विधि सुधार" पर व्यापक रूप से दोनों उपबंधों के निगमित किए जाने के संबंध में विश्लेषण किया है । पूर्व-विद्यमान विधि में आने वाली रुकावटों को दृष्टिगत करते हुए दहेज से संबंधित मृत्यु को साबित करने के लिए साक्ष्य जुटाने में विधान-मंडल ने कतिपय संघटकों के साबित किए जाने के आधार पर दहेज मृत्यु की उपधारणा से संबंधित ऐसे उपबंध को निगमित करना उचित समझा है । इस पृष्ठभूमि को दृष्टिगत करते हुए साक्ष्य अधिनियम में उपधारणात्मक धारा 113ख निगमित की गई है । दंड संहिता की धारा 304ख में "दहेज मृत्यु" की परिभाषा और साक्ष्य अधिनियम की उपधारणात्मक धारा 113ख की भाषा के अनुसार आवश्यक संघटकों में एक संघटक यह है कि संबंधित स्त्री के साथ उसकी "मृत्यु के कुछ पूर्व" "दहेज की मांग के लिए

या उसके संबंध में" उसके साथ क्रूरता की गई हो या उसे तंग किया गया हो । धारा 113ख के अधीन उपधारणा विधि की उपधारणा है । इस धारा में उल्लिखित संघटकों को साबित किए जाने पर, न्यायालय के लिए यह आवश्यक हो जाता है कि वह यह उपधारित करे कि अभियुक्त ने दहेज मृत्यु कारित की है । यह उपधारणा निम्न संघटकों के साबित किए जाने पर ही की जा सकती है – (1) न्यायालय के समक्ष इस प्रश्न पर विचार किया जाना चाहिए कि क्या अभियुक्त ने स्त्री की दहेज मृत्यु कारित की है । (इसका यह अर्थ हुआ कि उपधारणा केवल तब की जा सकती है जब अभियुक्त का विचारण दंड संहिता की धारा 304ख के अधीन अपराध के लिए किया जा रहा है ।) (2) स्त्री के पति या उसके नातेदारों द्वारा उसके साथ क्रूरता की गई हो या उसे तंग किया गया हो । (3) दहेज की मांग के लिए या उसके संबंध में ऐसी क्रूरता की गई हो या तंग किया गया हो । (4) स्त्री की "मृत्यु के कुछ पूर्व" उसके साथ क्रूरता की गई हो या उसे तंग किया गया हो । वर्तमान मामले में यह विवादित नहीं है कि विवाह तारीख 20 जून, 1995 को हुआ था । अभियुक्त प्रदीप कुमार की पत्नी मंजू तारीख 1 मार्च, 1996 को आग में जलाई गई और तारीख 12 मार्च, 1996 को उसके विवाह के 9 मास के भीतर ही उसकी मृत्यु हो गई । मंजू की मृत्यु दाह क्षतियों के कारण अर्थात् सामान्य परिस्थितियों से अन्यथा हुई है । यह पहले ही विचार किया जा चुका है कि दहेज की मांग को लेकर उसकी मृत्यु के कुछ पूर्व उसके साथ क्रूरता की गई थी और उसे तंग किया गया था । अभियोजन पक्ष द्वारा पांचों संघटक साबित किए गए हैं । साक्ष्य अधिनियम की धारा 113ख के अधीन जब यह प्रश्न उठाया गया है कि क्या किसी व्यक्ति ने दहेज मृत्यु कारित की है और यह साबित हो जाता है कि स्त्री की मृत्यु उसके विवाह के सात वर्ष के भीतर हुई है और यह मृत्यु सामान्य परिस्थितियों से अन्यथा हुई है तथा इस मृत्यु के कुछ पूर्व दहेज की मांग के लिए या उसके संबंध में उस व्यक्ति द्वारा स्त्री के साथ क्रूरता की गई है या उसको तंग किया गया है, तब ऐसी स्थिति में न्यायालय यह उपधारणा करेगा कि ऐसे व्यक्ति ने दहेज मृत्यु कारित की है । अभियोजन पक्ष द्वारा सफलतापूर्वक दहेज मृत्यु साबित किए जाने के पश्चात् विचारण न्यायालय तथा उच्च न्यायालय ने अभियुक्त प्रदीप कुमार को दंड संहिता की धारा 304ख के अधीन अपराध का दोषी ठीक ही अभिनिर्धारित किया है । वर्तमान मामले में, सूबेदार सपत्तर सिंह (अभि. सा. 8) के साक्ष्य और मृत्युकालिक कथन के आधार पर स्पष्ट रूप से यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि विचारण न्यायालय और उच्च न्यायालय

ने यह ठीक ही अभिनिर्धारित किया है कि अभियुक्त प्रदीप कुमार ने मंजू को दंड संहिता की धारा 498क के स्पष्टीकरण के खंड-ख में यथा परिभाषित रूप में तंग किया है । (पैरा 18, 19 और 21)

निर्दिष्ट निर्णय

		पैरा
[2003]	(2003) 8 एस. सी. सी. 80 : **हीरालाल और अन्य** बनाम **राज्य (राष्ट्रीय राजधानी राज्य क्षेत्र दिल्ली सरकार)** ।	18

अपीली (दांडिक) अधिकारिता : 2011 की दांडिक अपील सं. 292.

1997 की दांडिक अपील सं. 909 में पंजाब और हरियाणा उच्च न्यायालय, चंडीगढ़ के तारीख 3 फरवरी, 2010 के निर्णय और आदेश के विरुद्ध अपील ।

अपीलार्थी की ओर से श्री के. के. मोहन

प्रत्यर्थी की ओर से सर्वश्री अनिल कौशिक और कमल मोहन गुप्ता

न्यायालय का निर्णय न्यायमूर्ति सुधांशु ज्योति मुखोपाध्याय ने दिया ।

न्या. मुखोपाध्याय – यह अपील 1997 की दांडिक अपील सं. 909 में पंजाब और हरियाणा उच्च न्यायालय, चंडीगढ़ के तारीख 3 फरवरी, 2010 के निर्णय के विरुद्ध की गई है । आक्षेपित एक ही निर्णय के अनुसार उच्च न्यायालय ने अपीलार्थी द्वारा फाइल किए गए पुनरीक्षण आवेदन को खारिज कर दिया और सेशन न्यायाधीश, करनाल द्वारा पारित किए गए तारीख 1 अगस्त, 1997 के उस निर्णय की भी पुष्टि कर दी जिसके अनुसार सेशन न्यायाधीश ने भारतीय दंड संहिता, 1860 (संक्षेप में "दंड संहिता" कहा गया है) की धारा 498क और 304ख के अधीन दंडनीय अपराधों के लिए अपीलार्थी की दोषसिद्धि की थी और उसे दंडादिष्ट किया था ।

2. अभियोजन का यह पक्षकथन है कि तारीख 20 जून, 1995 को मंजू **उर्फ** उमा देवी का विवाह अभियुक्त प्रदीप कुमार के साथ हुआ था । तारीख 1 मार्च, 1996 को मंजू को दाह क्षतियां पहुंचीं और उसे मेडिकल कालेज अस्पताल, रोहतक में भर्ती कराया गया । तारीख 2 मार्च, 1996 को उसने मुख्य न्यायिक मजिस्ट्रेट रोहतक के समक्ष अपना मृत्युकालिक कथन दिया । उक्त मृत्युकालिक कथन के प्रथम भाग में उसने यह प्रकथन किया है कि यह दुर्घटना का मामला है जबकि कथन के पश्चात्वर्ती भाग

में उसने यह अभिकथन किया है कि उसका पति उस पर अपने माता-पिता से एक लाख रुपया लेने के लिए दबाव डाल रहा था और उसने मंजू को यह धमकी भी दी कि यदि वह यह धन नहीं लाई तो वह उसकी हत्या कर देगा । मंजू ने यह भी अभिकथन किया है कि तारीख 1 मार्च, 1996 को लगभग 5.30 बजे पूर्वाह्न में उसके पति ने उसे पीछे से आकर मिट्टी के तेल से भिगो दिया और उसमें आग लगा दी और इसके पश्चात् उसने उसे बचाने का प्रयास तब किया जब मंजू ने शोर मचाया और ऐसा करते समय अपीलार्थी के हाथ जल गए ।

इस कथन के आधार पर, अभियुक्त के विरुद्ध प्रथम इत्तिला रिपोर्ट अभिलिखित की गई । इस मामले में अन्वेषण किया गया । तारीख 12 मार्च, 1996 को मंजू **उर्फ** उमा देवी की मृत्यु हो गई । इसके पश्चात्, मामले को दंड संहिता की धारा 304ख में परिवर्तित कर दिया गया और अन्वेषण पूरा होने के पश्चात् न्यायालय में चालान प्रस्तुत किया गया और मामला सेशन न्यायालय के सुपुर्द किए जाने के पश्चात् अभियुक्त को ऊपर उल्लिखित रीति में आरोपित किया गया ।

3. अभियोजन पक्ष ने अपने पक्षकथन के समर्थन में 9 साक्षियों की परीक्षा कराई । मृतका की माता उषा (अभि. सा. 6) और मृतका का पिता सपत्तर सिंह (अभि. सा. 8) मुख्य साक्षी है ।

4. साक्ष्य का मूल्यांकन करने और पक्षकारों को सुनने पर विद्वान् सेशन न्यायाधीश, करनाल ने निम्न मत व्यक्त किया :–

> "20. इसमें इसके ऊपर की गई चर्चा की संपूर्णता से यह प्रतीत होता है कि अभियुक्त अपनी पत्नी की हत्या के लिए जिम्मेदार है साथ ही वह उसे यातना देने और तंग करने के लिए भी जिम्मेदार हैं । तथापि, चूंकि उसे केवल दंड संहिता की धारा 498क और 304ख के अधीन आरोपित किया गया है, इसलिए मैं उसे उक्त अपराध के लिए दोषी अभिनिर्धारित करूंगा और ऐसे अपराध के अधीन दोषसिद्ध करूंगा जो दंड संहिता की धारा 302 के अधीन किए गए अपराध से कम है । मैं अभियुक्त को यह अवसर देता हूं कि वह न्यूनकारी परिस्थितियों को साबित करने के लिए दलील प्रस्तुत करे और दंड की मात्रा के संबंध में अपने तर्क दे ।"

5. अपीलार्थी के विद्वान् काउंसेल ने यह दलील दी है कि चिकित्सीय साक्ष्य अभियोजन वृत्तांत के प्रतिकूल है और इससे अभियोजन पक्षकथन का

समर्थन नहीं होता है । इस संबंध में यह दलील दी गई है कि यदि मृतका पर पीछे से मिट्टी का तेल उड़ेला जाता तब दाह क्षतियां मृतका की पीठ पर कारित होतीं । तथापि, चिकित्सा रिपोर्ट/शवपरीक्षण रिपोर्ट में ऐसा उल्लेख नहीं है कि मृतका के पीठ पर दाह क्षतियां पहुंची हैं । यह भी दलील दी गई है कि विचारण न्यायालय और उच्च न्यायालय इसका मूल्यांकन करने में असफल रहे हैं कि यह घटना एक दुर्घटना है क्योंकि क्षतियां मृतका के चेहरे, वक्ष और टांगों पर पहुंची हैं जिससे यह दर्शित और साबित होता है कि मृतका पर मिट्टी का तेल स्टोव के फटने से गिरा है ।

6. विद्वान् काउंसेल ने यह भी दलील दी है कि तथाकथित मृत्युकालिक कथन का अवलंब नहीं लिया जा सकता है क्योंकि इसका प्रथम भाग, द्वितीय भाग के प्रतिकूल है ।

7. वर्तमान मामले में, मृतका की माता उषा देवी (अभि. सा. 6) और उसके पिता सूबेदार सपत्तर सिंह (अभि. सा. 8) महत्वपूर्ण साक्षी हैं ।

8. उषा देवी (अभि. सा. 6) ने अपने अभिसाक्ष्य में यह कथन किया है कि तारीख 20 जून, 1995 को उसकी पुत्री मंजू का विवाह अभियुक्त प्रदीप के साथ हुआ था । 1 मार्च, 1996 को लगभग 7.00 बजे अपराह्न में जल सिंह उषा देवी के पास आया और उसने उसे बताया कि मंजू का स्वास्थ्य ठीक नहीं है और उसे मेडिकल कालेज अस्पताल, रोहतक में भर्ती करा दिया गया है । 12/12.30 बजे पूर्वाह्न में उषा देवी मेडिकल कालेज अस्पताल, रोहतक पहुंची । उसे अस्पताल में अभियुक्त प्रदीप कुमार और संतोष मिले और उन्होंने बताया कि मंजू को स्टोव से दाह क्षतियां पहुंची हैं । जब उषा देवी अपनी पुत्री मंजू को देखने गई तब मंजू ने उसे बताया कि वह 5.30 बजे पूर्वाह्न में सोकर उठी थी और उस समय अभियुक्त प्रदीप कुमार ने उस पर मिट्टी का तेल उड़ेलकर आग लगा दी । इसके पश्चात् उषा देवी अपनी पुत्री के पास ठहरी और तारीख 12 मार्च, 1996 को मंजू की मृत्यु हो गई । इस साक्षी ने यह कथन किया है कि उसे यह मालूम नहीं था कि उसकी पुत्री ने मजिस्ट्रेट को कोई कथन दिया है या नहीं । उषा देवी ने यह भी कथन किया है कि उसकी पुत्री ने उसे यह बताया था कि उसके परिवार में झगड़ा होता रहता है क्योंकि अभियुक्त शूकर-पालन का काम करने के लिए एक लाख रुपए की मांग किया करता था ।

मृतका की माता उषा देवी (अभि. सा. 6) ने अपनी मुख्य परीक्षा में यह अभिसाक्ष्य दिया है कि जब वह अपनी पुत्री से मिलने अस्पताल पहुंची,

तब अभियुक्त और अन्य व्यक्ति वहां मौजूद थे, इसलिए उसकी पुत्री उसे कुछ भी प्रकट नहीं कर सकी थी । जब तक मृतका मेडिकल कालेज अस्पताल, रोहतक में भर्ती रही तब तक पुलिस ने उषा देवी का कथन अभिलिखित नहीं किया था । उसने यह भी कथन किया है कि तारीख 24 मार्च, 1996 को उसने पुलिस के समक्ष यह कथन किया था कि उसकी पुत्री मंजू ने उसे यह बताया है कि उसे स्टोव से दाह क्षतियां पहुंची हैं । इसके पूर्व तारीख 13 मार्च, 1996 को उसने पुलिस को एक कथन दिया था जिसमें उसने यह उल्लेख किया था कि उसे (उषा देवी को) मंजू के उस कथन पर विश्वास है जो उसने मजिस्ट्रेट के समक्ष दिया था । उषा देवी ने इस सुझाव से इनकार किया है कि उसने पुलिस के समक्ष यह अभिसाक्ष्य दिया था कि उसकी पुत्री ने उसे यह बताया था कि उसे स्टोव के फटने से दाह क्षतियां पहुंची हैं । तथापि, जब उषा को उसके कथन (प्रदर्श- डी. ए.) का "क" से "क" तक वाला भाग दिखाया गया तब यह पाया गया कि उसमें यह बात अभिलिखित की गई है ।

9. सूबेदार सपत्तर सिंह (अभि. सा. 8) ने यह अभिकथन किया है कि तारीख 3 मार्च, 1996 को उसकी पत्नी ने उसे रोहतक से फोन किया था कि उसकी पुत्री जल गई है और उसे तुरंत वहां जाना चाहिए । अपने कंपनी कमांडर से छुट्टी प्राप्त करने के पश्चात्, वह तारीख 4 मार्च, 1996 को सायंकाल रोहतक आया । उसने अपनी पुत्री से बात की । मंजू ने उसे बताया कि वह पहले ही मजिस्ट्रेट को कथन दे चुकी है जिसे उन्हें स्वीकार करना चाहिए । जब इस साक्षी ने अपनी पुत्री से अन्य व्यक्तियों की अनुपस्थिति में बात की तब उसने इस साक्षी को बताया कि वह और उसका पति शूकर-पालन का कारबार करना चाहते थे, और यह कि संतोष देवी उनके घर आई और उसने अभियुक्त प्रदीप कुमार से कहा कि वह अपने श्वसुर अर्थात् अभि. सा. 8 से एक लाख रुपए प्राप्त करें और यह कि वह (अभियुक्त) ऋण के लिए आवेदन न करे । संतोष के कहने पर प्रदीप ने अपनी पत्नी पर दबाव डाला और उसके साथ मार-पीट की ताकि वह अभियुक्त की मांग को पूरा कर सके । अभि. सा. 8 ने यह भी कथन किया है कि तारीख 20 जनवरी, 1996 को उसे उसकी पुत्री से एक पत्र प्राप्त हुआ था जिसमें उसकी पुत्री ने यह कथन किया था कि अभियुक्त रंगीन टेलीविजन चाहता है । जनवरी के मास में अभि. सा. 8 की पुत्री और प्रदीप उसके घर आए और उसकी पुत्री ने अभि. सा. 8 से यह कहा कि उसे अपने मैट्रिक कक्षा के प्रमाणपत्र की आवश्यकता है क्योंकि उसे शूकर-पालन के कारबार के लिए ऋण मंजूर कराने हेतु आवेदन करना है ।

मंजू ने यह बताया कि प्रदीप की माता उसे खाना नहीं देती है । तारीख 12 मार्च, 1996 को उसकी पुत्री की मृत्यु हो गई और 13 मार्च, 1996 को उसका शव ग्राम अरदाना ले जाया गया क्योंकि अरदाना में अधिक नातेदार थे जबकि रोहतक में केवल वह (अभि. सा. 8) और उसकी पत्नी ही थे ।

सपत्तर सिंह (अभि. सा. 8) ने अपनी प्रतिपरीक्षा में यह कथन किया है कि तारीख 4 मार्च, 1996 को उसकी पुत्री ने इस तथ्य के सिवाए कुछ नहीं बताया था कि उसने मजिस्ट्रेट को पहले ही कथन दे दिया है जो उनके द्वारा स्वीकार किया जाना चाहिए । वह अपनी पुत्री के साथ 4 मार्च, 1996 से उसकी मृत्यु हो जाने के समय तक साथ रहा था । इस अवधि के दौरान उससे कोई भी पुलिस अधिकारी नहीं मिला । तारीख 13 मार्च, 1996 को पुलिस मेडिकल कालेज अस्पताल में आई और तब उसने पुलिस के समक्ष अपना कथन दिया ।

10. श्री ए. के. बिमल मुख्य न्यायिक मजिस्ट्रेट, रोहतक ने अपने अभिसाक्ष्य में यह कथन किया है कि तारीख 2 मार्च, 1996 को पुलिस उपनिरीक्षक जयप्रकाश ने प्रदीप कुमार की पत्नी मंजू का कथन अभिलिखित करने के लिए उसके समक्ष आवेदन किया था जो उस समय मेडिकल कालेज अस्पताल, रोहतक में भर्ती थी । वह अस्पताल के लिए रवाना हो गया और वहां पर लगभग 2.00 बजे अपराह्न में पहुंचा । उसने रोगी की ठीक हालत के संबंध में चिकित्सक से राय प्राप्त की । चिकित्सक ने यह राय (प्रदर्श-पी.ए./1) दी कि रोगी कथन देने के लिए स्वस्थ्य है । इसके पश्चात्, उसने मंजू **उर्फ** उमा देवी का कथन (प्रदर्श-पी.बी.) अभिलिखित किया । उसे कथन पढ़कर सुनाया गया और मंजू ने अपने अंगूठे की छाप लगाकर कथन के सही होने की पुष्टि की । रोगी का उपचार करने वाले चिकित्सक ने अपना पृष्ठांकन (प्रदर्श-पी.बी./1) किया कि कथन देने के पूर्ण समय के दौरान रोगी की दशा ठीक बनी रही थी । कथन अभिलिखित करने के पश्चात्, चिकित्सक ने कथन की एक प्रति पुलिस को दी और इस संबंध में अपना पृष्ठांकन (प्रदर्श-पी.बी./2) किया । रोगी का उपचार करने वाले चिकित्सक ने इसकी शनाख्त की । रोगी ने एक ही समय पर दो कथन दिए । उसने ये दोनों कथन क्रमवार दिए है और एक ही समय पर एक के बाद एक दोनों कथन अभिलिखित किए गए ।

मुख्य न्यायिक मजिस्ट्रेट ने अपनी प्रतिपरीक्षा में यह कथन किया है कि कथन का प्रथम भाग अभिलिखित किए जाने के पश्चात् जब उसने

रोगी से अपने अंगूठे की छाप लगाने को कहा तब रोगी ने उसे बताया कि वह सत्य कथन देना चाहती है परंतु यह तब जबकि वह किसी भी अन्य व्यक्ति को इस संबंध में न बताए । उसने रोगी से अपने हस्ताक्षर करने को कहा । लेकिन वह अपने हस्ताक्षर करने की स्थिति में नहीं थी, अतः उसके अंगूठे की छाप ली गई ।

11. प्रदर्श-पीए मृत्युकालिक कथन है जो निम्न प्रकार है :–

"लिखत की प्रति निम्न प्रकार है –

प्रश्न – क्या तुम विवाहित हो ?

उत्तर – मैं विवाहित हूं और मैं सात मास की गर्भवती हूं । मुझे अल्ट्रासाउन्ड परीक्षण कराने के पश्चात् पता चला है कि भ्रूण नष्ट हो गया है ।

प्रश्न – तुम्हारे विवाह को कितने वर्ष बीत चुके हैं ?

उत्तर – मेरा विवाह 6 जून, 1995 को हुआ था ।

प्रश्न – तुम आग में कैसे जलीं ?

उत्तर – कल 5.30/6.00 बजे पूर्वाहन में मैंने बरामदे के बाहर चाय बनाना आरंभ किया था । मेरे पति अंतिम कमरे में सो रहे थे । जब स्टोव के पम्प में हवा भरी गई और माचिस की तिली जलाई गई तो स्टोव अचानक फट गया और मैंने जो टेरीकौट का सूट पहना हुआ था उसमें आग लग गई और मैंने शोर मचाया ।

पढ़कर सुनाया गया और
स्वीकार किया गया कि
कथन ठीक है ।

ह./-
मुख्य न्यायिक मजिस्ट्रेट
तारीख 2 मार्च, 1996

पुनः यह कथन किया गया है कि मेरा कथन दोबारा लिया जाए क्योंकि उपरोक्त कथन देने के मुझे मेरे पति द्वारा सिखाया-पढ़ाया गया था । अब मैं फिर से कथन देना चाहती हूं । आप किसी भी व्यक्ति को यह कथन न दिखाएं ।

प्रश्न – तुम्हारे साथ क्या हुआ था ?

उत्तर – 10/15 दिनों से मेरे पति के साथ विवाद चल रहा था और वह मेरी पिटाई किया करता था और घर पर रहा करता था तथा कोई भी काम-काज नहीं कर रहा था । एक दिन मेरे पति ने मुझे फांसी पर लटकाने का प्रयास किया । पहले तो उसने मुझे रात्रि में आग में जलाने का प्रयास किया किंतु जब मैं 5.30 बजे पूर्वाहन में शौचालय गई, उसने मेरे वस्त्रों पर पीछे से आकर मिट्टी का तेल छिड़क दिया और माचिस से आग लगा दी और भीतर की ओर दौड़ा । मैंने शोर माचाया जिस पर अन्य व्यक्तियों ने आकर मुझे बचाया । इसके पश्चात्, मेरा पति वहां आया । उसने घटनास्थल पर ही मेरे कपड़े फाड़ दिए । मुझे रोहतक लाया गया है क्योंकि मुझे यह बताया गया है कि मुझे इस पूरी घटना का वर्णन पुलिस से करना है । मेरी सास स्वयं भोजन बनाती है । वह मेरी ननद के लिए भोजन तैयार करती है किंतु वह मुझे भोजन नहीं देती है ।

प्रश्न – तुमने इसके पूर्व गलत कथन क्यों दिया था ?

उत्तर – मुझे ऐसा ही कथन देने के लिए कहा गया था ।

प्रश्न – क्या तुम शिक्षित हो ?

उत्तर – हां, मैं मैट्रिक पास हूं ।

पढ़कर सुनाया गया और
स्वीकार किया गया कि
कथन ठीक है ।

मंजू के दाएं हाथ के अंगूठे की छाप

प्रमाणित किया जाता है कि रोगी कथन देने के पूर्ण समय के दौरान ठीक हालत में थी ।

ह./-
ए. के. बिमल,
मुख्य न्यायिक मजिस्ट्रेट, रोहतक
तारीख 2 मार्च, 1996
समय 2.30 बजे अपराह्न"

मृत्युकालिक कथन का परिशीलन करने पर, हमारा यह निष्कर्ष है कि

इसका द्वितीय भाग विश्वसनीय प्रतीत होता है और मृतका के इस कथन पर मृत्युकालिक कथन के रूप में विचार किया जाना चाहिए । मृत्युकालिक कथन का प्रथम भाग अभियुक्त पति द्वारा सिखाए-पढ़ाए जाने पर दिया गया है जैसाकि मृत्युकालिक कथन के उक्त भाग से ही स्पष्ट है ।

12. डा. एस. एस. दहिया (अभि. सा. 7) ने प्रदीप कुमार की पत्नी मंजू के शव का शवपरीक्षण किया है । चिकित्सक ने यह कथन किया है कि शव पर चेहरे, खोपड़ी और दोनों टांगों और पैरों तथा बाईं बांह के ऊपरी भाग को छोड़कर, पूरे शरीर पर गहरी दाह क्षतियां हैं । शरीर के कुछ भाग में मवाद पड़ा हुआ है । यकृत, प्लीहा, वृक्क और दोनों फेफड़े सिकुड़े हुए हैं । चिकित्सक की राय में इस मामले में मृत्यु का कारण दाह क्षतियां हैं जो घटना के सामान्य अनुक्रम में मृत्यु पूर्व की हैं । क्षतियों और मृत्यु कारित होने के बीच संभावित समय कुछ घंटों से कुछ दिनों के भीतर है ; मृत्यु और शवपरीक्षण के बीच लगभग 24 घंटों का अंतर है ।

डा. एस. एस. दहिया (अभि. सा. 7) ने अपनी प्रतिपरीक्षा में यह कथन किया है कि चूंकि मृतका का शरीर जल गया था इसलिए यह संभव नहीं था कि शरीर पर आई अन्य क्षतियां दिखाई दे सकें ।

यदि मृतका स्टोव के सामने बैठी होती और स्टोव फट जाता तब ऐसी स्थिति में उसके चेहरे और खोपड़ी पर क्षतियां पहुंचतीं जो कि इस मामले में नहीं हुआ है । चिकित्सक ने इस सुझाव से सहमति व्यक्त की है कि यदि मृतका के पीछे से मिट्टी का तेल उड़ेला जाता और उसमें आग लगाई जाती तब मृतका के शरीर के पीछे की ओर क्षतियां पहुंचतीं । यह संभव है कि मृतका को ऐसी स्थिति में भी दाह क्षतियां पहुंच सकती थीं कि स्टोव में पिन लगाया जाता और उससे अचानक तेल और आग की लपटें निकलतीं किंतु ऐसी स्थिति में भी मृतका का चेहरा और खोपड़ी भी जलने चाहिए थे जबकि इस मामले में ऐसा नहीं हुआ है ।

13. मृत्युकालिक कथन का परिशीलन करने पर हमने यह अभिनिर्धारित किया है कि मृत्युकालिक कथन का द्वितीय भाग विश्वासोत्पादक है और इस पर मृतका के मृत्युकालिक कथन के रूप में विचार किया जाना चाहिए । मृत्युकालिक कथन का प्रथम भाग अभियुक्त पति द्वारा सिखाया-पढ़ाया गया है क्योंकि मृत्युकालिक कथन के उक्त भाग से यही स्पष्ट होता है ।

14. मृतका मंजू की माता उषा देवी (अभि. सा. 6) ने यह अभिकथन

किया है कि मंजू ने उसे यह बताया था कि परिवार में इसलिए झगड़ा हुआ था कि अभियुक्त शूकर-पालन का कारबार करने के लिए एक लाख रुपए की मांग कर रहा था । मंजू ने भी अपने पिता को 5,000/- रुपए की मांग करते हुए एक पत्र भेजा था । वह पत्र प्रदर्श-पी.जे. है ।

15. मृतका के पिता सपत्तर सिंह (अभि. सा. 8) ने भी अपीलार्थी द्वारा मांग किए जाने के संबंध में अभिसाक्ष्य दिया है । यद्यपि, अपीलार्थी ने अपनी पत्नी का जीवन बचाने के लिए रक्तदान किया था किंतु विलंब से किए जाने के कारण इस रक्तदान से कोई लाभ न हो सका । मृतका ने मृत्युकालिक कथन में यह उल्लेख किया है कि उसके पति ने यह कहा था कि यदि मृतका के माता-पिता द्वारा एक लाख रुपए की मांग पूरी नहीं की गई तो वह फांसी पर लटकाकर मृतका की हत्या कर देगा और 1 मार्च, 1996 को उसके पति ने उसे फांसी पर लटकाने का प्रयास किया । अपीलार्थी ने इसके पहले भी उसे रात्रि में जलाने का प्रयास किया था और जब 5.30 बजे पूर्वाह्न में वह शौचालय गई तब अपीलार्थी ने पीछे से आकर उसके कपड़ों पर मिट्टी का तेल उड़ेल दिया और उसमें आग लगा दी । मृतका ने स्पष्ट रूप से यह कथन किया है कि मृत्युकालिक कथन का पूर्ववर्ती भाग उसके पति के उकसाये जाने पर दिया गया है । इसका कोई कारण नहीं है कि मृतका दाह क्षतियों से पीड़ित होकर अपने पति को मिथ्या फंसाएगी ।

16. उपर्युक्त बातों के आधार पर, सपत्तर सिंह (अभि. सा. 8) के साक्ष्य और मृत्युकालिक कथन का परिशीलन करने पर हमारा यह निष्कर्ष है कि दहेज की मांग की गई थी और मृत्यु के कुछ पूर्व मृतका को तंग किया गया था ।

17. दंड संहिता की धारा 304ख के प्रयोजन के लिए निम्न संघटकों के साबित किए जाने की उपधारणा की जा सकती है :–

(क) महिला की मृत्यु उसके विवाह के सात वर्ष के भीतर हुई है ।

(ख) ऐसी मृत्यु सामान्य परिस्थितियों में नहीं हुई है ।

(ग) महिला के साथ उसके पति या पति के नातेदारों द्वारा क्रूरता की गई है या उसे तंग किया गया है; और

(घ) दहेज की मांग के लिए या उसके संबंध में ऐसी क्रूरता की

गई है या तंग किया गया है ।

(ङ) मृत्यु के कुछ पूर्व ऐसी क्रूरता की गई है या तंग किया गया ।

18. भारतीय दंड संहिता, 1860 की सारभूत धारा 304ख और भारतीय साक्ष्य अधिनियम, 1872 की धारा 113ख में प्रयोग की गई "उसकी मृत्यु के कुछ पूर्व" अभिव्यक्ति पर इस न्यायालय द्वारा **हीरालाल और अन्य** बनाम **राज्य (राष्ट्रीय राजधानी राज्य क्षेत्र दिल्ली सरकार)**[1] वाले मामले में विचार किया गया है जो निम्न प्रकार है :–

"8. धारा 304ख जो दहेज मृत्यु के संबंध में है, निम्न प्रकार है –

'**304ख – दहेज मृत्यु** – (1) जहां किसी स्त्री की मृत्यु किसी दाह या शारीरिक क्षति द्वारा कारित की जाती है या उसके विवाह के सात वर्ष के भीतर सामान्य परिस्थितियों से अन्यथा हो जाती है और यह दर्शित किया जाता है कि उसकी मृत्यु के कुछ पूर्व उसके पति ने या उसके पति के किसी नातेदार ने, दहेज की किसी मांग के लिए, या उसके संबंध में, उसके साथ क्रूरता की थी या उसे तंग किया था वहां ऐसी मृत्यु को 'दहेज मृत्यु' कहा जाएगा और ऐसा पति या नातेदार उसकी मृत्यु कारित करने वाला समझा जाएगा ।

स्पष्टीकरण – इस उपधारा के प्रयोजन के लिए 'दहेज' का वही अर्थ है जो दहेज प्रतिषेध अधिनियम, 1961 (1961 का 28) की धारा 2 में है ।

(2) जो कोई दहेज मृत्यु कारित करेगा वह कारावास से, जिसकी अवधि सात वर्ष से कम की नहीं होगी किंतु जो आजीवन कारावास तक की हो सकेगी, दंडित किया जाएगा ।'

इस धारा के उपबंध वहां लागू होंगे जहां किसी स्त्री की मृत्यु दाह या शारीरिक क्षति या उसके विवाह के सात वर्ष के भीतर सामान्य परिस्थितियों से अन्यथा हो जाती है और यह दर्शित किया जाता है कि उसकी मृत्यु के कुछ पूर्व उसके पति ने या उसके पति के किसी नातेदार ने दहेज की किसी मांग के लिए या उसके संबंध में उसके

---

[1] (2003) 8 एस. सी. सी. 80.

साथ क्रूरता की थी या उसे तंग किया था । दंड संहिता की धारा 304ख के लागू किए जाने के लिए आवश्यक संघटक निम्न हैं –

(i) स्त्री की मृत्यु किसी दाह या शारीरिक क्षति द्वारा या सामान्य परिस्थितियों से अन्यथा कारित की जानी चाहिए,

(ii) ऐसी मृत्यु उसके विवाह के सात वर्ष के भीतर होनी चाहिए,

(iii) उसके पति या उसके पति के किसी नातेदार द्वारा उसके साथ क्रूरता की गई हो या उसे तंग किया गया हो,

(iv) उसके साथ की गई ऐसी क्रूरता या उसे इस प्रकार तंग किया जाना दहेज की मांग के लिए या उसके संबंध में हो,

(v) यह दर्शित किया गया हो कि स्त्री की मृत्यु के कुछ पूर्व उसके साथ ऐसी क्रूरता की गई है या उसे तंग किया गया है ।

भारतीय साक्ष्य अधिनियम, 1872 की धारा 113ख भी वर्तमान मामले में सुसंगत है । जैसाकि पहले ही विचार किया गया है कि दंड संहिता की धारा 304ख और साक्ष्य अधिनियम की धारा 113ख दोनों ही दहेज प्रतिषेध (संशोधन) अधिनियम, 1986 (1986 का 43) में निगमित किए गए हैं ताकि दहेज मृत्यु की बढ़ती हुई बुराई से निपटा जा सके । धारा 113ख निम्न प्रकार है –

'**धारा 113ख – दहेज मृत्यु के बारे में उपधारणा** – जब प्रश्न यह है कि किसी व्यक्ति ने किसी स्त्री की दहेज मृत्यु की है और यह दर्शित किया जाता है कि मृत्यु के कुछ पूर्व ऐसे व्यक्ति ने दहेज की किसी मांग के लिए, या उसके संबंध में उस स्त्री के साथ क्रूरता की थी या उसको तंग किया गया था तो न्यायालय यह उपधारणा करेगा कि ऐसे व्यक्ति ने दहेज मृत्यु कारित की थी ।

स्पष्टीकरण – इस धारा के प्रयोजन के लिए 'दहेज मृत्यु' का वही अर्थ है जो भारतीय दंड संहिता (1860 का 45) की धारा 304ख में है ।'

भारतीय विधि आयोग ने तारीख 10 अगस्त, 1988 की अपनी 21वीं रिपोर्ट में 'दहेज मृत्यु और विधि सुधार' पर व्यापक रूप से दोनों उपबंधों के निगमित किए जाने के संबंध में विश्लेषण किया है । पूर्व-

विद्यमान विधि में आने वाली रुकावटों को दृष्टिगत करते हुए दहेज से संबंधित मृत्यु को साबित करने के लिए साक्ष्य जुटाने में विधान-मंडल ने कतिपय संघटकों के साबित किए जाने के आधार पर दहेज मृत्यु की उपधारणा से संबंधित ऐसे उपबंध को निगमित करना उचित समझा है । इस पृष्ठभूमि को दृष्टिगत करते हुए साक्ष्य अधिनियम में उपधारणात्मक धारा 113ख निगमित की गई है । दंड संहिता की धारा 304ख में 'दहेज मृत्यु' की परिभाषा और साक्ष्य अधिनियम की उपधारणात्मक धारा 113ख की भाषा के अनुसार आवश्यक संघटकों में एक संघटक यह है कि संबंधित स्त्री के साथ उसकी 'मृत्यु के कुछ पूर्व' 'दहेज की मांग के लिए या उसके संबंध में' उसके साथ क्रूरता की गई हो या उसे तंग किया गया हो । धारा 113ख के अधीन उपधारणा विधि की उपधारणा है । इस धारा में उल्लिखित संघटकों को साबित किए जाने पर, न्यायालय के लिए यह आवश्यक हो जाता है कि वह यह उपधारित करे कि अभियुक्त ने दहेज मृत्यु कारित की है । यह उपधारणा निम्न संघटकों के साबित किए जाने पर ही की जा सकती है –

(1) न्यायालय के समक्ष इस प्रश्न पर विचार किया जाना चाहिए कि क्या अभियुक्त ने स्त्री की दहेज मृत्यु कारित की है । (इसका यह अर्थ हुआ कि उपधारणा केवल तब की जा सकती है जब अभियुक्त का विचारण दंड संहिता की धारा 304ख के अधीन अपराध के लिए किया जा रहा है ।)

(2) स्त्री के पति या उसके नातेदारों द्वारा उसके साथ क्रूरता की गई हो या उसे तंग किया गया हो ।

(3) दहेज की मांग के लिए या उसके संबंध में ऐसी क्रूरता की गई हो या तंग किया गया हो ।

(4) स्त्री की 'मृत्यु के कुछ पूर्व' उसके साथ क्रूरता की गई हो या उसे तंग किया गया हो ।"

19. वर्तमान मामले में यह विवादित नहीं है कि विवाह तारीख 20 जून, 1995 को हुआ था । अभियुक्त प्रदीप कुमार की पत्नी मंजू तारीख 1 मार्च, 1996 को आग में जलाई गई और तारीख 12 मार्च, 1996 को उसके विवाह के 9 मास के भीतर ही उसकी मृत्यु हो गई । मंजू की मृत्यु दाह क्षतियों के कारण अर्थात् सामान्य परिस्थितियों से अन्यथा हुई है । यह

पहले ही विचार किया जा चुका है कि दहेज की मांग को लेकर उसकी मृत्यु के कुछ पूर्व उसके साथ क्रूरता की गई थी और उसे तंग किया गया था । अभियोजन पक्ष द्वारा पांचों संघटक साबित किए गए हैं । साक्ष्य अधिनियम की धारा 113ख के अधीन जब यह प्रश्न उठाया गया है कि क्या किसी व्यक्ति ने दहेज मृत्यु कारित की है और यह साबित हो जाता है कि स्त्री की मृत्यु उसके विवाह के सात वर्ष के भीतर हुई है और यह मृत्यु सामान्य परिस्थितियों से अन्यथा हुई है तथा इस मृत्यु के कुछ पूर्व दहेज की मांग के लिए या उसके संबंध में उस व्यक्ति द्वारा स्त्री के साथ क्रूरता की गई है या उसे तंग किया गया है, तब ऐसी स्थिति में न्यायालय यह उपधारणा करेगा कि ऐसे व्यक्ति ने दहेज मृत्यु कारित की है । अभियोजन पक्ष द्वारा सफलतापूर्वक दहेज मृत्यु साबित किए जाने के पश्चात् विचारण न्यायालय तथा उच्च न्यायालय ने अभियुक्त प्रदीप कुमार को दंड संहिता की धारा 304ख के अधीन अपराध का दोषी ठीक ही अभिनिर्धारित किया है ।

20. दंड संहिता की धारा 498क निम्न प्रकार है :–

"**498क – किसी स्त्री के पति या पति के नातेदार द्वारा उसके प्रति क्रूरता करना** – जो कोई, किसी स्त्री का पति या पति का नातेदार होते हुए, ऐसी स्त्री के प्रति क्रूरता करेगा, वह कारावास से, जिसकी अवधि तीन वर्ष तक की हो सकेगी, दंडित किया जाएगा और जुर्माने से भी दंडनीय होगा ।

स्पष्टीकरण – इस धारा के प्रयोजन के लिए, 'क्रूरता' से निम्नलिखित अभिप्रेत है –

(क) जानबूझकर किया गया कोई आचरण जो ऐसी प्रकृति का है जिससे उस स्त्री को आत्महत्या करने के लिए प्रेरित करने की या उस स्त्री के जीवन, अंग या स्वास्थ्य को (जो चाहे मानसिक हो या शारीरिक) गंभीर क्षति या खतरा कारित करने के लिए उसे करने की संभावना है ; या

(ख) किसी स्त्री को तंग करना, जहां उसे या उससे संबंधित किसी व्यक्ति को किसी संपत्ति या मूल्यवान प्रतिभूति के लिए किसी विधिविरुद्ध मांग को पूरी करने के लिए प्रपीड़ित करने की दृष्टि से या उसके अथवा उससे संबंधित किसी व्यक्ति की ऐसे मांग पूरी करने में असफल रहने के कारण इस प्रकार तंग किया जा रहा है ।"

21. वर्तमान मामले में, सूबेदार सपत्तर सिंह (अभि. सा. 8) के साक्ष्य और मृत्युकालिक कथन के आधार पर स्पष्ट रूप से यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि विचारण न्यायालय और उच्च न्यायालय ने यह ठीक ही अभिनिर्धारित किया है कि अभियुक्त प्रदीप कुमार ने मंजू को दंड संहिता की धारा 498क के स्पष्टीकरण के खंड-ख में यथा परिभाषित रूप में तंग किया है ।

22. उपरोक्त मताभिव्यक्तियों और निष्कर्षों को दृष्टिगत करते हुए, हमारा यह मत है कि आक्षेपित निर्णय में हस्तक्षेप करने के लिए कोई आधार नहीं है । यह अपील किसी भी गुणता के न होने के कारण खारिज की जाती है । जमानत पत्र रद्द किए जाते हैं । दंडादेश का शेष भाग भोगने के लिए अपीलार्थी को तत्काल अभिरक्षा में लिए जाने का निदेश दिया जाता है ।

अपील खारिज की गई ।

अस./अनू.

[2014] 4 उम. नि. प. 79

सूर्यकांत दादासाहेब बिताले

बनाम

दिलीप बजरंग काले और एक अन्य

2 जुलाई, 2014

न्यायमूर्ति सुधांशु ज्योति मुखोपाध्याय और न्यायमूर्ति आर. के अग्रवाल

दंड संहिता, 1860 (1860 का 45) – धारा 302 और 498क [सपठित भारतीय साक्ष्य अधिनियम, 1872 की धारा 32] – हत्या और क्रूरता – पति द्वारा आग में जलाकर पत्नी की हत्या किया जाना – मृत्युकालिक कथन की विश्वसनीयता – कथनों में असंगतता – एक से अधिक मृत्युकालिक कथन दिए जाने पर सभी कथनों पर विचार किया जाना चाहिए और यदि उनमें भिन्न-भिन्न बातों का उल्लेख किया गया है और वे एक दूसरे के साथ असंगत है जिसके बाबत अभियोजन पक्ष ने स्पष्टीकरण नहीं दिया है, ऐसी असंगतता के आधार पर की गई दोषमुक्ति न्यायोचित होगी ।

इस मामले में मृतका का विवाह अभियुक्त-अपीलार्थी के साथ हुआ था । अभियुक्त ने मृतका की अभिकथित रूप से आग में जलाकर हत्या कर दी अभियुक्त को गिरफ्तार किया गया और सेशन न्यायालय में उसका विचारण किया गया । विचारण न्यायालय ने मृतका के तीनों मृत्युकालिक कथनों पर विचार किया और उन्हें विश्वसनीय न पाते हुए अपीलार्थी को दंड संहिता की धारा 498क और धारा 302 के अधीन अपराध से दोषमुक्त कर दिया । इस आदत से व्यथित होकर अभियुक्त-अपीलार्थी के विरुद्ध उच्च न्यायालय के समक्ष पुनरीक्षण आवेदन फाइल किया गया । उच्च न्यायालय ने मृत्युकालिक कथनों पर विचारण न्यायालय द्वारा पुनः विचार किए जाने के लिए मामले को विचारण न्यायालय को वापस भेज दिया । उच्च न्यायालय के इस आदेश से व्यथित होकर अभियुक्त-अपीलार्थी ने उच्चतम न्यायालय के समक्ष उच्च न्यायालय के आक्षेपित निर्णय के विरुद्ध अपील फाइल की । उच्चतम न्यायालय ने आक्षेपित निर्णय को अपास्त करते हुए विचारण न्यायालय के दोषमुक्ति के निर्णय की पुष्टि की और अपीलार्थी की अपील मंजूर की । अपील मंजूर करते हुए,

अभिनिर्धारित – वर्तमान मामले में सेशन न्यायालय ने ऐसे किसी भी साक्ष्य को खारिज नहीं किया है जो स्वीकार्य हो । दोनों मृत्युकालिक कथनों पर समुचित रूप से विचार किया गया है । जैसाकि सेशन न्यायाधीश द्वारा की गई चर्चा और ऊपर उल्लिखित बातों से स्पष्ट है, सेशन न्यायालय द्वारा महत्वपूर्ण साक्ष्य को अनदेखा नहीं किया गया है । इन परिस्थितियों में उच्च न्यायालय ने दोषमुक्ति के आदेश के विरुद्ध किए गए पुनरीक्षण आवेदन में हस्तक्षेप करके न्यायोचित नहीं किया है । वर्तमान मामले में, वास्तव में तीन मृत्युकालिक कथन किए गए हैं । पहला कथन 14 जुलाई, 2003 को कार्यपालक मजिस्ट्रेट के समक्ष, दूसरा कथन तारीख 15 जुलाई, 2003 को मृतका अर्चना के पिता अर्थात् शिकायतकर्ता दिलीप (अभि. सा. 5) के समक्ष और तीसरा मृत्युकालिक कथन तारीख 16 जुलाई, 2003 को कार्यपालक मजिस्ट्रेट के समक्ष किया गया है । मृतका के पिता दिलीप (अभि. सा. 5) ने तारीख 16 जुलाई, 2003 की अपनी प्रथम इत्तिला रिपोर्ट में यह उल्लेख नहीं किया था कि उसकी पुत्री अर्चना ने यह कथन किया है कि अभियुक्त तारीख 14 जुलाई, 2003 को उसके साथ दूसरी बार संभोग करने को कहा था और जब अर्चना ने इनकार कर दिया तब अभियुक्त ने उस पर मिट्टी का तेल छिड़ककर आग लगा दी । अभियोजन पक्ष यह स्पष्ट नहीं कर सका है कि द्वितीय मृत्युकालिक कथन तारीख 16 जुलाई, 2003 को क्यों लिया गया था, यद्यपि उक्त मृत्युकालिक कथन में

मृतका अर्चना ने यह उल्लेख किया है कि उससे द्वितीय मृत्युकालिक कथन देने को नहीं कहा गया है । सेशन न्यायाधीश द्वारा इन सभी पहलुओं पर विचार किया गया है और उन्होंने अपीलार्थी को दोषमुक्त किया है । वर्तमान मामले में, सेशन न्यायाधीश द्वारा व्यक्त किया गया मत न तो अयुक्तियुक्त है और न ही अनुचित है । अभिलेख पर प्रस्तुत साक्ष्य के आधार पर संभव युक्तियुक्त दृष्टिकोण अपनाया गया है । इन परिस्थितियों में उच्च न्यायालय ने दोषमुक्ति के आदेश को अपास्त करके न्यायोचित नहीं किया है । (पैरा 20, 22 और 23)

निर्दिष्ट निर्णय

		पैरा
[2005]	(2005) 9 एस. सी. सी. 769 : **पंजाब राज्य** बनाम **प्रवीण कुमार** ;	21
[2001]	(2001) 2 एस. सी. सी. 492 : **उका राम** बनाम **राजस्थान राज्य** ;	17
[1973]	ए. आई. आर. 1973 एस. सी. 2145 = (1973) 2 एस. सी. सी. 583 : **अकालू अहीर और अन्य** बनाम **रामदेव राम** ;	19
[1962]	ए. आई. आर. 1962 एस. सी. 1788 : **के. चिन्नास्वामी** बनाम **आंध्र प्रदेश राज्य** ।	18

अपीली (दांडिक) अधिकारिता : 2009 की दांडिक अपील सं. 1708.

2004 की दांडिक पुनरीक्षण आवेदन संख्या 321 में मुंबई उच्च न्यायालय के तारीख 18 अक्तूबर, 2007 के निर्णय और आदेश के विरुद्ध अपील ।

अपीलार्थियों की ओर से सुश्री दिव्या शर्मा और श्री शिवाजी एम. जाधव

प्रत्यर्थियों की ओर से सर्वश्री विनय नवारे, सत्यजीत, केशव रंजन और (सुश्री) आभा आर. शर्मा

न्यायालय का निर्णय न्यायमूर्ति सुधांशु ज्योति मुखोपाध्याय ने दिया ।

न्या. मुखोपाध्याय – यह अपील 2004 के दांडिक पुनरीक्षण आवेदन सं. 321 में मुंबई उच्च न्यायालय द्वारा पारित किए गए तारीख 18 अक्तूबर,

2007 के निर्णय और आदेश के विरुद्ध फाइल की गई है । उच्च न्यायालय ने आक्षेपित निर्णय द्वारा 2004 के सेशन विचारण मामला सं. 4 में सेशन न्यायाधीश, सतारा द्वारा पारित किए गए तारीख 29 मई, 2004 के उस निर्णय को अपास्त किया है जिसके द्वारा सेशन न्यायाधीश ने अपीलार्थी-अभियुक्त को भारतीय दंड संहिता, 1860 (संक्षेप में "दंड संहिता" कहा गया है) की धारा 498क और 302 के अधीन दंडनीय अपराध से दोषमुक्त किया था और उच्च न्यायालय ने मामले पर पुनः नए सिरे से सुनवाई किए जाने के लिए उसे सेशन न्यायालय को भेज दिया ।

2. तथ्यात्मक पृष्ठभूमि से यह पता चलता है कि मृतका अर्चना का विवाह तारीख 6 जून, 2003 को अपीलार्थी-अभियुक्त के साथ हुआ था । तारीख 8 जून, 2003 को सत्यनारायण पूजा का आयोजन किया गया । पारिवारिक रीति-रिवाज के अनुसार अर्चना तारीख 9 जून, 2003 को अपने मायके आ गई, इसके पश्चात् वह तारीख 11 जून, 2003 को अपने वैवाहिक गृह चली गई ।

3. तारीख 14 जुलाई, 2003 को मृतका अर्चना को उसके वैवाहिक गृह में 95 प्रतिशत दाह क्षतियां कारित हुईं । उसका पति अर्थात् अपीलार्थी-अभियुक्त सुसंगत समय पर घर पर मौजूद था । उसे सिविल अस्पताल, सतारा में भर्ती कराया गया जहां तारीख 14 जुलाई, 2003 को विशेष कार्यपालक मजिस्ट्रेट द्वारा उसका प्रथम मृत्युकालिक कथन अभिलिखित किया गया ।

4. तारीख 15 जुलाई, 2003 को अर्चना के मामा को यह संदेश मिला कि अर्चना को दाह क्षतियां कारित हुई हैं । वह अपनी पत्नी के साथ अर्चना से मिलने गया और उसने यह देखा कि अर्चना सिविल अस्पताल, सतारा में उपचाराधीन है ।

5. तारीख 16 जुलाई, 2003 को विशेष कार्यपालक मजिस्ट्रेट ने सिविल अस्पताल, सतारा में अर्चना का द्वितीय मृत्युकालिक कथन अभिलिखित किया ।

6. इसके पश्चात् मृतका अर्चना के पिता अर्थात् दिलीप बजरंग काले (संक्षेप में "दिलीप" कहा गया है) ने अपीलार्थी-अभियुक्त के विरुद्ध तारीख 16 जुलाई, 2003 को पुलिस थाना, पूसेगांव, जिला सतारा में प्रथम इत्तिला रिपोर्ट दर्ज कराई जिसमें यह अभिकथन किया गया कि अभियुक्त ने अर्चना को मानसिक और शारीरिक रूप से तंग किया है, चूंकि दहेज की मांग पूरी नहीं की गई थी इसलिए परिणामस्वरूप अर्चना को आग में

जलाया गया ।

7. तारीख 17 जुलाई, 2003 को सिविल अस्पताल, सतारा में मृतका के शव का पंचनामा तैयार किया गया और शव को शवपरीक्षण के लिए भेज दिया गया । शवपरीक्षण रिपोर्ट से यह पता चलता है कि 90% ऊपरी और गहरी दाह क्षतियों के कारण मृतका की मृत्यु हुई है ।

8. अभियुक्त-अपीलार्थी को गिरफ्तार किया गया और आरंभ में तो उसे दंड संहिता की धारा 498क और 307 के अधीन आरोपित किया गया किंतु अर्चना की मृत्यु के पश्चात् उसे दंड संहिता की धारा 302 और 498क के अधीन दंडनीय अपराध के लिए आरोपित किया गया ।

9. अन्वेषण पूरा होने के पश्चात् मामले को सेशन न्यायालय, सतारा के सुपुर्द कर दिया गया । अभियोजन पक्ष ने अनेक साक्षी और दस्तावेजी साक्ष्य प्रस्तुत किए ।

10. सेशन न्यायालय ने दंड संहिता की धारा 302 और 498क के अधीन दंडनीय अपराधों के लिए अभियुक्त का विचारण किया और साक्ष्य अभिलिखित करने तथा पक्षकारों द्वारा दी गई दलीलों का मूल्यांकन करने के पश्चात् अपीलार्थी-अभियुक्त को अभिकथित अपराधों से दोषमुक्त कर दिया ।

11. सेशन न्यायाधीश द्वारा पारित किए गए तारीख 29 मई, 2004 के दोषमुक्ति के उपर्युक्त आदेश से व्यथित होकर शिकायतकर्ता दिलीप अर्थात् मृतका के पिता ने दोषमुक्ति के आदेश की विधिमान्यता और वैधता को चुनौती देने के लिए दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 397 के अधीन उच्च न्यायालय की पुनरीक्षण अधिकारिता का अवलंब लिया है । उच्च न्यायालय ने पुनरीक्षण अधिकारिता के अधीन यह स्वीकार किया है कि साक्ष्य का मूल्यांकन पुनरीक्षण न्यायालय की अधिकारिता के भीतर नहीं किया गया है और मृत्युकालिक कथन का पुनः मूल्यांकन करते हुए निम्न मत व्यक्त किया है :–

> "23. अब मैं मृत्युकालिक कथन से संबंधित विधि और उसके महत्व का सर्वेक्षण करने पर, अभिलेख पर उपलब्ध मृत्युकालिक कथन पर विचार करूंगा ।
>
> 24. मृतका ने तारीख 14 जुलाई, 2003 के अपने प्रथम मृत्युकालिक कथन में यह उल्लेख किया है कि तारीख 7 जुलाई,

2003 अर्थात् घटना के दिन लगभग 3.30 बजे अपराह्न में जब वह रसोई में स्टोव पर खाना बना रही थी तब उसकी साड़ी के पल्लू में आग लग गई जिसे उसने बुझाने का प्रयास किया और परिणामस्वरूप उसे क्षतियां पहुंचीं । उसका पति जो कि बराबर वाले कमरे में था, आग बुझाने के लिए बिस्तर पर बिछाने वाली चादर और बिस्तर का खोल लाया । उसके पति को भी दाह क्षतियां पहुंचीं ।

25. तारीख 16 जुलाई, 2003 को अभिलिखित द्वितीय मृत्युकालिक कथन में अर्चना ने यह उल्लेख किया है कि उसने प्रथम मृत्युकालिक कथन दबाव में आकर दिया था और वह यही कहती रही कि उसने पति को अपने साथ दोबारा संभोग करने से मना कर दिया था इस पर उसका पति (अभियुक्त) नाराज हो गया और उसने क्रोध में आकर मृतका के शरीर पर मिट्टी का तेल उड़ेल दिया और माचिस से आग लगा दी । मृतका ने यह भी कथन किया है कि उसके पति ने आग बुझाने का प्रयास नहीं किया था ।

26. विद्वान् सेशन न्यायाधीश से यह प्रत्याशा की जाती है कि वह अभिलेख पर प्रस्तुत उपर्युक्त दोनों मृत्युकालिक कथनों का मूल्यांकन करे और पता लगाए कि कौन सा मृत्युकालिक कथन विश्वसनीय है । सेशन न्यायाधीश उनमें से किसी भी मृत्युकालिक कथन का मूल्यांकन करने और उसे स्वीकार करने या दोनों कथनों को खारिज करने के लिए स्वतंत्र है । लेकिन वह इस बात के लिए स्वतंत्र नहीं है कि वह किसी भी मृत्युकालिक कथन का मूल्यांकन न करे और ऐसे महत्वपूर्ण साक्ष्य को गणना में न ले या उसे अनदेखा करे ।

27. घटनास्थल पर तैयार किए गए पंचनामे से यह उपदर्शित होता है कि गैस सिलेंडर खाली था ; जबकि रासायनिक परीक्षक की रिपोर्ट से यह दर्शित होता है कि मिट्टी के तेल के अवक्षेप कपड़ों पर पाए गए थे जिन्हें अभियुक्त और मृतका के कपड़ों सहित अभिगृहीत कर लिया गया था । रसोई से प्राप्त की गई मिट्टी में भी मिट्टी के तेल के अंश पाए गए हैं और यह कि उसके पति (अभियुक्त) को भी दाह क्षतियां पहुंची हैं ।"

इस मताभिव्यक्ति को दृष्टिगत करते हुए उच्च न्यायालय ने मामले पर नए सिरे से विचार किए जाने के लिए उसे सेशन न्यायालय को वापस भेज

दिया ।

12. अपीलार्थी के विद्वान् काउंसेल ने इस आधार पर निर्णय का खंडन किया है कि दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 की धारा 378 के अधीन दोषमुक्ति के विरुद्ध अपील न किए जाने पर उच्च न्यायालय दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 397 के अधीन मृत्युकालिक कथन जैसे साक्ष्य का पुनः मूल्यांकन करने के लिए स्वतंत्र नहीं है । यह भी दलील दी गई है कि सेशन न्यायाधीश ने मृतका के मृत्युकालिक कथनों का सूक्ष्मता से मूल्यांकन किया है और इसके पश्चात् यह निष्कर्ष निकाला है कि अपीलार्थी उस पर अधिरोपित अपराध का दोषी नहीं है । जब दो मत संभव हों तब उच्च न्यायालय को दोषमुक्ति के आदेश में हस्तक्षेप नहीं करना चाहिए ।

13. दलीलों पर विचार करने के लिए मृतका अर्चना द्वारा दिए गए दोनों मृत्युकालिक कथनों को, जिन्हें विशेष कार्यपालक मजिस्ट्रेट द्वारा क्रमशः तारीख 14 जुलाई, 2003 और तारीख 16 जुलाई, 2003 को अभिलिखित किया गया था, निर्दिष्ट करना वांछनीय होगा ।

14. तारीख 14 जुलाई, 2003 का मृत्युकालिक कथन निम्न प्रकार है :–

कथन

तारीख : 14 जुलाई, 2003

मैं अर्चना सूर्यकांत बिताले, आयु 22 वर्ष, निवासी गरवाडी तालुका खाटव, जिला सतारा हूं ।

पूछे जाने पर वार्ड सं. 27 में अपना कथन इस प्रकार दे रही हूं कि मैं अपने श्वसुर ताई बडासो बिताले के साथ उपर्युक्त पते पर रहती हूं । मेरा पति सूर्यकांत बडासो बिताले न्हावा शेवा परियोजना मुंबई में मोथाडी श्रमिक के रूप में काम करता है और मेरा विवाह मेरी इच्छानुसार और मेरे मायके वालों की सहमति से हुआ है । मेरा विवाह तारीख 6 जून, 2003 को हुआ था । मैं अपने विवाह के समय से अपने पति के घर पर रहती हूं । मैंने 12वीं कक्षा तक पढ़ाई की है और मेरा विवाह कालेवाडी अर्थात् मेरे मायके में हुआ था ।

आज तारीख 14 जुलाई, 2003 को मैं लगभग 3.30 बजे अपराह्न में गैस स्टोव पर खाना बना रही थी और मेरा पति दूसरे कमरे में सो रहा था । खाना बनाते समय मेरी साड़ी अचानक गैस

स्टोव पर गिर गई और उसमें आग लग गई । मैंने आग बुझाने का प्रयास किया किंतु आग नहीं बुझी और चूंकि मैं आग में जल रही थी इसलिए मैं चिल्लाती हुई किचन से बाहर आई । मेरे पति और पड़ोसियों ने बिस्तर की चादर और उसके खोल से आग बुझाई । मेरे पति को भी आग बुझाते समय दाह क्षतियां पहुंचीं । मेरी दोनों टांगों, छाती, पीठ, उदर, गर्दन पर दाह क्षतियां पहुंची हैं और इन क्षतियों में दर्द हो रहा है । मुझे अपने ग्राम से जीप द्वारा प्राथमिक स्वास्थ्य केंद्र, डिस्कल लाया गया था और वहां से सिविल अस्पताल, सतारा लाया गया है । यहां मेरा उपचार किया जा रहा है ।

अतः तारीख 14 जुलाई, 2003 को लगभग 3.30 बजे अपराह्न में मेरे पति को मुंबई जाना था और जब मैं लगभग 3.30 बजे अपराह्न में खाना बना रही थी, तब मेरी साड़ी में आग लग गई और मैं जल गई । घटना के समय, मैं और मेरे पति घर पर थे और मेरे श्वसुर खेत पर गए हुए थे और किसी भी व्यक्ति ने मुझे आग में नहीं जलाया है । मेरी साड़ी गैस स्टोव पर गिर गई थी और इसीलिए मैं जल गई, मुझे किसी से भी कोई शिकायत नहीं है ।

उपर्युक्त कथन मेरे बताए अनुसार ठीक-ठीक लिखा गया है और मैंने इस पर हस्ताक्षर किए हैं ।

उपर्युक्त कथन 4.00 बजे अपराह्न में लिखना आरंभ किया गया था और 6.30 बजे अपराह्न में लिखकर पूरा किया गया है ।

14.7.2003
ह./-
सहायक पुलिस उप निरीक्षक
सतारा सिटी पुलिस अस्पताल ।

15. इसके प्रतिकूल तारीख 16 जुलाई, 2003 का मृत्युकालिक कथन निम्न रूप में अभिलिखित किया गया है :–

तारीख 16 जुलाई, 2003 का मृत्युकालिक कथन

"मैं, अर्चना सूर्यकांत बिताले पुनः कथन करते हुए निम्न प्रश्नों का उत्तर दे रही हूं –

1. पूरा नाम : अर्चना सूर्यकांत

2.	आयु	:	22 वर्ष
3.	व्यवसाय	:	घरेलू कामकाज
4.	निवास	:	गरवाडी तालुका खाटव
5.	जलने का कारण	:	द्वितीय अवसर पर संभोग करने से इनकार कर देने पर मेरे पति सूर्यकांत दादासाहेब बिताले ने मेरे ऊपर मिट्टी का तेल उड़ेला और मुझ में आग लगा दी ।
6.	किसके साथ लड़ाई हुई ?	:	मकान में किसी भी व्यक्ति से लड़ाई नहीं हुई ।
7.	क्या पति या ससुराल वालों ने दहेज की कोई भी मांग की थी ?	:	नहीं ।
8.	विवाह हुए कितने वर्ष हुए हैं ?	:	तारीख 6 जून, 2003 को विवाह हुआ था ।
9.	क्या यह द्वितीय कथन किसी व्यक्ति के कहने पर अभिलिखित किया जा रहा है ?	:	किसी भी व्यक्ति ने मुझ से कथन देने को नहीं कहा है ।
10.	तारीख 14 जुलाई, 2003 को अभिलिखित किए गए कथन में आपने वह जानकारी क्यों नहीं दी थी जो अब द्वितीय कथन में दी है ?	:	तारीख 14 जुलाई, 2003 का कथन दबाव में अभिलिखित किया गया था, इसलिए मैं यह बात नहीं बता सकी थी । तथापि, अब मेरा संताप बढ़ गया है इसलिए मैं नए सिरे से कथन दे रही हूं ।

मेरे पति सूर्यकांत दादासाहेब बिताले ने मिट्टी के तेल के डिब्बे से घर में मेरे ऊपर तेल डाला और माचिस से आग लगाई है । उस

समय घर में कोई नहीं था । मुझ में आग लगाने के पश्चात् मेरा पति बिस्तर पर जाकर लेट गया । आग में जलने पर मैं जोर-जोर से चिल्लाने लगी थी । तथापि, आग बुझाने के लिए पड़ोस के घर से कोई आया जिसका नाम मुझे मालूम नहीं है । तथापि, उसने मेरे पति को देखा और बिना कुछ किए वापस चला गया । मेरे पति ने आग बुझाने का प्रयास नहीं किया । घटना के दिन मेरे पति और ग्राम के अन्य व्यक्तियों ने मुझे सिविल अस्पताल में 3.30 बजे अपराह्न में भर्ती कराया । मेरा यह अभियोग है कि मेरे पति ने मुझे आग में जलाया है । मुझे अपनी सास, श्वसुर, देवर जो हमारे मकान में रहते हैं, के विरुद्ध कोई भी अभिकथन नहीं करना है और मुझे उनसे कोई भी शिकायत नहीं है । मेरे पति को कड़ा दंड दिया जाना चाहिए । मेरा कथन अभिलिखित किए जाने के समय पर कोई भी पुलिस अधिकारी या मेरा कोई भी नातेदार मौजूद नहीं है और न ही मैं किसी के दबाव में यह कथन दे रही हूं । तारीख 16 जुलाई, 2003 को मेरा कथन 12.40 बजे अपराह्न से लेकर 1.10 बजे अपराह्न तक अभिलिखित किया गया है । मेरा कथन मुझे पढ़कर सुनाया गया है जिसकी अंतर्वस्तु ठीक है ।

तदनुसार कथन अभिलिखित किया गया है ।

तारीख 16 जुलाई, 2003

ह./-
विशेष कार्यपालक मजिस्ट्रेट, सतारा
अर्चना सूर्यकांत बिताले के अंगूठे का निशान ।"

16. 2004 के सेशन मामला सं. 4 में सेशन न्यायाधीश द्वारा पारित किए गए तारीख 29 मई, 2004 के निर्णय से हम इस निष्कर्ष पर पहुंचे हैं कि सेशन न्यायाधीश ने न केवल तारीख 14 जुलाई, 2003 और 16 जुलाई, 2003 के मृत्युकालिक कथनों पर विचार किया है अपितु इस पर भी ध्यान दिया है कि मृतका अर्चना ने तारीख 15 जुलाई, 2003 को अर्थात् 16 जुलाई, 2003 को प्रथम इत्तिला रिपोर्ट दर्ज किए जाने के एक दिन पूर्व अपने पिता अर्थात् शिकायतकर्ता दिलीप (अभि. सा. 5) को कथन दिया था ।

17. इस पर कार्यवाही करते समय सेशन न्यायाधीश ने निम्न मत व्यक्त किया है :–

"10. ..... अतः, संवीक्षा किए जाने के लिए तारीख 16 जुलाई, 2003 को पुसालकर द्वारा अभिलिखित मृत्युकालिक कथन शेष रहता है ।

11. पुसालकर द्वारा अभिलिखित मृत्युकालिक कथन पर विचार करने के पूर्व इस पर ध्यान देना ठीक और उचित होगा कि दिलीप ने अपने साक्ष्य में क्या कथन किया है ? इस साक्षी के अनुसार तारीख 15 जुलाई, 2003 को सिविल अस्पताल, सतारा आने के पश्चात् उसने अर्चना से यह मामलू नहीं किया था कि उसे दाह क्षतियां कैसे पहुंची हैं । अर्चना ने स्वयमेव उसे यह बताया कि तारीख 14 जुलाई, 2003 को अभियुक्त उसके साथ दोबारा मैथुन करना चाहता था और जब मृतका ने इनकार किया तो अभियुक्त ने उसे आग में जला दिया । बिना यह जाने कि अर्चना ने पूर्व में क्या कथन किया है, उसके पिता का यह कहना है कि अर्चना ने स्वयं यह बताया था कि अभियुक्त ने उस पर यह दबाव डाला था कि वह दाह क्षतियों के बारे में यह बताए कि ये क्षतियां दुर्घटनात्मक रूप से कारित हुई हैं, इसी कारण यह साक्षी आवेदन फाइल करने के लिए उसी दिन पुलिस थाने चला गया था । इस साक्षी ने पुलिस से निवेदन किया कि वे अर्चना का कथन पुनः अभिलिखित करें । इस साक्षी ने अभियुक्त के विरुद्ध उस दिन पुलिस के समक्ष कोई भी शिकायत फाइल नहीं की । उसने तारीख 16 जुलाई, 2003 को शिकायत फाइल की और इसके संबंध में लगभग 1.00 बजे अपराह्न में रोजनामचे में प्रविष्टि की गई । 12.40 बजे अपराह्न से 1.00 बजे अपराह्न के बीच पुसालकर द्वारा मृत्युकालिक कथन अभिलिखित किया गया था । दिलीप द्वारा इस बात से इनकार किया गया है कि वह उस समय मौजूद था जब पुसालकर ने मृत्युकालिक कथन अभिलिखित किया था । तारीख 18 जुलाई, 2003 को पुलिस ने दिलीप का कथन अभिलिखित किया था । दिलीप ने इस बात से इनकार किया है कि उसने तारीख 16 जुलाई, 2003 को पुसालकर द्वारा मृत्युकालिक कथन अभिलिखित किए जाने के समय पर उसके मौजूद होने के संबंध में पुलिस को कथन दिया था । कथन (प्रदर्श 36) में आए विरोधाभास को इंगित किया गया है जिसमें इस साक्षी द्वारा यह कहा गया है कि उसके निवेदन किए जाने पर तारीख 16 जुलाई, 2003 को अर्चना का कथन पुनः अभिलिखित किया गया था और उसने उसकी मौजूदगी में

कथन दिया था । इसका यह अर्थ हुआ कि शिकायत फाइल किए जाने के समय पर वह इस तथ्य से अवगत था कि अर्चना ने अपने पश्चात्वर्ती मृत्युकालिक कथन में पुसालकर को क्या प्रकट किया था । तारीख 16 जुलाई, 2003 को दिलीप द्वारा फाइल की गई शिकायत (प्रदर्श 24) में कहीं भी यह कथन नहीं किया गया है कि अभियुक्त ने तारीख 14 जुलाई, 2003 को दोबारा मैथुन करना चाहा था और जब मृतका ने इससे इनकार किया तो उसने मृतका को आग में जला दिया । शिकायत में दिलीप द्वारा यह कथन किया गया है कि अर्चना, उसके साथ दुर्व्यवहार किए जाने के कारण, स्वयं आग में जली थी । इस प्रकार अर्चना को दाह क्षतियां पहुंचने के संबंध में स्वयं अभियोजन पक्ष ने दो कारण बताए हैं अर्थात् अर्चना ने स्वयं को आग में जलाकर आत्महत्या करने का प्रयास किया है या ऊपर उल्लिखित कारणों के आधार पर उसके पति द्वारा उसे दाह क्षतियां पहुंचाई गई हैं । यदि अर्चना ने अपने पिता को यह न बताया होता कि उसे ये क्षतियां किस प्रकार पहुंची हैं तब किसी को भी प्रथम इत्तिला रिपोर्ट में यह दिखाई नहीं पड़ता कि अर्चना द्वारा आत्महत्या करने का प्रयास किया गया है इसीलिए उसे दाह क्षतियां पहुंची हैं । दिलीप काले द्वारा उसकी उस समय की मनःस्थिति को स्पष्ट करने का प्रयास किया गया है जब उसने तारीख 16 जुलाई, 2003 को पुलिस के समक्ष शिकायत फाइल की थी । कोई भी विलंबित प्रक्रम पर दिए गए स्पष्टीकरण को महत्व नहीं दे सकता । स्वयं अभियोजन पक्ष का यह पक्षकथन है कि दिलीप को तारीख 14 जुलाई, 2003 को ही हनमन्त से यह पता चल गया था कि अभियुक्त ने आग में जलाया है । इसके पश्चात् अगले दिन वह अस्पताल गया जहां उसके अनुसार अर्चना ने उसे यह बताया कि अभियुक्त ने उसे आग में जलाया है । इस साक्षी ने तारीख 15 जुलाई, 2003 को ही अर्चना का मृत्युकालिक कथन अभिलिखित करने के लिए पुलिस से आग्रह किया था । इन परिस्थितियों में दिलीप द्वारा की गई शिकायत में अर्चना की मानव वध से हुई मृत्यु का लोप करना संशोधन की कोटि में आता है । शिकायत में विरोधाभासी वृत्तांत यह है कि मृतका को आत्महत्या का प्रयास करते समय दाह क्षतियां पहुंची थीं और यह वृत्तांत पूर्णतया असंगत तथ्य है । इस प्रकार स्वयं अभियोजन पक्ष ने दो संभाव्यताएं बताई हैं अर्थात् मृतका अर्चना की आत्महत्या से मृत्यु

हुई है या उसका मानव वध किया गया है । प्रश्न यह सामने आता है कि इस असंगतता का लाभ किसे मिलेगा । निश्चित है कि इसका लाभ अभियुक्त को ही मिलेगा, अभियोजन पक्ष को नहीं । अब हम पुसालकर द्वारा अभिलिखित मृत्युकालिक कथन पर विचार करेंगे ।

12. पुसालकर को इस तथ्य की जानकारी थी कि तारीख 14 जुलाई, 2003 को उसके साथी द्वारा पहले ही मृत्युकालिक कथन अभिलिखित किया जा चुका है । अतः उसने मृतका के पूर्ववर्ती मृत्युकालिक कथन को नहीं पढ़ा था । उसे अपने साथी मिर्जा से पता चला था कि अर्चना ने अपने कथन में यह उल्लेख किया है कि उसे उस समय दाह क्षतियां पहुंची थीं जब उसकी साड़ी गैस स्टोव के संपर्क में आ गई थी । इस साक्षी के अनुसार उसने अर्चना से यह प्रश्न नहीं किया था कि उसने इसके पूर्व क्या कथन किया है । जब इस संबंध में अर्चना से कोई भी प्रश्न नहीं किया, तब पुसालकर द्वारा रोजनामचे में अभिलिखित प्रविष्टि में प्रश्न सं. 9 का उल्लेख क्यों किया गया है ? मृतका से यह विशिष्ट प्रश्न पूछा जाना चाहिए था कि उसने उस समय अभियुक्त के कृत्य का उल्लेख अपने कथन में तारीख 14 जुलाई, 2003 को क्यों नहीं किया था जब अर्चना से सुझाव रूप में प्रश्न पूछा गया था, स्वाभाविकतः इसी उत्तर की प्रत्याशा की जा सकती है कि मृतका ने किसी कारणवश ऐसा कथन किया था । अब इस प्रश्न का यह उत्तर है कि उसके पति और उसके पति के चचेरे भाई ने उसे तारीख 14 जुलाई, 2003 को कथन देने के लिए विवश किया था । पुसालकर द्वारा अभिलिखित अर्चना का कथन नवें प्रश्न तक प्रश्नोत्तर के रूप में है । प्रश्न वस्तुनिष्ठ प्रकृति के हैं । प्रश्न सं. 5 इस संबंध में है कि क्या मृतका और अन्य व्यक्ति के बीच कोई झगड़ा हुआ था । इसका यह अर्थ हुआ कि पुसालकर का यह अनुमान था कि झगड़ा हुआ था । निःसंदेह इस प्रश्न का यह उत्तर है कि अर्चना को सुझाए गए प्रश्न के अनुसार कोई भी झगड़ा नहीं हुआ था । वास्तव में इस प्रश्न का संबंध किसी व्यक्ति की मृत्यु कारित किए जाने से नहीं है, अपितु मृतका से सांकेतिक प्रश्न के रूप में की गई एक प्रकार की पूछताछ से है । इस संबंध में अभिलेख पर यह उत्तर दिया गया है कि अर्चना ने किसी भी व्यक्ति के कहने पर कथन नहीं दिया था । यह बात मेरी समझ से बाहर है कि ऐसा प्रश्न पूछने के लिए पुसालकर के मन में

क्यों संदेह हुआ । इस प्रक्रम पर मैं यह दोहराते हुए इंगित कर रहा हूं कि आग बुझाने के लिए किसी एक व्यक्ति ने प्रयास किया था । वह व्यक्ति हनमंत है जिसने यह बात कही है । हनमंत ने हमारे समक्ष यह कथन किया है कि अर्चना ने उससे आग से बचाने की विनती की थी । यदि हनमंत वहां मौजूद होता तब अर्चना उसका नाम अवश्य प्रकट करती । मृत्युकालिक कथन में यह उल्लेख किया गया है कि एक व्यक्ति बाहर निकलकर आया था किंतु वह अभियुक्त को देखकर वापस चला गया । हनमंत का यह कहना नहीं है कि अर्चना ने अस्पताल में उसे यह बताया था कि अभियुक्त ने उसे इसलिए आग में जलाया है कि उसने अभियुक्त के साथ दोबारा संभोग करने से इनकार कर दिया था । हनमंत से स्पष्ट रूप से यह प्रश्न पूछा गया है कि क्या उसने दिलीप से यह कहा था कि वह पुलिस रोचनामचे में प्रविष्टि कराए । इस साक्षी द्वारा पुलिस के समक्ष उक्त कथन किया गया है किंतु उसने यह इनकार किया है कि उसने ऐसा कोई कथन किया है और इस मामले में परीक्षा किए गए अन्वेषक अधिकारी का साक्ष्य भी अभिलेख पर विरोधाभासी साक्ष्य के रूप में प्रस्तुत किया गया है । इस साक्षी द्वारा यह कथन किया गया है कि उसने दिलीप से कहा था कि वह पुलिस को सूचित कर दे कि अर्चना का पुनः कथन अभिलिखित किया जाए । अपनी मुख्य परीक्षा में पुसालकर द्वारा यह कथन नहीं किया गया है कि अर्चना का पिता उस समय मौजूद था जब उसने रोजनामचे में प्रविष्टि की थी । तथापि, रोजनामचे से हमारा यह निष्कर्ष है कि जब पुसालकर ने रोजनामचे में प्रविष्टि की थी तब अर्चना का कोई भी नातेदार मौजूद नहीं था । इन सभी तथ्यों से स्पष्ट रूप से यह अर्थ निकलता है कि अर्चना को विवश किए जाने के परिणामस्वरूप तारीख 16 जुलाई, 2003 को पुसालकर द्वारा रोजनामचे में प्रविष्टि की गई थी । पुसालकर द्वारा अर्चना से ऐसे प्रश्न पूछे गए हैं जिनका उत्तर "हां" या "नहीं" में प्रत्याशित है । इस पर संदेह है कि वास्तव में अर्चना कथन देने की हालत में थी या नहीं ।

13. पुसालकर ने अपने अभिसाक्ष्य के पैरा 4 में यह कथन किया है कि अर्चना का संपूर्ण शरीर जाल से आच्छादित था । उसने यह कथन किया है कि जब उसने अर्चना को देखा था तब उसे कोई भी अंतर्शिरा इंजेक्शन नहीं दिया जा रहा था । इसके पश्चात् उसने

यह कथन किया है कि अर्चना की हालत के संबंध में चिकित्सक द्वारा राय दिए जाने के पूर्व चिकित्सक ने अर्चना की नाड़ी की जांच की । उसने अर्चना के सीने की स्टेथोस्कोप से जांच की । डा. नलावाडे ने अपने अभिसाक्ष्य (प्रदर्श 31) में यह कथन किया है कि उसने अर्चना की नाड़ी की जांच नहीं की थी । उसने उसके रक्तदाब की भी जांच नहीं की थी । इसके पश्चात् चिकित्सक ने यह कथन किया है कि जब पुसालकर ने उसकी मौजूदगी में अर्चना का कथन अभिलिखित किया था तब उसे अंतर्शिरा इंजेक्शन दिया जा रहा था । तथापि, इस प्रकार डा. नलावाडे ने इस स्थिति को सामान्य रूप में लिया । रोजनामचे में पुसालकर द्वारा की गई प्रविष्टि अलंघनीय सोच प्रतीत होती है । प्रतिरक्षा पक्ष के विद्वान् अधिवक्ता श्री बी. डी. कदम ने उका राम **बनाम** राजस्थान राज्य, (2001) 2 एस. सी. सी. 492 वाले मामले में की गई मताभिव्यक्तियों को इंगित किया है जिनके अंतर्गत निम्न राय दी गई है –

> 'सदैव यह ध्यान में रखना चाहिए कि यद्यपि मृत्युकालिक कथन को बहुत महत्व दिया जाना चाहिए फिर भी यह उल्लेखनीय है कि चूंकि मृत्युकालिक कथन देने वाले व्यक्ति की प्रतिपरीक्षा नहीं की जा सकती इसलिए न्यायालय के लिए यह आवश्यक है कि वह इस बात पर ध्यान दे कि मृत्युकालिक कथन ऐसी प्रकृति का होना चाहिए कि कथन की शुद्धता को लेकर न्यायालय को पूर्ण रूप से विश्वास हो जाए । न्यायालय को ऐसी सभी संभाव्यताओं को नकारना चाहिए जिनसे यह पता चलता हो कि मृत्युकालिक कथन सिखाए-पढ़ाए जाने, उकसाए जाने या प्रतिशोध अथवा कल्पना का परिणाम है । मृत्युकालिक कथन का अवलंब लेने के पूर्व, न्यायालय का यह समाधान होना चाहिए कि कथन देने के लिए कथन दिए जाने के समय पर मृतक की मानसिक स्थिति ठीक थी । जब एक बार न्यायालय का यह समाधान हो जाता है कि मृत्युकालिक कथन सत्य है, स्वेच्छा से दिया गया है और किसी भी बाह्यीय प्रतिफल से प्रभावित नहीं है, तब इसके आधार पर किसी भी अतिरिक्त संपुष्टि के बिना दोषसिद्धि की जा सकती है क्योंकि संपुष्टि किए जाने का नियम विधि का नियम नहीं है अपितु केवल प्रज्ञा का नियम है ।'"

18. पुनरीक्षण अधिकारिता की व्यापकता पर इस न्यायालय द्वारा **के. चिन्नास्वामी** बनाम **आंध्र प्रदेश राज्य**[1] वाले मामले में विचार किया गया है और निम्न प्रकार अभिनिर्धारित किया गया है :–

> "यदि अपील न्यायालय गलत तरीके से स्वीकार्य साक्ष्य को खारिज कर देता है तब उच्च न्यायालय द्वारा पुनरीक्षण आवेदन में दोषमुक्ति के आदेश में हस्तक्षेप करना न्यायोचित होगा ताकि जिस साक्ष्य को अस्वीकार्य मानकर गलत तरीके से अनदेखा कर दिया गया था उस साक्ष्य का पुनःमूल्यांकन किया जा सके । किंतु उच्च न्यायालय को केवल साक्ष्य की स्वीकार्यता पर ही विचार करना चाहिए और इससे आगे नहीं जाना चाहिए और साक्ष्य का मूल्यांकन भी करना चाहिए ।"

19. **अकालू अहीर और अन्य** बनाम **रामदेव राम**[2] वाले मामले में इस न्यायालय ने यह भी अभिनिर्धारित किया है कि जब विचारण न्यायालय या सेशन न्यायालय द्वारा महत्वपूर्ण साक्ष्य अनदेखा कर दिया जाए तब उच्च न्यायालय दोषमुक्ति के आदेश के विरुद्ध किए गए पुनरीक्षण आवेदन में हस्तक्षेप कर सकता है ।

20. वर्तमान मामले में सेशन न्यायालय ने ऐसे किसी भी साक्ष्य को खारिज नहीं किया है जो स्वीकार्य हो । दोनों मृत्युकालिक कथनों पर समुचित रूप से विचार किया गया है । जैसाकि सेशन न्यायाधीश द्वारा की गई चर्चा और ऊपर उल्लिखित बातों से स्पष्ट है, सेशन न्यायालय द्वारा महत्वपूर्ण साक्ष्य को अनदेखा नहीं किया गया है । इन परिस्थितियों में उच्च न्यायालय ने दोषमुक्ति के आदेश के विरुद्ध किए गए पुनरीक्षण आवेदन में हस्तक्षेप करके न्यायोचित नहीं किया है ।

21. **पंजाब राज्य** बनाम **प्रवीण कुमार**[3] वाले मामले में इस न्यायालय ने अलग-अलग तीन मृत्युकालिक कथनों में घटना के भिन्न-भिन्न वृत्तांतों पर विचार किया है जिससे इन मृत्युकालिक कथनों की सत्यता पर संदेह होता है । मृतका द्वारा पहले मृत्युकालिक कथन उसके चाचा के समक्ष, दूसरा मृत्युकालिक कथन कार्यपालक मजिस्ट्रेट के समक्ष और तीसरा मृत्युकालिक कथन पुलिस उपनिरीक्षक के समक्ष दिया गया है । चूंकि

---

[1] ए. आई. आर. 1962 एस. सी. 1788.

[2] ए. आई. आर. 1973 एस. सी. 2145 = (1973) 2 एस. सी. सी. 583.

[3] (2005) 9 एस. सी. सी. 769.

मृत्युकालिक कथनों में भिन्न-भिन्न बातों का उल्लेख किया गया था, इसलिए इस न्यायालय ने मृत्युकालिक कथनों में एक-दूसरे के साथ होने वाली असंगतता पर विचार करने के पश्चात् उच्च न्यायालय द्वारा अभिलिखित दोषमुक्ति के आदेश की पुष्टि की है ।

22. वर्तमान मामले में, वास्तव में तीन मृत्युकालिक कथन किए गए हैं । पहला कथन 14 जुलाई, 2003 को कार्यपालक मजिस्ट्रेट के समक्ष, दूसरा कथन तारीख 15 जुलाई, 2003 को मृतका अर्चना के पिता अर्थात् शिकायतकर्ता दिलीप (अभि. सा. 5) के समक्ष और तीसरा मृत्युकालिक कथन तारीख 16 जुलाई, 2003 को कार्यपालक मजिस्ट्रेट के समक्ष किया गया है । मृतका के पिता दिलीप (अभि. सा. 5) ने तारीख 16 जुलाई, 2003 की अपनी प्रथम इत्तिला रिपोर्ट में यह उल्लेख नहीं किया था कि उसकी पुत्री अर्चना ने यह कथन किया है कि अभियुक्त ने तारीख 14 जुलाई, 2003 को उसके साथ दूसरी बार संभोग करने को कहा था और जब अर्चना ने इनकार कर दिया तब अभियुक्त ने उस पर मिट्टी का तेल छिड़ककर आग लगा दी । अभियोजन पक्ष यह स्पष्ट नहीं कर सका है कि द्वितीय मृत्युकालिक कथन तारीख 16 जुलाई, 2003 को क्यों लिया गया था, यद्यपि उक्त मृत्युकालिक कथन में मृतका अर्चना ने यह उल्लेख किया है कि उससे द्वितीय मृत्युकालिक कथन देने को नहीं कहा गया है । सेशन न्यायाधीश द्वारा इन सभी पहलुओं पर विचार किया गया है और उन्होंने अपीलार्थी को दोषमुक्त किया है ।

23. वर्तमान मामले में, सेशन न्यायाधीश द्वारा व्यक्त किया गया मत न तो अयुक्तियुक्त है और न ही अनुचित है । अभिलेख पर प्रस्तुत साक्ष्य के आधार पर संभव युक्तियुक्त दृष्टिकोण अपनाया गया है । इन परिस्थितियों में उच्च न्यायालय ने दोषमुक्ति के आदेश को अपास्त करके न्यायोचित नहीं किया है ।

24. उपर्युक्त कारणों के आधार पर हम 2004 के दांडिक पुनरीक्षण आवेदन सं. 321 में पारित किए गए तारीख 18 अक्तूबर, 2007 के आक्षेपित निर्णय और आदेश को अपास्त करते हैं और सेशन न्यायालय द्वारा पारित किए गए आदेश की पुष्टि करते हैं । अपील मंजूर की जाती है ।

अपील मंजूर की गई ।

अस./अनू.

रिछपाल सिंह मीणा

बनाम

घासी उर्फ घीसा और अन्य

4 जुलाई, 2014

न्यायमूर्ति रंजन प्रकाश देसाई और न्यायमूर्ति मदन बी. लोकुर

दंड संहिता, 1860 (1860 का 45) – धारा 299/304, 300/302, 322, 325, 326 और 72 – अभियुक्तों द्वारा मृतक को कारित क्षतियों के कारण उसकी मृत्यु हो जाना – विचारण न्यायालय द्वारा मामले के तथ्यों और साक्ष्य के आधार पर अभियुक्तों को धारा 302 के अधीन हत्या का अपराध कारित करने का दोषी ठहराया जाना – उच्च न्यायालय द्वारा अभियुक्तों को केवल धारा 325 के अधीन स्वेच्छया घोर उपहति कारित करने के लिए दोषसिद्ध किया जाना – डाक्टर की राय के अनुसार मृतक को पहुंची क्षतियां प्रकृति के मामूली अनुक्रम में मृत्यु कारित करने के लिए पर्याप्त होने तथा मामले के तथ्यों से यह स्पष्ट होने पर कि अभियुक्तों का आशय मृतक को घोर क्षतियां कारित करना था, यह आपराधिक मानव वध का मामला होने के कारण विचारण न्यायालय द्वारा उन्हें धारा 302 के अधीन ठीक ही दोषसिद्ध और दंडादिष्ट किया गया है तथा उच्च न्यायालय का निर्णय अपास्त करने योग्य है ।

अपीलार्थी और कुछ अन्य व्यक्ति तारीख 14 दिसम्बर, 1996 को खेतों के निकट एक कुंए के पास बैठे हुए थे । अपीलार्थी का पिता सुंदर लाल मीणा (मृतक) खेतों का निरीक्षण करने के लिए गया था । जब सुंदर लाल खेत में था तो खेत में बनी मेड़ तोड़ने के संबंध में उसकी अभियुक्तों के साथ कहासुनी हुई । अभियुक्तों द्वारा उस पर लाठी और घूसों से प्रहार किया गया । क्षतियों के कारण उसकी मृत्यु हो गई । मरणोत्तर परीक्षा करने वाले डाक्टर ने यह साक्ष्य दिया कि मृतक की मृत्यु सदमे, रक्तस्राव और फेफड़े की क्षतियों के परिणामस्वरूप हुई थी और क्षतियां सामान्य अनुक्रम में मृत्यु कारित करने के लिए पर्याप्त थीं । अभियुक्तों के विरुद्ध भारतीय दंड संहिता की धारा 302, 302/34 और 447 के अधीन दंडनीय अपराध के लिए आरोप पत्र फाइल किया गया । अपर जिला और सेशन न्यायाधीश ने अपने समक्ष पेश किए गए साक्ष्य के आधार पर अभियुक्तों को

भारतीय दंड संहिता की धारा 302 के अधीन दंडनीय अपराध के साथ-साथ भारतीय दंड संहिता की धारा 447 के अधीन दंडनीय अपराध के लिए दोषसिद्ध किया । तथापि, उन्हें भारतीय दंड संहिता की धारा 302/34 के अधीन विरचित आरोप से दोषमुक्त कर दिया गया । दोषसिद्ध व्यक्तियों ने व्यथित होकर राजस्थान उच्च न्यायालय की जयपुर स्थित न्यायपीठ के समक्ष दांडिक अपील फाइल की । उच्च न्यायालय ने अपने निर्णय और आदेश द्वारा यह निष्कर्ष निकाला कि प्रत्यर्थी-अभियुक्तों को केवल भारतीय दंड संहिता की धारा 325/34 के अधीन दोषसिद्ध किया जा सकता है न कि भारतीय दंड संहिता की धारा 302/34 के अधीन । उच्च न्यायालय ने यह भी अभिनिर्धारित किया कि उन्हें भारतीय दंड संहिता की धारा 302 के साथ पठित धारा 447 के अधीन दोषसिद्ध नहीं किया जा सकता है । उन्हें दिया गया दंडादेश उनके द्वारा भोगे गए कारावास की अवधि अर्थात् लगभग 18 माह के कारावास का था । मृतक के पुत्र-अपीलार्थी ने उच्च न्यायालय के निर्णय से व्यथित होकर उच्चतम न्यायालय में अपील फाइल की । उच्चतम न्यायालय द्वारा अपील मंजूर करते हुए,

अभिनिर्धारित – इस न्यायालय के पूर्व विनिश्चयों के पुनर्विलोकन से यह उपदर्शित होता है कि किसी व्यक्ति की मृत्यु होने और उनमें से कुछ में स्वेच्छया घोर उपहति कारित करने का निष्कर्ष निकाले जाने के बावजूद इस न्यायालय ने भारतीय दंड संहिता की धारा 304 के साथ पठित धारा 299 के उपबंधों पर विचार नहीं किया । इस न्यायालय की राय में, ऐसी विचारणा न केवल विधिशास्त्रीय दृष्टिकोण से अपितु दंडादिष्ट करने के दृष्टिकोण से भी महत्वपूर्ण है । विधिशास्त्रीय दृष्टिकोण से यह विचार करना इसलिए महत्वपूर्ण है क्योंकि जब अभियुक्त के कार्य या लोप से किसी व्यक्ति की मृत्यु हो जाती है, तब वह या तो मानव वध का दोषी होता है/होती है या अनापराधिक मानव वध का । साक्ष्य के आधार पर यह अवधारण न्यायालय को करना होता है कि यदि यह आपराधिक मानव वध है तो क्या यह भारतीय दंड संहिता की धारा 300 (इसके सभी खंडों सहित) में यथावर्णित हत्या की कोटि में आता है या भारतीय दंड संहिता की धारा 304 में यथावर्णित हत्या की कोटि में नहीं आता है । यदि मानव वध साबित नहीं किया जा सकता है, तब यह अनापराधिक मानव वध के प्रवर्ग के अंतर्गत आएगा । न्यायालय विद्वान् न्याय-मित्र की इस बात से सहमत है कि भारतीय दंड संहिता में उपहति से संबंधित (धारा 319 से आगे) धाराओं में परिणाम के रूप में मृत्यु की परिकल्पना नहीं की गई है ।

इस संबंध में, न्यायालय का ध्यान भारतीय दंड संहिता की धारा 320 जिसमें विभिन्न प्रकार की उपहति को घोर अभिहित किया गया है और विशिष्ट रूप से 'आठवीं' किस्म की ओर ध्यान आकृष्ट किया गया है जो ऐसी उपहति के संबंध में है जो जीवन को संकटापन्न करती है, किंतु इसका अंत नहीं करती है । वास्तव में, जैसा कि विद्वान् न्याय-मित्र द्वारा बताया गया है, भारतीय दंड संहिता में धाराओं के क्रमवार से यह स्पष्ट होता है कि 'जीवन के लिए संकटकारी अपराध' 'उपहति' के अपराधों से पूर्णतया भिन्न हैं । यदि उपहति के परिणामस्वरूप, यह आशय के साथ कारित की गई हो या आशय के बिना, मृत्यु हो जाती है तो अपराध किसी और प्रवर्ग के अन्तर्गत नहीं अपितु जीवन के लिए संकटकारी अपराध के प्रवर्ग के अंतर्गत आएगा, यही वह विभेद है जिसकी प्रथम प्रवर्ग के मामलों में उपेक्षा या अनदेखी की गई है, किंतु वे मामले उनके विशिष्ट तथ्यों के आधार पर विनिश्चित किए गए थे । इस न्यायालय के समक्ष निर्दिष्ट किए गए मामले जैसे मामलों में दंडादेश का विवाद्यक भी अति महत्वत्पूर्ण है । इसका कारण किसी प्रस्तुत स्थिति में अधिरोपित किए जाने वाले दंडादेश की मात्रा है । यदि कोई अभियुक्त हत्या का, अर्थात् भारतीय दंड संहिता की धारा 300 (तृतीय) के अधीन, दोषी है, तो वह न्यूनतम आजीवन कारावास के लिए दायी होगा/होगी; यदि कोई अभियुक्त धारा 304 के अधीन हत्या की कोटि में न आने वाले आपराधिक मानव वध का दोषी है, तो वह अधिकतम दस वर्ष के कारावास के लिए दायी होगा/होगी; यदि कोई अभियुक्त धारा 304क के अधीन अनापराधिक मानव वध का दोषी है, तो दंडादेश दो वर्ष के कारावास से अधिक नहीं होगा । दूसरी ओर, यदि न्यायालय इस प्रश्न की उपेक्षा या अनदेखी करता है कि मानव वध आपराधिक है या नहीं, अपितु मामले को भारतीय दंड संहिता की धारा 325 या धारा 326 के अधीन दंडनीय स्वेच्छया घोर उपहति कारित करने का मानता है जिसके लिए अधिकतम दंडादेश सात वर्ष या दस वर्ष का कारावास/आजीवन कारावास (यथास्थिति) है, तब प्रस्तुत मामले में वास्तविक कठिनाई यह आती है कि उस मामले में के अभियुक्त को (जो अपराध बनता है उस पर निर्भर करते हुए) या तो उस दंडादेश से कम दंडादेश मिल रहा है जिसके लिए वह दायी है या विधि द्वारा प्रमाणित की बजाय अधिक दंडादेश मिल रहा है । यही कारण है कि विचारण न्यायालय द्वारा न केवल आरोपों (यदि आवश्यक हो तो अनेक आरोपों) की स्पष्ट विरचना करना अनिवार्य है अपितु कारित किए गए अपराध की न्यायालय द्वारा सही पहचान करना भी अनिवार्य है । (पैरा 42, 43, 44 और 45)

इस न्यायालय के समक्ष उद्धृत किए गए सभी विनिश्चयों (और शायद इस विषय पर और बहुत से विनिश्चय हैं किंतु उद्धृत नहीं किए गए हैं) पर विचार करने के पश्चात्, इस न्यायालय की राय में एक पांच-स्तरीय जांच आवश्यक है – (i) क्या मानव वध हुआ है ? (ii) यदि हां, तो क्या यह आपराधिक मानव वध है या अनापराधिक मानव वध ? (iii) यदि यह आपराधिक मानव वध है, तो क्या अपराध हत्या की कोटि में आने वाला आपराधिक मानव वध है (भारतीय दंड संहिता की धारा 300) या क्या यह हत्या की कोटि में न आने वाला आपराधिक मानव वध है (भारतीय दंड संहिता की धारा 304) ? (iv) यदि यह अनापराधिक मानव वध है तब भारतीय दंड संहिता की धारा 304क के अधीन मामला बनता है । (v) यदि उस व्यक्ति की शनाख्त करना संभव नहीं है जिसने मानव वध किया है, तब भारतीय दंड संहिता की धारा 72 के उपबंधों का अवलंब लिया जा सकता है । पांच-स्तरीय जांच को लागू करते हुए, यह स्पष्ट है कि : (i) मानव वध अर्थात, सुंदर लाल की मृत्यु हुई थी; (ii) हमलावरों ने सुंदर लाल पर लाठी से दो प्रहार किए थे जिसके परिणामस्वरूप उसकी पसलियों में अस्थिभंग और उसके फेफड़ों में भेदन हुआ था । क्षतियां दुर्घटनावश या अनाशयित नहीं थीं – हमलावरों का सुंदर लाल को घोर क्षतियां पहुंचाने का सामान्य आशय था और ऐसा नहीं है कि उनका आशय उसे पहुंची क्षति से भिन्न कोई अन्य क्षति कारित करना था । (iii) डा. अमर सिंह राठोर की राय से यह पुष्टि होती है कि सुंदर लाल को पहुंची क्षतियां सामान्य अनुक्रम में मृत्यु कारित करने के लिए पर्याप्त थीं । परिणामतः, मानव वध एक आपराधिक मानव वध था । विरसा सिंह बनाम पंजाब राज्य वाले मामले में अधिकथित विधि को लागू करते हुए यह स्पष्ट है कि घासी और लाला सुंदर लाल की हत्या करने के लिए भारतीय दंड संहिता की धारा 300 (तृतीय) के अंतर्गत आने वाले और धारा 302 के अधीन दंडनीय अपराध के दोषी हैं । इन परिस्थितियों में, यह न्यायालय उच्च न्यायालय के विनिश्चय को अपास्त करता है और विचारण न्यायालय के विनिश्चय को प्रत्यावर्तित करता है तथा घासी और लाला को सुंदर लाल की हत्या करने के अपराध के लिए दोषसिद्ध करता है । (पैरा 46, 48 और 49)

निर्दिष्ट निर्णय

		पैरा
[2012]	(2012) 8 एस. सी. सी. 450 : **राज्य** बनाम **संजीव नंदा** ;	14

[2012]	(2012) 2 एस. सी. सी. 648 : **अलिस्टर एंथनी परैरा** बनाम **महाराष्ट्र राज्य** ;	14
[2012]	(2012) 2 एस. सी. सी. 182 : **पंजाब राज्य** बनाम **बलविंदर सिंह** ;	14
[2009]	(2009) 11 एस. सी. सी. 371 : **शेख करीमुल्ला** बनाम **आंध्र प्रदेश राज्य** ;	34
[2008]	(2008) 1 एस. सी. सी. 791 : **नरेश गिरि** बनाम **मध्य प्रदेश राज्य** ;	14
[2006]	(2006) 9 एस. सी. सी. 678 : **राजपाल** बनाम **हरियाणा राज्य** ;	41
[2005]	(2005) 9 एस. सी. सी. 650 : **थंगैया** बनाम **तमिलनाडु राज्य** ;	41
[2002]	(2002) 8 एस. सी. सी. 372 : **सरदूल सिंह** बनाम **हरियाणा राज्य** ;	19
[2002]	(2002) 7 एस. सी. सी. 175 : **अब्दुल वाहिद खान** बनाम **आंध्र प्रदेश राज्य** ;	36, 40
[1999]	(1999) 1 एस. सी. सी. 168 : **राधे श्याम** बनाम **उत्तर प्रदेश राज्य** ;	29
[1988]	(1988) सप्ली. एस. सी. सी. 456 : **रत्तन सिंह** बनाम **पंजाब राज्य** ;	21
[1982]	(1982) 3 एस. सी. सी. 221 : **जरनैल सिंह** बनाम **पंजाब राज्य** ;	32
[1976]	(1976) 2 एस. सी. सी. 117 : **नीनाजी रावजी बौधा** बनाम **महाराष्ट्र राज्य** ;	23
[1976]	(1976) 1 एस. सी. सी. 588 : **पंजाब राज्य** बनाम **सुरजन सिंह** ;	17
[1966]	[1966] सप्ली. एस. सी. आर. 230 : **राजवंत सिंह** बनाम **केरल राज्य** ;	36, 38, 39
[1958]	ए. आई. आर. 1958 एस. सी. 465 : **विरसा सिंह** बनाम **पंजाब राज्य** ।	36, 39, 48

अपीली (दांडिक) अधिकारिता : 2005 की दांडिक अपील सं. 341.

1997 की दांडिक अपील सं. 403 में राजस्थान उच्च न्यायालय की जयपुर स्थित खंड न्यायपीठ द्वारा तारीख 16 अप्रैल, 2003 को पारित निर्णय और आदेश के विरुद्ध अपील ।

अपीलार्थी की ओर से श्री अंसार अहमद चौधरी

प्रत्यर्थियों की ओर से सर्वश्री उदय यू. ललित, ज्येष्ठ अधिवक्ता और उनके साथ (सुश्री) सुमिता हजारिका, अर्चना पाठक दवे, रुचि कोहली और मिलिंद कुमार

न्यायालय का निर्णय न्यायमूर्ति मदन बी. लोकुर ने दिया ।

न्या. लोकुर – हमारे समक्ष उठाया गया प्रश्न उन परिस्थितियों (यदि कोई है) के संबंध में है जिनके अधीन भारतीय दंड संहिता, 1860 (जिसे संक्षेप में "भारतीय दंड संहिता" कहा गया है) की धारा 300/302 के अधीन हत्या के लिए की गई दोषसिद्धि को भारतीय दंड संहिता की धारा 304 के अधीन मध्यवर्ती दोषसिद्धि की संभाव्यता की उपेक्षा या अनदेखी करके भारतीय दंड संहिता की धारा 322/325 (स्वेच्छया घोर उपहति कारित करना) के अधीन या भारतीय दंड संहिता की धारा 326 (खतरनाक आयुधों या साधनों द्वारा स्वेच्छया घोर उपहति कारित करना) के अधीन परिवर्तित किया जा सकता है ।

2. इस अपील में प्रश्न इसलिए उद्भूत हुआ है चूंकि एक घटना में, जिसमें प्रत्यर्थी अंतर्ग्रस्त थे, मृत्यु होने के बावजूद उच्च न्यायालय द्वारा उनकी हत्या के लिए की गई दोषसिद्धि को मानव वध मृत्यु की बात की उपेक्षा या अनदेखी करते हुए स्वेच्छया घोर उपहति कारित करने के लिए दोषसिद्धि में परिवर्तित किया गया है ।

तथ्य

3. अपीलार्थी (रिछपाल सिंह मीणा) और कुछ अन्य व्यक्ति तारीख 14 दिसम्बर, 1996 को खेतों के निकट एक कुंए के पास बैठे हुए थे । रिछपाल का पिता सुंदर लाल मीणा (मृतक) खेतों का निरीक्षण करने के लिए गया था । जब सुंदर लाल खेत में था तो वह कैलाश, घासी, लाला और उनकी अपनी-अपनी पत्नियों तथा उनकी माता से मिला । इसके तुरंत पश्चात् खेतों में बनी मेड़ तोड़ने के संबंध में उनके बीच कहासुनी हुई ।

4. कैलाश, घासी और लाला ने सुंदर लाल को कहा कि वे उसकी ही प्रतीक्षा कर रहे थे और वह अब जाल में फंस गया है । यह कहते हुए कैलाश ने सुंदर लाल को पकड़ लिया जबकि घासी ने उस पर फावड़े से प्रहार किया और लाला ने उसकी पीठ पर लाठी से प्रहार किया । प्रहार होने पर सुंदर लाल गिर पड़ा और चिल्लाने की आवाज सुनकर रिछपाल और अन्य व्यक्ति घटनास्थल की ओर भागे और यह पाया कि महिलाओं द्वारा सुंदर लाल की पिटाई की जा रही थी । रिछपाल उन व्यक्तियों की सहायता से जो उसके साथ थे, सुंदर लाल को अलवर स्थित अस्पताल लेकर गया, किंतु क्षतियों के कारण उसकी मृत्यु हो गई ।

5. डा. अमर सिंह राठोड़ द्वारा मरणोत्तर परीक्षा की गई और उसने यह रिपोर्ट दी कि सुंदर लाल को पहुंची दो क्षतियां सामान्य अनुक्रम में मृत्यु कारित करने के लिए पर्याप्त थीं । निम्नलिखित क्षतियां थीं :–

बाह्य क्षतियां –

1. पीठ के निचले भाग पर बाईं तरफ 8 सें. मी. × 10 सें. मी. आकार का लालिमायुक्त खरोंचदार नील ।

2. छाती के दाईं तरफ 8 सें. मी. × 8 सें. मी. आकार का खरोंचदार नील ।

आंतरिक क्षतियां –

छाती के दाईं तरफ स्थित चौथी और पांचवीं पसली पर अस्थिभंग । 4 सें. मी. × 3 सें. मी. × 1 सें. मी. आकार में दायां फेफड़ा पिचका हुआ । फेफड़े में रक्त के थक्के मौजूद । बाईं तरफ 7वीं और 8वीं पसली में अस्थिभंग । फेफड़ा पिचका हुआ । फेफड़ों के दोनों ओर के प्लुरेई और एवमेव (?) फटे हुए थे ।

डा. राठोड़ ने यह साक्ष्य दिया कि सदमे, रक्तस्राव और फेफड़े की क्षतियों के परिणामस्वरूप उसकी मृत्यु हुई थी । क्षतियां सामान्य अनुक्रम में मृत्यु कारित करने के लिए पर्याप्त थीं ।

6. इन तथ्यों के आधार पर घासी और लाला के विरुद्ध भारतीय दंड संहिता की धारा 302, 302/34 और 447 के अधीन दंडनीय अपराध के लिए आरोप पत्र फाइल किया गया ।

7. अपर जिला और सेशन न्यायाधीश-III, अलवर ने अपने समक्ष पेश

किए गए साक्ष्य के आधार पर घासी और लाला को भारतीय दंड संहिता की धारा 302 के अधीन दंडनीय अपराध के साथ-साथ भारतीय दंड संहिता की धारा 447 के अधीन दंडनीय अपराध के लिए दोषसिद्ध किया । तथापि, उन्हें भारतीय दंड संहिता की धारा 302/34 के अधीन विरचित आरोप से दोषमुक्त कर दिया गया ।

8. दोषसिद्ध व्यक्तियों ने व्यथित होकर राजस्थान उच्च न्यायालय की जयपुर स्थित न्यायपीठ में 1997 की खंड न्यायपीठ दांडिक अपील सं. 403 फाइल की । उच्च न्यायालय ने तारीख 16 अप्रैल, 2003 के निर्णय और आदेश द्वारा यह निष्कर्ष निकाला कि घासी और लाला को केवल भारतीय दंड संहिता की धारा 325/34 के अधीन दोषसिद्ध किया जा सकता है न कि भारतीय दंड संहिता की धारा 302/34 के अधीन । उच्च न्यायालय ने यह भी अभिनिर्धारित किया कि उन्हें भारतीय दंड संहिता की धारा 302 के साथ पठित धारा 447 के अधीन दोषसिद्ध नहीं किया जा सकता है । उन्हें दिया गया दंडादेश उनके द्वारा भोगे गए कारावास की अवधि अर्थात् लगभग 18 माह के कारावास का था ।

9. यह ध्यान देने योग्य है कि विचारण न्यायालय द्वारा घासी और लाला को भारतीय दंड संहिता की धारा 302/34 के अधीन दोषसिद्ध नहीं किया गया था अपितु केवल भारतीय दंड संहिता की धारा 302 और 447 के अधीन दोषसिद्ध किया गया था । इसलिए, स्पष्ट तौर पर, उच्च न्यायालय ने विचारण न्यायाधीश के अंतिम निष्कर्ष को ठीक प्रकार से अभिलिखित नहीं किया है । तथापि, यह एक गौण बात है ।

हमारे प्रारंभिक संदेह

10. विपदग्रस्त के पुत्र द्वारा फाइल की गई इस अपील की सुनवाई करते समय हमें थोड़ा आश्चर्य हुआ कि उच्च न्यायालय द्वारा घासी और लाला को दोषसिद्ध करते समय सुंदर लाल की मानव वध मृत्यु के तथ्य पर विचार नहीं किया गया और यह भी कि उसकी मृत्यु के लिए या तो घासी या लाला या दोनों को उत्तरदायी ठहराने के लिए अभिलेख पर के साक्ष्य (यदि यह संभव था) से अभिनिश्चित करने का कोई प्रयत्न नहीं किया गया । जबकि विद्वान् न्याय-मित्र, सुश्री सुमिता हजारिका द्वारा सुनवाई के दौरान हमारी भरपूर सहायता की गई, तो भी हमने यह महसूस किया कि इस विवाद्यक में किसी अधिक अनुभवी व्यक्ति की आवश्यकता है । तद्नुसार, श्री उदय यू. ललित, ज्येष्ठ अधिवक्ता से इस मामले में हमारी सहायता करने के लिए अनुरोध किया गया और वह स्वेच्छया सहमत हो गए ।

11. श्री ललित ने इस न्यायालय के ऐसे कई विनिश्चय उद्धृत किए जिनमें मानव वध मृत्यु अंतर्वलित थी, किंतु उनमें अभियुक्त को दिया गया दंड केवल स्वेच्छया घोर उपहति कारित करने के लिए था न कि मानव वध के लिए दिया गया कोई दंड । विद्वान् न्याय-मित्र ने यह मत व्यक्त किया कि उद्धृत निर्णयों में से किसी में भी इस तथ्य की उपेक्षा या अनदेखी नहीं की जा सकती थी और नहीं की जानी चाहिए थी कि एक मानव की मृत्यु हुई थी । विद्वान् न्याय-मित्र की यह भी राय है कि ये सभी विनिश्चय इस न्यायालय की दो न्यायाधीशों की न्यायपीठ द्वारा दिए गए थे और उन पर पुनर्विचार करने की आवश्यकता है चूंकि उनमें सही विधि अधिकथित नहीं की गई है ।

12. हम विद्वान् न्याय-मित्र तथा दोषसिद्ध व्यक्तियों की ओर से हाजिर होने वाले विद्वान् काउंसेल द्वारा उद्धृत किए गए सभी निर्णयों पर विचार करेंगे और इसके पश्चात् यह अवधारित करेंगे कि क्या उन निर्णयों पर पुनर्विचार करने की आवश्यकता है या नहीं ।

मानव वध और भारतीय दंड संहिता

13. भारतीय दंड संहिता में दो प्रकार के मानव वध को व्यक्त किया गया है – (1) आपराधिक मानव वध, जिसका धारा 299 और 304 के बीच उपबंध है, और (2) अनापराधिक मानव वध, जिसका धारा 304क में उपबंध है । वर्तमान चर्चा में हमारा भारतीय दंड संहिता की धारा 304ख से सरोकार नहीं है । धारा 299, 304 और 304क निम्नलिखित हैं :–

> "299. **आपराधिक मानव वध** – जो कोई मृत्यु कारित करने के आशय से, या ऐसी शारीरिक क्षति कारित करने के आशय से जिससे मृत्यु हो जाना सम्भाव्य हो, या यह ज्ञान रखते हुए कि यह सम्भाव्य है कि वह उस कार्य से मृत्यु कारित कर दे, कोई कार्य करके मृत्यु कारित कर देता है, वह आपराधिक मानव वध का अपराध करता है ।
>
> दृष्टांत –
>
> (क) **क** एक गड्ढे पर लकड़ियां और घास इस आशय से बिछाता है कि वह तद्द्वारा मृत्यु कारित करे या यह ज्ञान रखते हुए बिछाता है कि सम्भाव्य है कि तद्द्वारा मृत्यु कारित हो । **य** यह विश्वास करते हुए कि वह भूमि सुदृढ़ है उस पर चलता है, उसमें गिर पड़ता है और मारा जाता है । **क** ने आपराधिक मानव वध का अपराध किया है ।

(ख) **क** यह जानता है कि **य** एक झाड़ी के पीछे है । **ख** यह नहीं जानता । **य** की मृत्यु करने के आशय से या यह जानते हुए कि उससे **य** की मृत्यु कारित होना सम्भाव्य है, **ख** को उस झाड़ी पर गोली चलाने के लिए **क** उत्प्रेरित करता है । **ख** गोली चलाता है और **य** को मार डालता है । यहां, यह हो सकता है कि **ख** किसी अपराध का दोषी न हो, किंतु **क** ने आपराधिक मानव वध किया है ।

(ग) **क** एक मुर्गे को मार डालने और उसे चुरा लेने के आशय से उस पर गोली चलाकर **ख** को, जो एक झाड़ी के पीछे है, मार डालता है, किंतु **क** यह नहीं जानता था कि **ख** वहां है । यहां, यद्यपि **क** विधिविरुद्ध कार्य कर रहा था, तथापि, वह आपराधिक मानव वध का दोषी नहीं है क्योंकि उसका आशय **ख** को मार डालने का, या कोई ऐसा कार्य करके, जिससे मृत्यु कारित करना वह सम्भाव्य जानता हो, मृत्यु कारित करने का नहीं था ।

स्पष्टीकरण 1 – वह व्यक्ति, जो किसी दूसरे व्यक्ति को, जो किसी विकार, रोग या अंगशैथिल्य से ग्रस्त है, शारीरिक क्षति कारित करता है और तद्द्वारा उस दूसरे व्यक्ति की मृत्यु त्वरित कर देता है, उसकी मृत्यु कारित करता है, यह समझा जाएगा ।

स्पष्टीकरण 2 – जहां कि शारीरिक क्षति से मृत्यु कारित की गई हो, वहां जिस व्यक्ति ने ऐसी शारीरिक क्षति कारित की हो, उसने वह मृत्यु कारित की है, यह समझा जाएगा, यद्यपि उचित उपचार और कौशलपूर्ण चिकित्सा करने से वह मृत्यु रोकी जा सकती थी ।

स्पष्टीकरण 3 – मां के गर्भ में स्थित किसी शिशु की मृत्यु कारित करना मानव वध नहीं है । किंतु किसी जीवित शिशु की मृत्यु कारित करना आपराधिक मानव वध की कोटि में आ सकेगा, यदि उस शिशु का कोई अंग बाहर निकल आया हो, यद्यपि उस शिशु ने श्वास न ली हो या वह पूर्णतः उत्पन्न न हुआ हो ।

304. **हत्या की कोटि में न आने वाले आपराधिक मानव वध के लिए दंड –** जो कोई ऐसा आपराधिक मानव वध करेगा, जो हत्या की कोटि में नहीं आता है, यदि वह कार्य जिसके द्वारा मृत्यु कारित की गई है, मृत्यु या ऐसी शारीरिक क्षति, जिससे मृत्यु होना सम्भाव्य है, कारित करने के आशय से किया जाए, तो वह आजीवन कारावास से,

या दोनों में से किसी भांति के कारावास से, जिसकी अवधि दस वर्ष तक की हो सकेगी, दंडित किया जाएगा और जुर्माने से भी दंडनीय होगा ;

अथवा यदि वह कार्य इस ज्ञान के साथ कि उससे मृत्यु कारित करना सम्भाव्य है, किंतु मृत्यु या ऐसी शारीरिक क्षति, जिससे मृत्यु कारित करना सम्भाव्य है, कारित करने के किसी आशय के बिना किया जाए, तो वह दोनों में से किसी भांति के कारावास से, जिसकी अवधि दस वर्ष तक की हो सकेगी, या जुर्माने से, या दोनों से, दंडित किया जाएगा ।

304क. – **उपेक्षा द्वारा मृत्यु कारित करना** – जो कोई उतावलेपन से या उपेक्षापूर्ण किसी ऐसे कार्य से किसी व्यक्ति की मृत्यु कारित करेगा, जो आपराधिक मानव वध की कोटि में आता, वह दोनों में से किसी भांति के कारावास से, जिसकी अवधि दो वर्ष तक की हो सकेगी, या जुर्माने से, या दोनों से, दंडित किया जाएगा ।"

14. आपराधिक मानव वध दो प्रकार के हैं – (i) हत्या की कोटि में आने वाला आपराधिक मानव वध (भारतीय दंड संहिता की धारा 300/302), और (ii) हत्या की कोटि में न आने वाला आपराधिक मानव वध (भारतीय दंड संहिता की धारा 304) । उतावलेपन से या उपेक्षापूर्ण किया गया कोई कार्य, जिसके परिणामस्वरूप किसी व्यक्ति की मृत्यु हो जाती है, हो सकता है भारतीय दंड संहिता की धारा 304क को दृष्टिगत करते हुए आपराधिक मानव वध की कोटि में न आए । दूसरे शब्दों में, उतावलेपन से या उपेक्षापूर्ण किया गया ऐसा कार्य "अनापराधिक मानव वध" होगा । किंतु उतावलेपन या उपेक्षापूर्ण किया गया ऐसा कार्य हो सकता है जिसके परिणामस्वरूप किसी व्यक्ति की मृत्यु हो जाती है और ऐसा कार्य भारतीय दंड संहिता की धारा 299 की व्याप्ति और परिधि के अंतर्गत आने वाले आपराधिक मानव वध की कोटि में आ सकता है । यह विभेद **पंजाब राज्य** बनाम **बलविंदर सिंह**[1] वाले मामले में (**नरेश गिरि** बनाम **मध्य प्रदेश राज्य**[2] वाले मामले का अनुसरण करते हुए, जिसमें अत्यंत उपयोगी चर्चा अंतर्विष्ट है) निम्नलिखित शब्दों में स्पष्ट रूप से अभिव्यक्त किया गया है :–

---

[1] (2012) 2 एस. सी. सी. 182.

[2] (2008) 1 एस. सी. सी. 791.

"दंड संहिता में धारा 304क दंड संहिता (संशोधन) अधिनियम, 1870 (1870 का 24) द्वारा ऐसे मामलों को इसके अंतर्गत लाने के लिए अंतःस्थापित की गई थी, जिनमें कोई व्यक्ति किसी अन्य व्यक्ति की मृत्यु ऐसे कार्यों द्वारा कारित करता है जो उतावलेपन से या उपेक्षापूर्ण किए गए हों किंतु मृत्यु कारित करने का कोई आशय न हो और ऐसा कोई ज्ञान न हो कि ऐसे कार्य से मृत्यु हो जाएगी । ऐसा मामला धारा 299 और 300 के अंतर्गत नहीं आना चाहिए केवल तभी ऐसा मामला इस धारा के अधीन आएगा । इस धारा में उतावलेपन से या उपेक्षापूर्ण कार्य द्वारा किए गए मानव वध की दशा में दोनों में से किसी भांति के कारावास से, जिसकी अवधि दो वर्ष तक की हो सकेगी, या जुर्माने से, या दोनों से, दंडित किए जाने का उपबंध है । मानव वध के किसी मामले को भारतीय दंड संहिता की धारा 304क के अधीन लाने के लिए निम्नलिखित शर्तों का विद्यमान होना आवश्यक है, अर्थात् –

(1) प्रश्नगत व्यक्ति की मृत्यु होना आवश्यक है ;

(2) अभियुक्त ने ऐसी मृत्यु कारित की हो ; और

(3) अभियुक्त का ऐसा कार्य उतावलेपन से और उपेक्षापूर्ण हो और यह कार्य आपराधिक मानव वध की कोटि में न आता हो ।"

दोनों निर्णयों में अभिव्यक्त विभेद को, अन्य मामलों के साथ-साथ, **अलिस्टर एंथनी परैरा** बनाम **महाराष्ट्र राज्य**[1] और **राज्य** बनाम **संजीव नंदा**[2] वाले मामलों में स्वीकार और अनुसरण किया गया है । इन दो मामलों में, इस न्यायालय ने यह पाया कि हत्या की कोटि में न आने वाले आपराधिक मानव वध (भारतीय दंड संहिता की धारा 304 के साथ पठित धारा 299 के अंतर्गत) का मामला बनता है और तद्नुसार दोषसिद्धि की गई ।

15. अतः, यह पूर्णतः स्पष्ट है कि जब किसी मानव की मृत्यु कारित की जाती है, तो यह या तो आपराधिक मानव वध (हत्या की कोटि में आने वाला अथवा हत्या की कोटि में न आने वाला) हो सकता है या अनापराधिक मानव वध हो सकता है, किंतु फिर भी यह मानव वध है । इस

---

[1] (2012) 2 एस. सी. सी. 648.

[2] (2012) 8 एस. सी. सी. 450.

विभेद को ध्यान में रखते हुए विद्वान् न्याय-मित्र द्वारा उद्धृत किए गए विनिश्चयों पर विचार किया जा सकता है ।

सुसंगत विनिश्चय

16. इस प्रवर्ग के पांच मामले हैं जिनमें इस न्यायालय ने मानव वध होने के बावजूद, स्पष्ट तौर पर भारतीय दंड संहिता की धारा 299 और धारा 304 की उपेक्षा या अनदेखी करते हुए, अभियुक्त को केवल स्वेच्छया घोर उपहति कारित करने के लिए दोषसिद्ध किया ।

17. **पंजाब राज्य** बनाम **सुरजन सिंह**[1] वाले मामले में विचारण न्यायालय ने सुरजन सिंह और चरण सिंह को लाभ सिंह की हत्या करने के लिए भारतीय दंड संहिता की धारा 302/34 के अधीन दंडनीय अपराध के लिए दोषसिद्ध किया । अपील करने पर उच्च न्यायालय ने दोषसिद्धि को भारतीय दंड संहिता की धारा 326/34 के अधीन दंडनीय अपराध में परिवर्तित कर दिया, यद्यपि क्षतियों में से एक क्षति प्रकृति के मामूली अनुक्रम में मृत्यु कारित करने के लिए पर्याप्त थी । यह परिवर्तन इस आधार पर किया गया कि अभियुक्तों ने, तत्क्षण, लाभ सिंह को केवल घोर क्षति कारित करने का आशय बनाया था । दूसरे शब्दों में, यह अभिनिर्धारित किया गया कि लाभ सिंह की मृत्यु कारित करने के सामान्य आशय का अभाव था । भारतीय दंड संहिता की धारा 326 निम्नलिखित है :–

> "326. **खतरनाक आयुधों या साधनों द्वारा स्वेच्छया घोर उपहति कारित करना** – उस दशा के सिवाय, जिसके लिए धारा 335 में उपबंध है, जो कोई असन, वेधन या काटने के किसी उपकरण द्वारा या किसी ऐसे उपकरण द्वारा, जो यदि आक्रामक आयुध के तौर पर उपयोग में लाया जाए, तो उससे मृत्यु कारित होना सम्भाव्य है, या अग्नि या किसी तप्त पदार्थ द्वारा, या किसी विष या संक्षारक पदार्थ द्वारा, या किसी विस्फोटक पदार्थ द्वारा, या किसी ऐसे पदार्थ द्वारा, जिसका श्वास में जाना या निगलना या रक्त में पहुंचना मानव शरीर के लिए हानिकारक है, या किसी जीवजन्तु द्वारा स्वेच्छया घोर उपहति कारित करेगा, वह आजीवन कारावास से, या दोनों में से किसी भांति के कारावास से, जिसकी अवधि दस वर्ष तक की हो सकेगी, दंडित किया जाएगा और जुर्माने से भी दंडनीय होगा ।"

---

[1] (1976) 1 एस. सी. सी. 588.

18. राज्य द्वारा फाइल की गई अपील में इस न्यायालय ने यह अभिनिर्धारित किया कि उच्च न्यायालय ने इस निष्कर्ष पर पहुंचने में, अर्थात् लाभ सिंह की मृत्यु कारित करने के सामान्य आशय का अभाव था, विधि की कोई गलती नहीं की है । इस न्यायालय द्वारा एक मानव वध होने के बावजूद भारतीय दंड संहिता की धारा 304 की प्रयोज्यता पर ध्यान नहीं दिया गया । अधिनिर्णीत किए गए दंड की मात्रा का दुर्भाग्यवश रिपोर्ट में उल्लेख नहीं है ।

19. **सरदूल सिंह** बनाम **हरियाणा राज्य**[1] वाला ऐसा मामला था जिसमें विचारण न्यायालय ने सरदूल सिंह को नरेश कुमार की हत्या करने के लिए दोषसिद्ध किया जबकि जगतार सिंह को दोषमुक्त कर दिया गया । उच्च न्यायालय ने सरदूल सिंह की दोषसिद्धि की पुष्टि की और जगतार सिंह की दोषमुक्ति को भी अपास्त कर दिया । दोनों को भारतीय दंड संहिता की धारा 302 के अधीन दंडनीय अपराध के लिए दायी ठहराया गया ।

20. अपील करने पर इस न्यायालय ने यह अभिनिर्धारित किया कि हमलावरों का सामान्य आशय मृतक को क्षतियां पहुंचाने का था न कि उसकी मृत्यु कारित करने का, जो कि अनाशयित अंततोगत्वा परिणाम था । इस निष्कर्ष के आधार पर यह अभिनिर्धारित किया गया कि सरदूल सिंह और जगतार सिंह को केवल भारतीय दंड संहिता की धारा 325/34 के अधीन दंडनीय अपराध के लिए दोषसिद्ध किया जा सकता है और भारतीय दंड संहिता की धारा 302 के अधीन दंडनीय अपराध के लिए अवश्य दोषमुक्त किया जाना चाहिए । जो दंडादेश दिया गया वह दो वर्ष का कारावास था । पुनः, मानव वध होने के बावजूद भारतीय दंड संहिता की धारा 304 के साथ पठित धारा 299 की प्रयोज्यता पर विचार नहीं किया गया । भारतीय दंड संहिता की धारा 325 निम्नलिखित है :–

> "धारा 325. **स्वेच्छया घोर उपहति कारित करने के लिए दंड** – उस दशा के सिवाय, जिसके लिए धारा 335 में उपबंध है, जो कोई स्वेच्छया घोर उपहति कारित करेगा, वह दोनों में से किसी भांति के कारावास से, जिसकी अवधि सात वर्ष तक की हो सकेगी, दंडित किया जाएगा, और जुर्माने से भी दंडनीय होगा ।"

21. **रत्तन सिंह** बनाम **पंजाब राज्य**[2] वाला मामला कार्यवाहियों का

---

[1] (2002) 8 एस. सी. सी. 372.

[2] (1988) सप्ली. एस. सी. सी. 456.

ऐसा मामला है जो किसी निर्णय से अपेक्षाकृत दो सोपान नीचे और किसी आदेश से एक कदम नीचे है और फिर भी इसे संप्रकाशित किए जाने योग्य पाया गया है । इस मामले में, कई व्यक्तियों द्वारा गजे सिंह पर धावा बोला गया था और अंततोगत्वा उसे पहुंची क्षतियों के कारण उसकी मृत्यु हो गई । हमलावरों में से कुछ को अन्य धाराओं के साथ-साथ भारतीय दंड संहिता की धारा 302/149 के अधीन दंडनीय अपराध के लिए दोषसिद्ध किया गया । अपील करने पर उच्च न्यायालय ने तीन हमलावरों अर्थात् राम सिंह, धन सिंह और रत्तन सिंह की दोषसिद्धि को मान्य ठहराया और अन्य अभियुक्तों को दोषमुक्त कर दिया । इन तीन हमलावरों को न केवल भारतीय दंड संहिता की धारा 302/149 के अधीन दंडनीय अपराध के लिए दोषसिद्ध किया गया अपितु भारतीय दंड संहिता की धारा 325/149 और धारा 324 के अधीन दंडनीय अपराध के लिए भी दोषसिद्ध किया गया ।

22. इस न्यायालय ने यह अभिनिर्धारित किया कि राम सिंह, धन सिंह और रत्तन सिंह ने गजे सिंह को केवल घोर क्षतियां कारित की थीं और इसलिए भारतीय दंड संहिता की धारा 302 के अधीन उनकी दोषसिद्धि को कायम नहीं रखा जा सकता है । इसलिए उन्हें, यथास्थिति, भारतीय दंड संहिता की धारा 325 और 326 के अधीन दंडनीय अपराध के लिए दोषसिद्ध किया गया और पांच वर्ष के कारावास का दंडादेश दिया गया । फिर एक बार, इस न्यायालय ने एक मानव वध का मामला होने के बावजूद भारतीय दंड संहिता की धारा 304 के साथ पठित धारा 299 की प्रयोज्यता की परीक्षा नहीं की ।

23. **नीनाजी रावजी बौधा** बनाम **महाराष्ट्र राज्य**[1] वाले मामले में विचारण न्यायालय द्वारा दो व्यक्तियों (नीनाजी और रावजी) को भारतीय दंड संहिता की धारा 325 और 147 के अधीन दंडनीय अपराध के लिए दोषसिद्ध किया गया था और पांच वर्ष के कारावास का दंडादेश दिया गया था । यह दोषसिद्धि उनके द्वारा भोनाजी को कारित की गई क्षतियों के परिणामस्वरूप उसकी मृत्यु हो जाने के तथ्य के बावजूद की गई थी । राज्य द्वारा फाइल की गई अपील में उच्च न्यायालय ने उन्हें भोनाजी की मृत्यु कारित करने के लिए भारतीय दंड संहिता की धारा 302/34 के अधीन दंडनीय अपराधों के लिए दोषसिद्ध किया ।

24. नीनाजी और रावजी ने इस न्यायालय में अपील की और यह

---

[1] (1976) 2 एस. सी. सी. 117.

अभिनिर्धारित किया गया कि उन्होंने भोनाजी पर कई प्रहार किए थे और उनमें से एक "सिर पर किया गया जोरदार प्रहार था जिससे दबा हुआ अस्थिभंग और सर्वत्र विदीर्ण कारित हुआ था" जिसके परिणामस्वरूप उसकी मृत्यु हो गई थी । इस न्यायालय ने अभिलेख पर साक्ष्य से यह पाया कि – (क) यह सिद्ध नहीं हो सका है कि किस ने जोरदार प्रहार किया था ; (ख) साक्ष्य से यह सिद्ध होता है कि नीनाजी और रावजी का भोनाजी की मृत्यु कारित करने का सामान्य आशय नहीं था अपितु उसे घोर क्षति कारित करने का आशय था । परिणामतः, मानव वध के लिए कौन उत्तरदायी था इस बात के लिए किसी निश्चायक या विनिर्दिष्ट साक्ष्य की कमी के कारण और सामान्य आशय के अभाव में नीनाजी और रावजी हत्या के अपराध के लिए दोषमुक्त कर दिए गए अपितु भारतीय दंड संहिता की धारा 325/34 के अधीन दंडनीय अपराध के लिए दोषसिद्ध किए गए और पांच वर्ष के कारावास का दंडादेश दिया गया । हमें यह प्रतीत होता है कि इस न्यायालय द्वारा लागू किया गया सिद्धांत, यद्यपि ऐसा उल्लेख नहीं किया गया है, भारतीय दंड संहिता की धारा 72 में पाया जा सकता है, जो निम्नलिखित है :–

> "72. **कई अपराधों में से एक के दोषी व्यक्ति के लिए दंड जबकि निर्णय में यह कथित है कि यह संदेह है कि वह किस अपराध का दोषी है** – उन सब मामलों में, जिनमें यह निर्णय दिया जाता है कि कोई व्यक्ति उस निर्णय में विनिर्दिष्ट कई अपराधों में से एक अपराध का दोषी है, किंतु यह संदेहपूर्ण है कि वह उन अपराधों में से किसी अपराध का दोषी है, यदि वही दंड सब अपराधों के लिए उपबंधित नहीं है तो वह अपराधी उस अपराध के लिए दंडित किया जाएगा, जिसके लिए कम से कम दंड उपबंधित किया गया है ।"

25. इसी प्रकार, भारतीय दंड संहिता की धारा 72 में अधिकथित सिद्धांत का राम लाल बनाम दिल्ली प्रशासन वाले मामले में अवलंब लिया गया प्रतीत होता है, जिसमें चार व्यक्ति (राम लाल सहित) हर लाल की हत्या करने के अभियुक्त थे । विचारण न्यायालय ने उनमें से एक को दोषमुक्त कर दिया किंतु राम लाल सहित अन्य अभियुक्तों को भारतीय दंड संहिता की धारा 302/34 के अधीन दंडनीय अपराध के लिए दोषसिद्ध किया । अपील करने पर उच्च न्यायालय ने राम लाल की भारतीय दंड संहिता की धारा 302 के अधीन दंडनीय अपराध के लिए दोषसिद्धि को मान्य ठहराया, जबकि दो अन्य अभियुक्तों को भारतीय दंड संहिता की धारा

325/34 के अधीन दोषसिद्ध किया गया ।

26. इस न्यायालय के समक्ष अपील में प्रश्न यह था कि क्या राम लाल को भारतीय दंड संहिता की धारा 302 के अधीन दंडनीय अपराध के लिए दोषसिद्ध किया जा सकता है । यह (तीन न्यायाधीशों की न्यायपीठ द्वारा) अभिनिर्धारित किया गया कि उच्च न्यायालय ने गलत रूप से यह निष्कर्ष निकाला था कि मृतक को सिर पर केवल एक क्षति पहुंची थी । वास्तव में उसे सिर पर दो क्षतियां पहुंची थीं । इसके अतिरिक्त, यह पाया गया कि उच्च न्यायालय ने यह भी अभिनिर्धारित किया है कि राम लाल ने हर लाल के सिर पर लाठी से केवल एक प्रहार किया था । इन तथ्यों के आधार पर किसी निश्चितता के साथ यह नहीं कहा जा सकता है कि राम लाल द्वारा किया गया प्रहार घातक साबित हुआ था या उसके द्वारा किया गया प्रहार घातक साबित नहीं हुआ था । राम लाल द्वारा किए गए प्रहार की कोई स्पष्ट शनाख्त के अभाव में वह संदेह के फायदे का हकदार है । तथापि, चूंकि तीनों हमलावरों का सामान्य आशय हर लाल को गंभीर क्षति कारित करने का था, इसलिए भारतीय दंड संहिता की धारा 72 में अधिकथित सिद्धांत को लागू करते हुए राम लाल स्पष्ट रूप से भारतीय दंड संहिता की धारा 325/34 के अधीन दोषसिद्धि के लिए दायी है । तद्नुसार, उसे पांच वर्ष के कारावास का दंडादेश दिया गया ।

27. यह दृष्टव्य है कि ये विनिश्चय उन मामलों के अपने विशिष्ट तथ्यों के आधार पर विनिश्चित किए गए थे । इस न्यायालय ने ऐसी कोई विधि अधिकथित नहीं की कि यदि हत्या करने के किसी आशय के बिना केवल गंभीर क्षति कारित करने का सामान्य आशय था, तो अभियुक्तों को हत्या के लिए दोषसिद्ध नहीं किया जा सकता है । यह बात पूर्णतः स्पष्ट है चूंकि इससे ऐसे मामलों में एक असंगत स्थिति उत्पन्न हो जाएगी जहां कोई व्यक्ति किसी अन्य व्यक्ति के सिर को चकनाचूर कर दे और फिर यह अभिवाक् करे कि उसका विपदग्रस्त की हत्या करने का कोई आशय नहीं था अपितु केवल गंभीर क्षति कारित करने का था । यह समझा जाना चाहिए कि अभियुक्त को अवश्य अपने कृत्य के परिणामों का ज्ञान रहा होगा जब तक कि यह दुर्घटनावश या अनाशयित न हो ।

आंशिक रूप से सुसंगत विनिश्चय

28. विद्वान् न्याय-मित्र द्वारा उद्धृत किए गए द्वितीय प्रवर्ग के विनिश्चय, हालांकि सुसंगत हैं, हमारी चर्चा के लिए ज्यादा सहायक नहीं

हैं, चूंकि इन मामलों में मानव वध हुआ था और अभियुक्तों में से कम-से-कम एक को उस मानव वध के लिए दोषसिद्ध किया गया था ।

29. **राधे श्याम** बनाम **उत्तर प्रदेश राज्य**[1] वाले मामले में विचारण न्यायालय द्वारा राम सरन की हत्या करने के लिए तीन व्यक्तियों को दोषसिद्ध किया गया था । अपील करने पर उच्च न्यायालय ने भारतीय दंड संहिता की धारा 302 के अधीन दंडनीय अपराध के लिए उनकी दोषसिद्धि को अपास्त कर दिया अपितु उन्हें भारतीय दंड संहिता की धारा 304 के भाग 1 के अधीन दंडनीय अपराध के लिए दोषसिद्ध किया और उन्हें सात वर्ष के कारावास का दंडादेश दिया ।

30. दोषसिद्ध किए गए तीन व्यक्तियों में से केवल राधे श्याम ने इस न्यायालय में समावेदन किया और उसकी दलील यह थी कि उसने मृतक पर कोई प्रहार नहीं किया था । साक्ष्य पर विचार करने के पश्चात् इस न्यायालय ने यह निष्कर्ष निकाला कि यह दर्शित करने के लिए कुछ नहीं है कि राधे श्याम ने घातक प्रहार किया था, या इस मामले के लिए, ऐसा कोई प्रहार किया था जिससे राम सरन की मृत्यु कारित होना सम्भाव्य था । तद्नुसार, उसकी भारतीय दंड संहिता की धारा 304 के भाग 1 के अधीन दोषसिद्धि को भारतीय दंड संहिता की धारा 325 के अधीन दोषसिद्धि में परिवर्तित किया गया और दंडादेश कम करके दो वर्ष का कारावास कर दिया गया ।

31. यह विनिश्चय इतना सुसंगत नहीं है चूंकि हमलावरों में से दो को एक मानव की मृत्यु कारित करने के लिए दोषसिद्ध किया गया था और केवल घोर क्षतियां कारित किए जाने के लिए दंडनीय अपराध तक ही नहीं छोड़ा गया था ।

32. **जरनैल सिंह** बनाम **पंजाब राज्य**[2] वाले मामले में एक संक्षिप्त आदेश किया गया है और इसे किसी भी प्रकार से एक निर्णय नहीं माना जा सकता है और यह निश्चित रूप से एक प्रकाशन-योग्य निर्णय नहीं है – यह एक मामले का निपटारा मात्र है । आदेश में मामले के तथ्यों को उपदर्शित नहीं किया गया है और विधि की कोई चर्चा नहीं है । किसी भी दशा में, इस आदेश के परिशीलन से यह उपदर्शित होता है कि चूंकि जरनैल सिंह और स्वर्ण सिंह के बीच विपदग्रस्त की मृत्यु कारित करने के

---

[1] (1999) 1 एस. सी. सी. 168.

[2] (1982) 3 एस. सी. सी. 221.

लिए कोई पूर्व-चिंतन नहीं था, इसलिए इस न्यायालय द्वारा भारतीय दंड संहिता की धारा 302/34 के अधीन उनकी दोषसिद्धि को मान्य नहीं ठहराया जा सका । आदेश से मृतक को पहुंची क्षतियों की प्रकृति या वे किसने कारित की थीं, उपदर्शित नहीं होती हैं । आदेश से जो कुछ अर्थ निकाला जा सकता है यह है कि जरनैल सिंह ने मृतका को साधारण क्षति कारित की थी । चूंकि यही कारण है कि उसे स्पष्ट तौर पर हत्या के अपराध के लिए दंडित नहीं किया जा सका था । तथापि, यह स्पष्ट नहीं है कि स्वर्ण सिंह द्वारा मृतक को कौन सी क्षतियां कारित की थीं और उसे मानव वध के लिए दोषसिद्ध किया गया था या नहीं ।

33. हम थोड़े बाद में इस न्यायालय द्वारा पारित आदेशों की और कार्यवाहियों के अभिलेखन के संप्रकाशन पर विचार करेंगे ।

34. **शेख करीमुल्ला** बनाम **आंध्र प्रदेश राज्य**[1] वाले मामले में अभियुक्त सं. 1 (निर्णय से नाम पता नहीं चला है) और करीमुल्ला को विचारण न्यायालय द्वारा भारतीय दंड संहिता की धारा 302/34 के अधीन दंडनीय अपराध के लिए दोषसिद्ध किया गया था । उच्च न्यायालय द्वारा उनकी दोषसिद्धि को मान्य ठहराया गया ।

35. केवल करीमुल्ला ने इस न्यायालय में समावेदन किया और तथ्यों के आधार पर यह पाया गया कि उसके विरुद्ध भारतीय दंड संहिता की धारा 34 के अधीन कोई आरोप विरचित नहीं किया गया था । इसके अतिरिक्त, मृतक पर आक्रमण करने में उसकी भूमिका के विषय में प्रत्यक्षदर्शी साक्ष्य में विसंगति थी । एक साक्षी ने यह कथन किया कि अभियुक्त ने मृतक पर लाठी से हमला किया था जबकि एक अन्य साक्षी ने यह कथन किया कि उसने घूसों से प्रहार किया था । उन परिस्थितियों में, अभिलेख पर के साक्ष्य के आधार पर इस न्यायालय ने यह अभिनिर्धारित किया कि करीमुल्ला भारतीय दंड संहिता की धारा 325 के अधीन दंडनीय अपराध के लिए दंडित किए जाने का दायी है न कि भारतीय दंड संहिता की धारा 302 के अधीन । इस मामले में भी कम से कम एक हमलावर को मानव वध के लिए दोषसिद्ध किया गया था ।

इस न्यायालय के पूर्ववर्ती विनिश्चय

36. विद्वान् न्याय-मित्र ने यह दलील दी कि उपरोक्त प्रथम प्रवर्ग के

---

[1] (2009) 11 एस. सी. सी. 371.

अंतर्गत आने वाले मामले, जिनमें मानव वध हुआ है किंतु दोषसिद्धि केवल स्वेच्छया घोर उपहति कारित करने के लिए की गई है, भारतीय दंड संहिता की धारा 300 (तृतीय) के अंतर्गत भी आ सकते हैं और इसलिए उन पर विचार करने की आवश्यकता है । अपनी बात को स्पष्ट करने के लिए विद्वान् न्याय-मित्र ने तीन विनिश्चय निर्दिष्ट किए । पहला **अब्दुल वाहिद खान** बनाम **आंध्र प्रदेश राज्य**[1] वाला विनिश्चय है और इस विनिश्चय में **राजवंत सिंह** बनाम **केरल राज्य**[2] और **विरसा सिंह** बनाम **पंजाब राज्य**[3] वाले मामलों को निर्दिष्ट किया गया है ।

37. यह स्पष्ट किया जाना आवश्यक है कि विद्वान् न्याय-मित्र ने इन विनिश्चयों को यह सिद्ध करने की दृष्टि से उद्धृत नहीं किया है कि उपरोक्त वर्णित प्रथम प्रवर्ग के विनिश्चय या तो गलत रूप से विनिश्चित किए गए थे या भारतीय दंड संहिता की धारा 300 (तृतीय) लागू नहीं की गई थी । उसके द्वारा इनका उल्लेख केवल प्रसंगवश किया गया है । इन विनिश्चयों को उद्धृत करने का प्रमुख कारण इस न्यायालय द्वारा अपनाए गए इस दृष्टिकोण को उजागर करना था कि जहां हिंसा जानबूझकर की जाती है और इसके परिणामस्वरूप किसी मानव की मृत्यु हो जाती है तो आपराधिक मानव वध का मामला बनता है – एकमात्र प्रश्न यह है कि क्या यह हत्या है या हत्या की कोटि में न आने वाला आपराधिक मानव वध ।

38. **राजवंत सिंह** (उपरोक्त) वाले मामले में इस न्यायालय ने यह अभिनिर्धारित किया (स्पष्ट रूप से अभिव्यक्त किए गए मत को उद्धृत करने की कोशिश और व्याख्या करना व्यर्थ है) :–

> "उन्नी और राजवंत सिंह के इस अपराध से संबंध को सिद्ध करने के लिए अन्य साक्ष्य के अतिरिक्त राजवंत सिंह द्वारा उप-मजिस्ट्रेट, कोचीन के समक्ष की गई संस्वीकृति है जिसमें उसने स्वयं और उन्नी द्वारा निभाई गई भूमिका का स्पष्ट रूप से वर्णन किया है । राजवंत सिंह ने यह भी कथन किया कि वे केवल यह चाहते थे कि जब तक वे तिजोरी को लूटे और धन ले जाएं तब तक लेफ्टीनेंट कमांडर और संतरी बेहोश रहें । यह दलील दी गई कि हमें संस्वीकृति को समग्र रूप में स्वीकार करना चाहिए और इसके आधार पर यह अभिनिर्धारित करना चाहिए कि हत्या करने का आशय नहीं था और

---

[1] (2002) 7 एस. सी. सी. 175.

[2] [1966] सप्ली. एस. सी. आर. 230.

[3] ए. आई. आर. 1958 एस. सी. 465.

इसलिए हत्या का अपराध सिद्ध नहीं होता है । क्योंकि मामले में यह सबसे महत्वपूर्ण बिंदु है इसलिए हम पहले इस पर विचच करेंगे ।

इस बिंदु पर राजवंत सिंह की ओर से श्री जे. जी. सेठी द्वारा बहस की गई और उनकी दलीलों को उन्नी की ओर से श्री हरबंस सिंह द्वारा भी अभिगृहीत किया गया । श्री सेठी ने यह दलील दी कि अपराध घोर उपहति कारित करने या अधिक से अधिक हत्या की कोटि में न आने वाले आपराधिक मानव वध और भारतीय दंड संहिता की धारा 304 (द्वितीय भाग) के अधीन दंडनीय है । यह पूर्णतः स्पष्ट है कि विपदग्रस्त की मृत्यु अपीलार्थियों के कृत्यों के परिणामस्वरूप हुई थी और इस अपराध को मानव वध से निम्न श्रेणी में नहीं रखा जा सकता है क्योंकि अपीलार्थियों को अवश्य यह ज्ञात था कि वे जो कुछ कर रहे हैं उससे मृत्यु होना सम्भाव्य है । इसलिए संक्षिप्त प्रश्न यह है कि क्या अपराध हत्या का था या मानव वध का ।"

(बल देने के लिए रेखांकन हमारे द्वारा किया गया है)

तथ्यों के आधार पर, यह अभिनिर्धारित किया गया कि भारतीय दंड संहिता की धारा 300 (तृतीय) के अंतर्गत आने वाला हत्या का मामला बनता है ।

39. **विरसा सिंह** (उपरोक्त) (तीन न्यायाधीशों की न्यायपीठ) वाले मामले का अनुसरण करते हुए **राजवंत सिंह** (उपरोक्त) वाला ऐसा मामला है जिसमें भारतीय दंड संहिता की धारा 300 (तृतीय) की अपेक्षाओं को निश्चायक रूप से निम्नलिखित रीति में अधिकथित किया गया है (पुनः, स्पष्ट रूप से व्यक्त किए गए निष्कर्षों की व्याख्या करना कठिन है) :–

"संक्षेप में उल्लेख करते हुए, अभियोजन पक्ष को इससे पूर्व कि वह किसी मामले को धारा 300 'तृतीय' के अधीन ला सके, निम्नलिखित तथ्यों को अवश्य साबित करना चाहिए –

प्रथम, उसे पूर्णतया वस्तुनिष्ठ रूप से अवश्य यह सिद्ध करना चाहिए कि कोई शारीरिक क्षति मौजूद है ।

द्वितीय, क्षति की प्रकृति अवश्य साबित की जानी चाहिए ; ये पूर्णतया वस्तुनिष्ठ अन्वेषण हैं ।

तृतीय, यह अवश्य साबित किया जाना चाहिए कि उस विशिष्ट क्षति को पहुंचाने का आशय था, अर्थात् वह क्षति दुर्घटनावश या अनाशयित नहीं थी, या कोई अन्य प्रकार की

क्षति पहुंचाना आशयित था ।

जब एक बार ये तीन तत्व मौजूद होने साबित हो जाते हैं, फिर जांच आगे बढ़ती है और,

चतुर्थ, यह अवश्य साबित किया जाना चाहिए कि ऊपर वर्णित तीन तत्वों से बनी अभी-अभी उल्लिखित प्रकार की क्षति प्रकृति के मामूली अनुक्रम में मृत्यु कारित करने के लिए पर्याप्त है । जांच का यह भाग पूर्णतया वस्तुनिष्ठ और निष्कर्षात्मक है और अपराधी के आशय से कुछ लेना-देना नहीं है ।

जब एक बार अभियोजन पक्ष द्वारा ये चार तत्व सिद्ध कर दिए जाते हैं (और, वास्तव में, अभियोजन पक्ष पर ही यह भार बना रहता है) तो अपराध धारा 300 'तृतीय' के अधीन हत्या का है । यह बात मायने नहीं रखती कि मृत्यु कारित करने का आशय नहीं था । यह भी मायने नहीं रखता कि यहां तक कि इस प्रकार की क्षति कारित करने का भी आशय नहीं था जो प्रकृति के मामूली अनुक्रम में मृत्यु कारित करने के लिए पर्याप्त हो (ऐसा नहीं है कि दोनों के बीच कोई वास्तविक अंतर है) । यह भी मायने नहीं रखता कि ऐसा कोई ज्ञान नहीं था कि इस प्रकार के कार्य से सम्भाव्यतः मृत्यु कारित हो जाएगी । जब एक बार वास्तविक रूप से मौजूद पाई गई शारीरिक क्षति कारित करने का आशय साबित हो जाता है, फिर शेष जांच पूर्णतया वस्तुनिष्ठ है और एकमात्र प्रश्न यह है कि क्या, पूर्णतया वस्तुनिष्ठ निष्कर्ष के विषय के रूप में, क्षति प्रकृति के मामूली अनुक्रम में मृत्यु कारित करने के लिए पर्याप्त है । किसी के पास यह लाइसेंस नहीं है कि ऐसी क्षतियां कारित करता रहे जो प्रकृति के मामूली अनुक्रम में मृत्यु कारित करने के लिए पर्याप्त हैं और दावा करे कि वे हत्या के दोषी नहीं हैं । यदि वे इस प्रकार की क्षति कारित करते हैं, तो उन्हें परिणाम भुगतने होंगे और वे केवल तभी बच सकते हैं यदि यह दर्शित किया जाए, या युक्तियुक्त रूप से यह निष्कर्ष निकाला जा सके कि क्षति दुर्घटनावश कारित हुई थी या अन्यथा अनाशयित थी ।"

(बल देने के लिए रेखांकन हमारे द्वारा किया गया है)

40. **अब्दुल वाहिद खान** (उपरोक्त) वाले मामले में विचारण न्यायालय ने तीन अभियुक्तों को भारतीय दंड संहिता की धारा 304 के भाग 1 के

अधीन दोषसिद्ध किया । राज्य द्वारा अपील करने पर उच्च न्यायालय ने उन्हें भारतीय दंड संहिता की धारा 302 के अधीन दंडनीय अपराध के लिए दोषसिद्ध किया । इस न्यायालय ने भारतीय दंड संहिता की धारा 300 (तृतीय), अभियुक्तों के मृतक को लूटने के उद्देश्य, मृतक को स्वेच्छया कारित की गई घोर क्षतियों पर चर्चा की और इसके पश्चात् उच्च न्यायालय द्वारा अपनाए गए दृष्टिकोण को मान्य ठहराया । इस मामले का सीधे तौर पर भारतीय दंड संहिता की धारा 325 और 326 से संबंध नहीं है किंतु इसलिए उद्धृत किया है, प्रथमतः, इस न्यायालय द्वारा अपने पूर्ववर्ती विनिश्चयों में किए गए विश्लेषणों को स्पष्ट करने के लिए और द्वितीयतः, यह उजागर करने के लिए कि भारतीय दंड संहिता की धारा 299 में आपराधिक मानव वध की प्रत्येक परिस्थिति को ध्यान में रखा गया है और तृतीयतः तथा अति महत्वपूर्ण रूप से यह स्पष्ट करने के लिए कि स्वेच्छया कारित घोर उपहति के परिणामस्वरूप हुई मृत्यु को सरलता से भारतीय दंड संहिता की धारा 325 या 326 के अधीन दंडनीय अपराध की श्रेणी में नहीं रखा जा सकता है ।

41. विद्वान् न्याय-मित्र द्वारा **थंगैया** बनाम **तमिलनाडु राज्य**[1] और **राज पाल** बनाम **हरियाणा राज्य**[2] वाले मामलों के प्रति भी निर्देश किया गया है जिनमें **अब्दुल वाहिद खान** (उपरोक्त) वाले मामले में व्यक्त किए गए मत को दोहराया गया है ।

42. प्रथम प्रवर्ग के मामलों में के विनिश्चयों के पुनर्विलोकन से यह उपदर्शित होता है कि किसी व्यक्ति की मृत्यु होने के बावजूद, और उनमें से कुछ में स्वेच्छया घोर उपहति कारित करने का निष्कर्ष निकाले जाने के बावजूद इस न्यायालय ने भारतीय दंड संहिता की धारा 304 के साथ पठित धारा 299 के उपबंधों पर विचार नहीं किया । हमारी राय में, ऐसी विचारणा न केवल विधिशास्त्रीय दृष्टिकोण से अपितु दंडादिष्ट करने के दृष्टिकोण से भी महत्वपूर्ण है ।

43. विधिशास्त्रीय दृष्टिकोण से यह विचार करना इसलिए महत्वपूर्ण है क्योंकि जब अभियुक्त के कार्य या लोप से किसी व्यक्ति की मृत्यु हो जाती है, तब वह या तो मानव वध का दोषी होता है/होती है या अनापराधिक मानव वध का । साक्ष्य के आधार पर यह अवधारण न्यायालय

---

[1] (2005) 9 एस. सी. सी. 650.

[2] (2006) 9 एस. सी. सी. 678.

को करना होता है कि यदि यह आपराधिक मानव वध है तो क्या यह भारतीय दंड संहिता की धारा 300 (इसके सभी खंडों सहित) में यथा वर्णित हत्या की कोटि में आता है या भारतीय दंड संहिता की धारा 304 में यथा वर्णित हत्या की कोटि में नहीं आता है । यदि मानव वध साबित नहीं किया जा सकता है, तब यह अनापराधिक मानव वध के प्रवर्ग के अंतर्गत आएगा ।

44. हम विद्वान् न्याय-मित्र की इस बात से सहमत हैं कि भारतीय दंड संहिता में उपहति से संबंधित (धारा 319 से आगे) धाराओं में परिणाम के रूप में मृत्यु की परिकल्पना नहीं की गई है । इस संबंध में, हमारा ध्यान भारतीय दंड संहिता की धारा 320 जिसमें विभिन्न प्रकार की उपहति को घोर अभिहित किया गया है और विशिष्ट रूप से "आठवीं" किस्म की ओर ध्यान आकृष्ट किया गया है जो ऐसी उपहति के संबंध में है जो जीवन को संकटापन्न करती है, किंतु इसका अंत नहीं करती है । वास्तव में, जैसा कि विद्वान् न्याय-मित्र द्वारा बताया गया है, भारतीय दंड संहिता में धाराओं के क्रमवार से यह स्पष्ट होता है कि "जीवन के लिए संकटकारी अपराध" "उपहति" के अपराधों से पूर्णतया भिन्न हैं । यदि उपहति के परिणामस्वरूप, यह आशय के साथ कारित की गई हो या आशय के बिना, मृत्यु हो जाती है तो अपराध किसी और प्रवर्ग के अन्तर्गत नहीं अपितु जीवन के लिए संकटकारी अपराध के प्रवर्ग के अंतर्गत आएगा, यही वह विभेद है जिसकी प्रथम प्रवर्ग के मामलों में उपेक्षा या अनदेखी की गई है, किंतु जैसा कि ऊपर उल्लेख किया गया है, वे मामले उनके विशिष्ट तथ्यों के आधार पर विनिश्चित किए गए थे ।

दंडादेश

45. हमें निर्दिष्ट किए गए मामले जैसे मामलों में दंडादेश का विवाद्यक भी अति महत्वत्पूर्ण है । इसका कारण किसी प्रस्तुत स्थिति में अधिरोपित किए जाने वाले दंडादेश की मात्रा है । यदि कोई अभियुक्त हत्या का, अर्थात् भारतीय दंड संहिता की धारा 300 (तृतीय) के अधीन, दोषी है, तो वह न्यूनतम आजीवन कारावास के लिए दायी होगा/होगी; यदि कोई अभियुक्त धारा 304 के अधीन हत्या की कोटि में न आने वाले आपराधिक मानव वध का दोषी है, तो वह अधिकतम दस वर्ष के कारावास के लिए दायी होगा/होगी; यदि कोई अभियुक्त धारा 304क के अधीन अनापराधिक मानव वध का दोषी है, तो दंडादेश दो वर्ष के कारावास से अधिक नहीं होगा । दूसरी ओर, यदि न्यायालय इस प्रश्न की उपेक्षा या

अनदेखी करता है कि मानव वध आपराधिक है या नहीं, अपितु मामले को भारतीय दंड संहिता की धारा 325 या धारा 326 के अधीन दंडनीय स्वेच्छया घोर उपहति कारित करने का मानता है जिसके लिए अधिकतम दंडादेश सात वर्ष या दस वर्ष का कारावास/आजीवन कारावास (यथास्थिति) है, तब प्रस्तुत मामले में वास्तविक संकट यह आता है कि उस मामले में के अभियुक्त को (जो अपराध बनता है उस पर निर्भर करते हुए) या तो उस दंडादेश से कम दंडादेश मिल रहा है जिसके लिए वह दायी है या विधि द्वारा प्रमाणित की बजाय अधिक दंडादेश मिल रहा है । यही कारण है कि विचारण न्यायालय द्वारा न केवल आरोपों (यदि आवश्यक हो तो अनेक आरोपों) की स्पष्ट विरचना करना अनिवार्य है अपितु कारित किए गए अपराध की न्यायालय द्वारा सही पहचान करना भी अनिवार्य है ।

विधिक स्थिति

46. हमारे समक्ष उद्धृत किए गए सभी विनिश्चयों (और शायद इस विषय पर और बहुत से विनिश्चय हैं किंतु उद्धृत नहीं किए गए हैं) पर विचार करने के पश्चात्, हमारी राय में एक पांच-स्तरीय जांच आवश्यक है : (i) क्या मानव वध हुआ है ? (ii) यदि हां, तो क्या यह आपराधिक मानव वध है या अनापराधिक मानव वध ? (iii) यदि यह आपराधिक मानव वध है, तो क्या अपराध हत्या की कोटि में आने वाला आपराधिक मानव वध है (भारतीय दंड संहिता की धारा 300) या क्या यह हत्या की कोटि में न आने वाला आपराधिक मानव वध है (भारतीय दंड संहिता की धारा 304) ? (iv) यदि यह अनापराधिक मानव वध है तब भारतीय दंड संहिता की धारा 304क के अधीन मामला बनता है । (v) यदि उस व्यक्ति की शनाख्त करना संभव नहीं है जिसने मानव वध किया है, तब भारतीय दंड संहिता की धारा 72 के उपबंधों का अवलंब लिया जा सकता है । चूंकि स्पष्ट तौर पर यह पांच-स्तरीय कवायद प्रथम प्रवर्ग के विनिश्चयों में नहीं की गई है, इसलिए विद्वान् न्याय-मित्र की यह राय है कि उन विनिश्चयों पर पुनर्विचार करने की आवश्यकता है ।

47. हमारे मत में, किसी भी विनिश्चय पर कोई पुनर्विचार करने की आवश्यकता नहीं है । विधिक स्थिति, जैसी कि हमने हमारे समक्ष यह स्पष्ट करने के लिए कि अधिकांश मामलों में जिस व्यक्ति ने मानव वध (आपराधिक या अनापराधिक) कारित किया है उसकी शनाख्त की जा सकी है, किंतु **नीनाजी रावजी बौधा** (उपरोक्त) और **राम लाल** (उपरोक्त) वाले मामलों जैसे कुछ मामलों में यह पूर्णतः संभव है कि उस व्यक्ति का

वस्तुतः पता लगाने के लिए निश्चायक या विनिर्दिष्ट साक्ष्य की कमी हो जिसने मानव वध (आपराधिक या अनापराधिक) कारित किया है, उद्धृत किए गए मामलों से निकाली है यह है कि ऐसे मामलों में अभियुक्त को भारतीय दंड संहिता की धारा 72 का फायदा दिया जाना चाहिए । ऐसे मामले तब उद्भूत होते हैं यदि अन्वेषण त्रुटिपूर्ण है या यदि साक्ष्य अपर्याप्त है । किंतु जहां यह अभिनिश्चित करना संभव है कि मानव वध के लिए कौन उत्तरदायी है, वहां पांच-स्तरीय जांच आसानी से की जा सकती है ।

तथ्यों के आधार पर निष्कर्ष

48. पांच-स्तरीय जांच को लागू करते हुए, यह स्पष्ट है कि : (i) मानव वध अर्थात, सुंदर लाल की मृत्यु हुई थी । (ii) हमलावरों ने सुंदर लाल पर लाठी से दो प्रहार किए थे जिसके परिणामस्वरूप उसकी पसलियों में अस्थिभंग और उसके फेफड़ों में भेदन हुआ । क्षतियां दुर्घटनावश या अनाशयित नहीं थीं – हमलावरों का सुंदर लाल को घोर क्षतियां पहुंचाने का सामान्य आशय था और ऐसा नहीं है कि उनका आशय उसे पहुंची क्षति से भिन्न कोई अन्य क्षति कारित करना था । (iii) डा. अमर सिंह राठोर की राय से यह पुष्टि होती है कि सुंदर लाल को पहुंची क्षतियां सामान्य अनुक्रम में मृत्यु कारित करने के लिए पर्याप्त थीं । परिणामतः, मानव वध एक आपराधिक मानव वध था । **विरसा सिंह** (उपरोक्त) वाले मामले में अधिकथित विधि को लागू करते हुए यह स्पष्ट है कि घासी और लाला सुंदर लाल की हत्या करने के लिए भारतीय दंड संहिता की धारा 300 (तृतीय) के अंतर्गत आने वाले और धारा 302 के अधीन दंडनीय अपराध के दोषी हैं ।

49. इन परिस्थितियों में, हम उच्च न्यायालय के विनिश्चय को अपास्त करते हैं और विचारण न्यायालय के विनिश्चय को प्रत्यावर्तित करते हैं तथा घासी और लाला को सुंदर लाल की हत्या करने के अपराध के लिए दोषसिद्ध करते हैं । राज्य दोषसिद्ध व्यक्तियों को गिरफ्तार करने के लिए आवश्यक कार्यवाही करेगा ताकि वे विधि द्वारा यथा अपेक्षित आजीवन कारावास भुगत सकें ।

आदेश और कार्यवाहियों का अभिलेखन

50. प्रसंगवश, यह उल्लेखनीय है कि निर्णयों (आदेशों और कार्यवाहियों के अभिलेखन सहित) की अत्यधिक रिपोर्टिंग को प्रतिष्ठित विधिवेत्ता श्री फाली एस. नरीमन द्वारा "भारत की विधिक व्यवस्था" "निर्णयों

के कारखाने के रूप में" (इंडियाज़ लीगल सिस्टम एज़ जजमेंट्स फैक्टरी) और "निर्णय विधि अतिसार" (केस ला डायरिया) में वर्णित किया गया है । उनका कहना है कि "बहुत सारे निर्णय रिपोर्ट होते हैं जिन्हें उद्धृत किया जाना होता है, जिन पर विचार, अनुसृत या प्रभेदित किया जाना होता है और ये सभी बहुत अधिक न्यायिक समय ले लेते हैं ।" इसका दोष आंशिक रूप से "अक्खड़ न्यायिक आडम्बर पर", आंशिक रूप से वकीलों पर जो यह समझते हैं कि "किसी विशिष्ट मामले में उच्चतम न्यायालय के प्रत्येक निर्णय और आदेश में जो कुछ कहा जाता है उसे आबद्धकारी विधि के रूप में प्रस्तुत किया जाना चाहिए" और आंशिक रूप से प्रतिस्पर्धात्मक विधि की रिपोर्टिंग करने वाले उन अभिकरणों पर है "जो अपनी विधि रिपोर्टों को यथा संभव व्यापक स्तर पर विक्रय करना चाहते हैं ।" उनका एक निष्कर्ष यह है कि विधियों संबंधी लोकोक्तीय विलंब इसलिए नहीं हैं क्योंकि यहां बहुत सारी विधियां हैं अपितु विलंब इसलिए होता है क्योंकि यहां उनसे संबंधित बहुत सारे निर्णय और आदेश हैं ।

51. यदि विधि भ्रातृसंघ के हम सब न्याय करने में तत्परता सुनिश्चित करने के लिए कुछ न्यायिक सुधार करने के इच्छुक हैं, तो हमें मिल-बैठकर विचार करने और कुछ विवेकपूर्ण परामर्श का अनुसरण करने तथा इससे पूर्व कि न्याय देने में और अधिक विलंब हो, सुधारात्मक कार्रवाई करने की आवश्यकता है । हमारी न्याय देने की प्रक्रिया में विलंब के बारे मे पहले ही प्रतिकूल रूप से टिका-टिप्पणी की जा चुकी है और अब हमारे लिए समय है कि व्यवहारिक और यथार्थ हल ढूंढे जाएं ।

52. यह अपील मंजूर की जाती है ।

अपील मंजूर की गई ।

जस.

महाराष्ट्र राज्य

बनाम

राजेन्द्र और अन्य

8 जुलाई, 2014

न्यायमूर्ति सुधांशु ज्योति मुखोपाध्याय और न्यायमूर्ति वी. गोपाल गौड़ा

दंड संहिता, 1860 (1860 का 45) – धारा 498क, 304ख और 34 [सपठित साक्ष्य अधिनियम, 1872 की धारा 113ख] – विवाहित स्त्री के साथ क्रूरता और दहेज मृत्यु – मामले के तथ्यों और परिस्थितियों तथा साक्षियों के स्पष्ट साक्ष्य के आधार पर युक्तियुक्त संदेह के परे यह साबित होने पर कि मृतका को उसके विवाह के 8-10 दिन पश्चात् से ही अभियुक्तों द्वारा दहेज की मांग पूरी न करने के लिए तंग किया गया था और उसकी मृत्यु के कुछ पूर्व उसके गर्भवती होने के बावजूद उसे ठीक ढंग से भोजन नहीं देकर उसके साथ क्रूरता की गई थी और उसकी संदिग्ध परिस्थितियों में अस्वाभाविक मृत्यु हुई थी, अभियुक्तों की दोषसिद्धि उचित है ।

दंड संहिता, 1860 (1860 का 45) – धारा 306 और 34 [सपठित साक्ष्य अधिनियम, 1872 की धारा 113क] – आत्महत्या के लिए दुष्प्रेरण – उपधारणा – मृतका को दहेज की मांग पूरी करने के लिए प्रपीड़ित करने की दृष्टि से तंग किया जाना – मृतका की जलने से मृत्यु कारित होना – मामले के तथ्यों और परिस्थितियों तथा साक्षियों के साक्ष्य के आधार पर मृतका से दहेज की मांग और क्रूरता करने की बात साबित होना – किसी ऐसे विनिर्दिष्ट साक्ष्य के अभाव में कि अभियुक्तों के जानबूझकर किए गए आचरण से मृतका को आत्महत्या करने के लिए मजबूर होना पड़ा था, अभियुक्तों को धारा 306/34 के अधीन दोषसिद्ध करना उचित नहीं होगा ।

मृतका का विवाह तारीख 19 अप्रैल, 1988 को प्रत्यर्थी-अभियुक्त सं. 2, राजेन्द्र के साथ हुआ था । पति और सास अर्थात् अभियुक्त सं. 2 और 3 दहेज की मांग को लेकर मृतका की पिटाई करते थे, जबकि अभियुक्त सं. 2 और 3 के साथ मिलकर अन्य अभियुक्त मृतका के साथ मानसिक और शारीरिक रूप से दुर्व्यवहार करते थे । अभियुक्त सं. 2, राजेन्द्र मृतका के माता-पिता से हीरो होंडा मोटरसाइकिल चाहता था । वह सदैव अपनी मांग

पर जोर देता रहता था । मृतका ने अपने माता-पिता को यह सूचित किया था कि उसके साथ क्रूरता की जाती है और उसके ससुराल वाले उसके साथ जानवरों जैसा बर्ताव करते हैं । मृतका का पिता कई बार मृतका को लेने के लिए गया किंतु अभियुक्त उसे यह कहते थे कि वह पहले हीरो होंडा मोटरसाइकिल के लिए धन लेकर आए और केवल उसके पश्चात् ही वह मृतका को अपने साथ ले जा सकता है । मृतका को अपनी ससुराल में अर्थात् प्रत्यर्थी-अभियुक्तों के मकान में तारीख 8 अप्रैल, 1999 को सवेरे 98 प्रतिशत दाह-क्षतियां पहुंचीं । उसे अस्पताल ले जाया गया किंतु इससे पूर्व कि उपचार आरंभ किया जाता, उसी दिन पूर्वाह्न में उसकी मृत्यु हो गई और उस समय मृतका 7 मास की गर्भवती थी । मृतका की माता द्वारा रिपोर्ट दाखिल की गई, जिसके आधार पर तारीख 8 अप्रैल, 1999 को भारतीय दंड संहिता की धारा 34 के साथ पठित धारा 498क और 306 के अधीन दंडनीय अपराध के लिए प्रथम इत्तिला रिपोर्ट दर्ज की गई । साक्षियों अर्थात् शिकायतकर्ता के पड़ोसियों, मृतका के भाई के कथन अभिलिखित किए गए । शिकायतकर्ता द्वारा फाइल की गई दांडिक रिट याचिका दिए गए निदेश के अनुसरण में भारतीय दंड संहिता की धारा 304ख के अधीन दंडनीय अपराध भी जोड़ा गया । विचारण न्यायालय ने साक्षियों के कथन और प्रदर्शों का मूल्यांकन करने के पश्चात् अभियुक्तों को भारतीय दंड संहिता की धारा 34 के साथ पठित धारा 498क, 304ख और 306 के अधीन अपराधों के लिए दोषी ठहराया । विचारण न्यायालय के निर्णय के विरुद्ध अपील करने पर उच्च न्यायालय ने आक्षेपित निर्णय द्वारा यह अभिनिर्धारित किया कि अभियोजन पक्ष द्वारा प्रत्यक्ष साक्ष्य द्वारा जब तक यह साबित नहीं किया जाता कि मृतका की मृत्यु आत्महत्या थी और उसके साथ क्रूरता की गई थी तथा उसे तंग किया गया था, मामले में धारा 113क के अधीन उपधारणा लागू नहीं होती है और तद्द्वारा विचारण न्यायालय के निष्कर्ष को उलटते हुए सभी अभियुक्त-प्रत्यर्थियों को भारतीय दंड संहिता की धारा 34 के साथ पठित धारा 498क, धारा 304ख और धारा 306 के अधीन आरोपों से दोषमुक्त कर दिया । राज्य ने उच्च न्यायालय के निर्णय के विरुद्ध उच्चतम न्यायालय में अपील फाइल की । उच्चतम न्यायालय द्वारा अपील भागतः मंजूर करते हुए,

अभिनिर्धारित – चंद्रकांता (अभि. सा. 8) का यह कथन, कि रंजना विवाह के 8-10 दिन पश्चात् उनके पास आई थी और यह बताया कि उसके ससुराल वाले दिनभर उसे टी. वी., कूलर, अलमारी और हीरो होंडा मोटरसाइकिल लाने की बात को लेकर यातना दे रहे थे, प्रथम इत्तिला

रिपोर्ट के अनुरूप है । कतिपय तथ्यों के लोप से कोई फर्क नहीं पड़ता है क्योंकि इस बात की संपुष्टि अभि. सा. 12 द्वारा की गई है । इसी प्रकार इस कथन में, कि अभियुक्तों को अलमारी, कूलर और टी. वी. के लिए 20,000/- रुपए दिए गए थे, लोप की संपुष्टि अभि. सा. 6 द्वारा की गई है । इसलिए उक्त लोप अभियोजन के लिए घातक नहीं है । चंद्रकांता (अभि. सा. 8) ने अपनी परीक्षा में स्पष्ट रूप से यह कथन किया कि मृतका के ससुराल वाले उसे बहुत अधिक तंग कर रहे थे और उसे ठीक ढंग से खाना भी नहीं दिया जाता था । उसका यह कथन प्रतिपरीक्षा में अडिग रहा है और प्रथम इत्तिला रिपोर्ट में भी इस बात का उल्लेख है । दहेज की मांग और क्रूरता के बारे में यहां संतोषबाई (अभि. सा. 6) का अडिग साक्ष्य है, अर्थात् जब उसने मृतका से उसके रोने के कारण के बारे में पूछा तो उसने यह कहा कि उसकी सास और उसके पति का भाई उसे बहुत अधिक तंग कर रहे हैं । उसके अन्य ससुराल वाले भी उसे बहुत परेशान कर रहे हैं । इस साक्ष्य से अभियुक्त सं. 2 को घरेलू सामान खरीदने के लिए धन का संदाय करने के बारे में शिकायतकर्ता चंद्रकांता (अभि. सा. 8) के कथन की संपुष्टि होती है । गीता (अभि. सा. 7) ने स्पष्ट रूप से यह कथन किया कि मृतका ने यह बताया था कि उसके ससुराल वाले सारा काम उससे करवाते हैं । दहेज को लेकर गाली-गलौज करने की बात भी कही गई है । मृतका ने यह भी कहा था कि यदि वह टी. वी. देखती है तो उसके ससुराल वाले कहते हैं कि अपने माता-पिता से टी.वी. लेकर आए । यह साक्ष्य कि उसने अपनी मृत्यु से एक मास पहले यह कहा था कि उसका जीवन निश्चित नहीं है, प्रतिपरीक्षा में अडिग रहा है और अभि. सा. 6 और 7 के साक्ष्य में कोई सुधार नहीं हैं । रंजीत (अभि. सा. 9) ने अपने साक्ष्य में स्पष्ट रूप से यह कथन किया कि 2-4 दिन के पश्चात् उन्हें डा. कुंडा तायडे के अस्पताल की नर्स से रंजना के अस्पताल में भर्ती होने के बारे टेलीफोन पर संदेश प्राप्त हुआ था । उसके पश्चात् वह, उसकी माता (अभि. सा. 8) और पिता (अभि. सा. 11) डा. कुंडा तायडे के अस्पताल गए थे और उसने देखा कि उसकी बहिन बिस्तर पर पड़ी हुई थी और वह भी अकेली । रंजना ने उस समय यह खुलासा किया कि पिछले दो दिनों से उसे खाना नहीं दिया गया था और इसलिए वह कमजोर हो गई है । उस समय उन्हें यह पता चला कि रंजना गर्भवती है । इस साक्षी ने आगे यह कथन किया कि जिस समय वह रंजना से बात कर रहे थे, तो अभि. सा. 2, 3 और 6 उसी कमरे में आए और उनसे गाली-गलौज की और पूछा कि किसने अस्पताल का पता दिया था और इसके पश्चात् उसकी माता

और पिता चले गए और यह इस साक्षी ने अस्पताल में प्रतीक्षा की । इस साक्षी की अभियुक्त सं. 3 से भी बात हुई थी । रंजना के अस्पताल में भर्ती होने की फीस के 2,000/- रुपए स्वयं इस साक्षी ने संदत्त किए थे । ऊपर वर्णित तथ्यों से यह स्पष्ट है कि हीरो होंडा मोटरसाइकिल और अन्य घरेलू सामान खरीदने के लिए दहेज की मांग की गई थी । यातना देने का साक्ष्य भी इस तथ्य से स्पष्ट है कि मृतका को खाना नहीं दिया जाता था और वह भी तब जब वह 7 मास की गर्भवती थी और इसलिए वह कमजोर हो गई थी । (पैरा 18, 19, 20, 21, 22 और 23)

वर्तमान मामले में अभियोजन साक्षियों, विशिष्ट रूप से संतोषबाई (अभि. सा. 6), गीता (अभि. सा. 7), चंद्रकांता (अभि. सा. 8), रंजीत (अभि. सा. 9) और रणछोड़ प्रसाद पांडे (अभि. सा. 11) के साक्ष्य से न्यायालय का यह निष्कर्ष है कि मृतका को दहेज की मांग को पूरा करने के लिए अपने माता-पिता को मनाने हेतु प्रपीड़ित करने की दृष्टि से तंग किया गया था । उक्त जानबूझकर किए गए आचरण ने मृतका को आत्महत्या करने के लिए मजबूर किया था या नहीं, विनिर्दिष्ट साक्ष्य के अभाव में संदेह का विषय है । इसलिए भारतीय दंड संहिता की धारा 498क के खंड (ख) को ध्यान में रखते हुए न्यायालय सभी अभियुक्तों, सं. 1 से 6, को भारतीय दंड संहिता की धारा 498क के अधीन अपराध के लिए दोषी ठहराता है, किंतु न्यायालय यह अभिनिर्धारित करता है कि अभियोजन पक्ष यह साबित करने में असफल रहा है कि मृतका ने आत्महत्या की थी । अतः अभियुक्तों को भारतीय दंड संहिता की धारा 34 के साथ पठित धारा 306 के अधीन अपराध के लिए दोषमुक्त किया जाता है । इस प्रकार, विचारण न्यायालय द्वारा पारित किए गए निर्णय के इस भाग को मान्य नहीं ठहराया जा सकता है । अभियोजन पक्ष ने साक्ष्य के आधार पर सफलतापूर्वक यह साबित किया है कि मृतका की मृत्यु उसके विवाह के सात वर्ष के भीतर हुई थी और मृतका की मृत्यु जलने से हुई थी अर्थात् न कि सामान्य परिस्थितियों में । यह भी साबित किया गया है कि मृतका की मृत्यु से कुछ पूर्व, उसके गर्भवती होने के दौरान, उसके पति और अभियुक्त के नातेदारों अर्थात् अभियुक्त सं. 1-शिवपूजन, अभियुक्त सं. 2-राजेन्द्र, अभियुक्त सं. 3-मालती देवी, अभियुक्त सं. 4-अनीता, अभियुक्त सं. 5-सुरेन्द्र और अभियुक्त सं. 6-विरेन्द्र द्वारा दहेज की मांग के संबंध में उसके साथ क्रूरता की गई थी और उसे तंग किया गया था । इसलिए हम यह अभिनिर्धारित करते हैं कि अभियोजन पक्ष ने सफलतापूर्वक युक्तियुक्त

संदेह के परे यह साबित किया है कि अभियुक्त सं. 1 से 6 भारतीय दंड संहिता की धारा 34 के साथ पठित धारा 304ख के अधीन अपराध के लिए दोषी हैं । (पैरा 31 और 32)

निर्दिष्ट निर्णय

		पैरा
[2004]	(2004) 3 एस. सी. सी. 98 : **यशोदा और एक अन्य** बनाम **मध्य प्रदेश राज्य** ;	24
[2004]	(2004) 9 एस. सी. सी. 157 = ए. आई. आर. 2003 एस. सी. 3828 ; **कालियापेरूमल** बनाम **तमिलनाडु राज्य** ।	25

अपीली (दांडिक) अधिकारिता : 2010 की दांडिक अपील सं. 719. (इसके साथ 2010 की दांडिक अपील सं. 720 भी सुनी गई ।)

2005 की दांडिक अपील सं. 388 में मुम्बई उच्च न्यायालय की नागपुर स्थित न्यायपीठ के तारीख 18 अगस्त, 2005 के निर्णय और आदेश के विरुद्ध अपील ।

अपीलार्थी की ओर से सर्वश्री चिलरेज (सुश्री आशा जी. नायर की ओर से), सचिन जे. पाटिल और (सुश्री) चंदन राममूर्ति

प्रत्यर्थियों की ओर से सर्वश्री सुशील कुमार, ज्येष्ठ अधिवक्ता, आदित्य कुमार, संजय जैन, (सुश्री) आशा जी. नायर और के. एल. तनेजा

न्यायालय का निर्णय न्यायमूर्ति सुधांशु ज्योति मुखोपाध्याय ने दिया ।

न्या. मुखोपाध्याय – ये अपीलें 2005 की दांडिक अपील सं. 388 में मुम्बई उच्च न्यायालय, नागपुर न्यायपीठ, नागपुर द्वारा तारीख 18 अगस्त, 2005 को पारित किए गए निर्णय के विरुद्ध फाइल की गई हैं । उच्च न्यायालय ने आक्षेपित निर्णय द्वारा यह अभिनिर्धारित किया कि अभियोजन पक्ष द्वारा प्रत्यक्ष साक्ष्य द्वारा जब तक यह साबित नहीं किया जाता कि मृतका की मृत्यु आत्महत्या थी और उसके साथ क्रूरता की गई थी तथा

उसे तंग किया गया था, मामले में धारा 113क के अधीन उपधारणा लागू नहीं होती है और तद्द्वारा विचारण न्यायालय के निष्कर्ष को उलटते हुए सभी अभियुक्त-प्रत्यर्थियों को भारतीय दंड संहिता की धारा 34 के साथ पठित धारा 498क, धारा 304ख और धारा 306 के अधीन आरोपों से दोषमुक्त कर दिया ।

2. प्रत्यर्थी-अभियुक्त सं. 1, शिवपूजन और अभियुक्त सं. 3, मालती देवी पति और पत्नी हैं । अभियुक्त सं. 2-राजेन्द्र, अभियुक्त सं. 5-सुरेन्द्र और अभियुक्त सं. 6-विरेन्द्र उनके पुत्र हैं । अभियुक्त सं. 4-अनीता अभियुक्त 1 और 3 की पुत्री है और उसका विवाह सत्यम मिश्रा नामक व्यक्ति से हुआ है, जो पुलिस सेवा में है । अभियुक्त सं. 1 और 5 भी पुलिस सेवा में हैं । अभियुक्त सं. 1 से 3, 5 और 6 भू-खंड सं. 96, आदर्श कालोनी, पुलिस लाइन, तकली के पीछे, नागपुर में रहते हैं । अभियुक्त सं. 4 पुलिस लाइन, पथरीगढ़ क्वार्टर, सदर, नागपुर में रहता है । अभियुक्त सं. 2, राजेन्द्र अभियुक्त सं. 1 और 3 का सबसे छोटा बेटा है । मृतका रंजना अभियुक्त सं. 2, राजेन्द्र की पत्नी थी ।

3. मृतका का विवाह तारीख 19 अप्रैल, 1988 को अभियुक्त सं. 2, राजेन्द्र के साथ हुआ था । वह रणछोड़ प्रसाद पांडे (अभि. सा. 11) और शिकायतकर्ता चंद्रकांता (अभि. सा. 8) की पुत्री थी । मृतका रंजीत (अभि. सा. 9) की छोटी बहिन थी । मृतका के माता-पिता और भाई गांधी नगर, सुरेन्द्रगढ़, नागपुर में रहते हैं । अभियुक्तों के मकान और मृतका के मायके के मकान के बीच दूरी लगभग 1 कि. मी. है ।

4. मृतका को अपनी ससुराल में अर्थात् अभियुक्त सं. 1, 2, 3, 5 और 6 के मकान में तारीख 8 अप्रैल, 1999 को सवेरे 98 प्रतिशत दाह-क्षतियां पहुंची थीं । उसे मायो अस्पताल ले जाया गया किंतु इससे पूर्व कि उपचार आरंभ किया जाता, उसी दिन पूर्वाह्न में 9.30 बजे उसकी मृत्यु हो गई और उस समय मृतका पहली बार 7 मास की गर्भवती थी ।

5. अभियोजन का पक्षकथन यह है कि पति और सास अर्थात् अभियुक्त सं. 2 और 3 दहेज की मांग को लेकर मृतका की पिटाई करते थे, जबकि अभियुक्त सं. 2 और 3 के साथ मिलकर अन्य अभियुक्त मृतका के साथ मानसिक और शारीरिक रूप से दुर्व्यवहार करते थे । अभियुक्त सं. 2, राजेन्द्र मृतका के माता-पिता से हीरो होंडा मोटरसाइकिल चाहता था । वह सदैव अपनी मांग पर जोर देता रहता था । मृतका ने अपने माता-पिता को यह सूचित किया था कि उसके साथ क्रूरता की जाती है और उसके

ससुराल वाले उसके साथ जानवरों जैसा बर्ताव करते हैं । मृतका का पिता कई बार मृतका को लेने के लिए गया किंतु अभियुक्त उसे यह कहते थे कि वह पहले हीरो होंडा मोटरसाइकिल के लिए धन लेकर आए और केवल उसके पश्चात् ही वह मृतका को अपने साथ ले जा सकता है । चूंकि मृतका को गर्भ का सातवां मास आरंभ होने वाला था, इसलिए उसका पिता तारीख 8 अप्रैल, 1999 को पूर्वाह्न में 6.00 बजे उसे लाने के लिए उसके ससुराल गया था । अभियुक्तों ने दहेज की मांग को लेकर उसको बेइज्जत किया और मृतका को उसके साथ भेजने से इनकार कर दिया । पूर्वाह्न में 9.00 बजे अभियुक्त सं. 5, सुरेन्द्र अर्थात् मृतका का जेठ मृतका के माता-पिता के मकान पर आया और उन्हें बताया कि उनकी पुत्री को दाह-क्षतियां पहुंची हैं और वह मायो अस्पताल में भर्ती है । मृतका के माता-पिता तुरंत मायो अस्पताल गए । यह पाया गया कि उनकी पुत्री की पहले ही मृत्यु हो चुकी थी ।

6. मायो अस्पताल स्थित पुलिस बूथ के पुलिस हैड कांस्टेबल दिवाकर की रिपोर्ट के आधार पर तारीख 8 अप्रैल, 1999 को पूर्वाह्न में 10.50 बजे दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 174 के अधीन ए. डी. सं. 28/99 दर्ज की गई । उसके पश्चात् पुलिस उप-निरीक्षक, परवेकर ने घटना-स्थल का दौरा किया, घटनास्थल का पंचनामा (प्रदर्श 40) तैयार किया और फिर मायो अस्पताल गया तथा मृत्यु-समीक्षा पंचनामा (प्रदर्श 43) तैयार किया और शव को मरणोत्तर परीक्षा के लिए भेजा । मरणोत्तर परीक्षा डा. आशीष वानखेड़े (अभि. सा. 10) द्वारा की गई और उसकी रिपोर्ट प्रदर्श 62 है । तत्पश्चात्, अभि. सा. 8, मृतका की माता द्वारा पुलिस हैड कांस्टेबल गिरीश पांडे (अभि. सा. 14) के पास रिपोर्ट (प्रदर्श 54) दाखिल की गई, जिसके आधार पर तारीख 8 अप्रैल, 1999 को अपराह्न में 7.10 बजे भारतीय दंड संहिता की धारा 34 के साथ पठित धारा 498क और 306 के अधीन दंडनीय अपराध के लिए प्रथम इत्तिला रिपोर्ट दर्ज की गई । उप-निरीक्षक, परवेकर द्वारा और आगे अन्वेषण किया गया । उसने मृतका के पिता का कथन अभिलिखित किया और अभियुक्त सं. 2, राजेन्द्र अर्थात् मृतका के पति को तारीख 8 अप्रैल, 1999 को ही गिरफ्तार किया । आगे का अन्वेषण पुलिस निरीक्षक, रविन्द्र रेलगुडवर (अभि. सा. 12) द्वारा और फिर पुलिस उप-निरीक्षक, दादासाहेब खाडे (अभि. सा. 13) द्वारा किया गया । साक्षियों अर्थात् शिकायतकर्ता के पड़ोसियों, मृतका के भाई के कथन अभिलिखित किए गए और शिकायतकर्ता का अनुपूरक कथन भी अभिलिखित किया गया । मृतका का विसरा, जो मरणोत्तर परीक्षा के समय

सरंक्षित रखा गया था, साड़ी के टुकड़े, माचिस और प्लास्टिक का एक जला हुआ टुकड़ा, जो पंचनामा तैयार करते समय अभिगृहीत किए गए थे, को परीक्षण के लिए रासायनिक विश्लेषक के पास भेजे गए । मृतका और अभियुक्त सं. 2, राजेन्द्र के विवाह समारोह के एक विडियो द्वारा चित्र लिए गए थे । इसके विडियो कैसेट शिकायतकर्ता द्वारा अन्वेषक अधिकारी के समक्ष प्रस्तुत किए गए । इसे प्रदर्श 25 द्वारा अभिगृहीत किया गया था । शिकायतकर्ता द्वारा फाइल की गई दांडिक रिट याचिका सं. 168/99 में दिए गए निदेश के अनुसरण में भारतीय दंड संहिता की धारा 304ख के अधीन दंडनीय अपराध भी जोड़ा गया । अन्य अभियुक्त गिरफ्तार किए गए और अन्वेषण पूर्ण होने पर मुख्य न्यायिक मजिस्ट्रेट, नागपुर के न्यायालय में आरोप-पत्र भेजा गया और उन्होंने मामले को सेशन न्यायालय के सुपुर्द कर दिया । भारतीय दंड संहिता की धारा 34 के साथ पठित धारा 498क, 304ख और 306 के अधीन दंडनीय अपराध के लिए आरोप विरचित किए गए, जिनके लिए अभियुक्तों ने दोषी न होने का अभिवाक् किया । अभियोजन पक्ष ने कुल 14 साक्षी पेश किए । अभियुक्तों के विरुद्ध साक्षियों ने दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 313 के अधीन अपने कथन (प्रदर्श 91 से 96) किए और अपने लिखित कथन (प्रदर्श 97) प्रस्तुत किए । चार प्रतिरक्षा साक्षियों अर्थात् प्रति. सा. 1-मोहम्मद असगर, प्रति. सा. 2-सहायक उप-निरीक्षक चन्द्रभान ओसारे, प्रति. सा. 3-सहायक उप-निरीक्षक प्रह्लाद कावड़े और प्रति. सा. 4-राजेश सोनी की भी परीक्षा की गई । प्रतिरक्षा में, जैसी कि यह साक्षियों आदि की प्रतिपरीक्षा से प्रतीत होता है, अभिकथित क्रूरता करने के बारे में पूर्णतः इनकार किया गया । यह आधार लिया गया कि अभियुक्तों ने मृतका के साथ सदैव अच्छा व्यवहार किया था । उन्होंने मृतका को आभूषण दिए थे और डाकघर में उसके नाम में धन का भी विनिधान किया गया था । इस बात से इनकार किया गया कि उन्होंने कभी उसके माता-पिता से किसी दहेज की मांग की थी । उनका पक्षकथन यह है कि मृतका अपनी माता के दबाव में थी । उन्होंने इस बात की जानकारी होने से इनकार किया कि मृतका की मृत्यु कैसे हुई ।

7. विचारण न्यायालय ने, जैसा कि ऊपर उल्लेख किया गया है, साक्ष्य, साक्षियों के कथन और प्रदर्शों का मूल्यांकन करने के पश्चात् अभियुक्तों को भारतीय दंड संहिता की धारा 34 के साथ पठित धारा 498क, 304ख और 306 के अधीन अपराधों के लिए दोषी ठहराया । तथापि, उक्त निष्कर्ष को अपील न्यायालय द्वारा पूर्ववर्ती पैराओं में उल्लिखित कारणों से उलट दिया गया ।

8. अपीलार्थी ने आक्षेपित निर्णय को मुख्य रूप से निम्नलिखित आधारों पर चुनौती दी है :–

(क) उच्च न्यायालय ने आक्षेपित निर्णय में अभियोजन साक्षियों के साक्ष्य के कुछ भाग को उद्धृत करते हुए उन साक्षियों के साक्ष्य पर विश्वास न करने का कोई सटीक कारण नहीं दिया ।

(ख) आक्षेपित आदेश अस्पष्ट, अकारण है और दोषमुक्ति का आदेश साक्ष्य पर चर्चा और मूल्यांकन किए बिना पारित किया गया था ।

(ग) उच्च न्यायालय ने नितांत रूप से यह गलत निष्कर्ष अभिलिखित किया है कि अभियोजन पक्ष ने रंजना की आत्महत्या मृत्यु को साबित नहीं किया है । वास्तव में, स्वयं प्रतिरक्षा पक्ष रंजना की आत्महत्या मृत्यु के वृत्तांत के साथ आया था ।

(घ) अभियोजन पक्ष ने दहेज की मांग और उक्त मांग को लेकर क्रूरता करने की बात को साबित किया है । भारतीय दंड संहिता की धारा 498क और 304ख के अधीन दोषसिद्धि के लिए सभी संघटक मौजूद थे । यह उपधारणा की गई थी कि मामला दहेज मृत्यु का है ।

9. प्रत्यर्थियों का आधार यह है कि अभियोजन साक्षियों का अभिसाक्ष्य अन्वेषण के दौरान दिए गए उनके बयान के पांच वर्ष पश्चात् सुधार करके दिया गया था । उन्होंने भारतीय दंड संहिता की धारा 304ख को लागू करवाने के लिए अभिकथन जोड़े । मृतका की माता, चंद्रकांता (अभि. सा. 8) और मृतका के भाई, रंजीत (अभि. सा. 9) दोनों ने अन्वेषण के दौरान जो बयान दिया था उसमें तात्विक पहलू पर सुधार किया गया । यही स्थिति मृतका के पिता रणछोड़ प्रसाद पांडे (अभि. सा. 11) की है । ये सभी मृतका के नातेदार हैं । इस प्रकार, वे हितबद्ध साक्षी हैं और उनकी विश्वसनीयता पर्याप्त रूप से संदेह के दायरे में है ।

10. मृतका की माता, चंद्रकांता (अभि. सा. 8) शिकायतकर्ता है । उसने अपने कथन में यह कहा कि रंजना (मृतका) का विवाह तारीख 19 अप्रैल, 1998 को अभियुक्त सं. 2, राजेन्द्र के साथ हुआ था । विवाह के समय यह विनिश्चित किया गया था कि 25,000/- रुपए दिए जाएंगे, जो दिए गए और 25,000/- रुपए अलग से स्कूटर के लिए तथा 5,000/- रुपए इनके अतिरिक्त यानि उस समय जब विवाह तय हुआ था कुल 56,000/- रुपए दिए गए थे । विवाह से 2-4 दिन पूर्व, अभियुक्त सं. 1 और

अभियुक्त सं. 2 ने हीरो होंडा मोटरसाइकिल देने के लिए कहा, हालांकि स्कूटर के लिए 25,000/- रुपए दे दिए गए थे । मृतका के परिवार ने यह कहा कि जितनी रकम के लिए पहले सहमति हो चुकी है वे उससे अधिक का संदाय करने में असमर्थ हैं । उसके पश्चात् विवाह संपन्न हो गया । बारात लेने के समय जब दुल्हन विवाह-हाल के पंडाल में प्रवेश करने वाली थी, अभियुक्त ने उस समय भी हंगामा खड़ा कर दिया और उसे सोने की अंगूठी दी गई । विवाह में, रातभर धार्मिक रस्में पूरी की जा रही थीं । अभियुक्त सं. 1 ने कोई खाना या भोजन नहीं लिया । विवाह के दौरान अभियुक्त सं. 2 को लगभग 12 ग्राम की सोने की एक जंजीर (चेन) भेंट की गई । अभियुक्त सं. 2 उक्त जंजीर को स्वीकार करने के लिए मना कर रहा था और दो तोले (20 ग्राम) की जंजीर तथा सोने की बेंत चाहता था । तथापि, उस समय वे मान गए । मृतका को विवाह के 8-10 दिन पश्चात् अपने माता-पिता के घर आना था । उसने बताया कि उसके ससुराल वाले टी. वी. सैट, कूलर, अलमारी और हीरो होंडा मोटरसाइकिल न दिए जाने के लिए दिनभर उसे यातना देते रहते हैं । अभि. सा. 8 ने मृतका से कहा कि वह अभियुक्त सं. 2 को कहे कि वह किसी-न-किसी तरह मोटरसाइकिल के लिए व्यवस्था करेगी । विवाह के 3-4 मास के पश्चात् उन्होंने अभियुक्त सं. 2 को अलमारी, कूलर और टी. वी. के लिए 20,000/- रुपए की रकम दी थी, फिर भी यातना देना जारी रहा । मृतका रंजना इस साक्षी के पास आती रहती थी । जब कभी मृतका के माता-पिता मृतका को भेजने के लिए कहते, तो उसे नहीं भेजा जाता था । अभियुक्त सं. 2, राजेन्द्र मृतका को 3-4 दिन के अंतराल पर किसी न किसी बहाने उसके माता-पिता के घर ले जाता रहता था । आरंभ में, यहां तक कि अभियुक्त सं. 2 मृतका को लाता रहता था किंतु वह आसानी से बात का खुलासा नहीं कर पाती थी । अभियुक्त सं. 2 मृतका पर यह दबाव डालकर क्रूरता करता रहता था कि वह वस्तुओं की मांग करे और उस पर चिल्लाता भी था ।

11. अभि. सा. 8 ने आगे यह भी कथन किया कि रंजना जब विवाह के 8-10 दिन के पश्चात् आई थी तो वह 3-4 दिन ठहरी थी । उसके पश्चात् उसे रहने के लिए नहीं भेजा गया, तथापि, उसे जनवरी में 2-3 दिन के लिए भेजा गया था । उस समय, पूछने पर मृतका ने यह खुलासा किया कि उसके ससुराल वाले उसे बहुत ज्यादा यातना दे रहे हैं और तंग कर रहे हैं । उसने यह भी खुलासा किया कि उसे ठीक ढंग से खाना भी नहीं दिया जाता है उसके साथ जानवरों जैसा बर्ताव किया जाता है ।

मृतका की माता ने उससे पूछा कि कौन उसे तंग करता है, तो इसके जवाब में मृतका ने खुलासा किया कि उसका ससुर, पति, पति का भाई, पति की बहिन और अभियुक्त सं. 2 की बहिन का पति उसे परेशान करते हैं ।

12. चंद्रकांता (अभि. सा. 8) ने आगे यह कथन किया कि उसका पति (अभि. सा. 11) घटना के दिन अर्थात् 8 अप्रैल, 1999 को पूर्वाह्न में 6.30 बजे मृतका को लाने के लिए उसकी (पुत्री की) ससुराल गया था । कुछ धार्मिक रस्में पूरी की जानी थीं किंतु वह बाहर नहीं आई । एक घंटे के पश्चात् अभियुक्त सं. 5, सुरेन्द्र आया और मृतका के साथ घटी जलने की घटना के बारे में बताया और अभि. सा. 11 को शव-गृह ले गया । उसने शव-गृह में प्रवेश किया और रंजना का शव देखा । इस साक्षी ने प्रतिपरीक्षा में यह स्वीकार किया कि मृतका ने कोई कारण नहीं बताया था कि विवाह के 3-4 मास के पश्चात् अलमारी, टी. वी. और कूलर के लिए 20,000/- रुपए देने के पश्चात् भी क्रूरता क्यों जारी रही थी ।

13. रंजीत (अभि. सा. 9) मृतका का भाई है । उसने अपने कथन में यह कहा कि राखी के समय (संभाव्यतः अगस्त, 1998 में) वह अभियुक्तों के घर गया था और अभियुक्त सं. 1 को कहा कि वह अपनी बहिन रंजना से बातचीत करने आया है । अभियुक्त सं. 1 ने रंजना को भेजने से इनकार कर दिया और यह टिप्पणी की कि वह भिखारी की बहिन को भेजना नहीं चाहता । उसी समय अभियुक्त सं. 2 भी आया और गालियां देने लगा तथा उसका कॉलर पकड़ लिया । इस साक्षी ने आगे यह कथन किया कि उसके 10-15 दिन पश्चात् अभियुक्त सं. 2 मृतका रंजना के साथ उनके मकान पर आया । उस समय उसकी बहिन ने उसे यह खुलासा किया कि उसके ससुराल वाले हीरो होंडा मोटरसाइकिल, कूलर, अलमारी की मांग कर रहे हैं और मांग पूरी न होने के लिए उसे तंग किया जाता है । इस साक्षी ने उसे आश्वस्त किया कि उसे रिश्ता चलाना ही पड़ेगा और पारिवारिक जीवन को बर्बाद करने का कोई प्रयोजन नहीं है । इस साक्षी ने प्रतिपरीक्षा में विनिर्दिष्ट रूप से यह कथन किया कि उसने पुलिस के समक्ष यह कथन किया था कि 10-15 दिन पश्चात् जब अभियुक्त सं. 2 उनके मकान पर रंजना के साथ आया था, तब उसकी बहिन ने उसे बताया था कि उसके ससुराल वाले हीरो होंडा मोटरसाइकिल, कूलर, अलमारी की मांग कर रहे हैं और मांग पूरी न होने के लिए उसे तंग किया गया ।

14. रणछोड़ प्रसाद पांडे (अभि. सा. 11) मृतका का पिता है । उसने अपनी प्रतिपरीक्षा में यह कथन किया कि उसकी पुत्री ने यह खुलासा किया था कि अभियुक्त और उसके परिवार के सदस्य उसके साथ दुर्व्यवहार करते हैं । अभियुक्त सं. 2 हीरो होंडा मोटरसाइकिल की मांग कर रहा था । उसकी पुत्री को दहेज के लिए शारीरिक रूप से प्रताड़ित किया गया था । अभियुक्त रेफ्रीजरेटर लाने की भी मांग कर रहे थे । इस साक्षी ने आगे यह कथन किया कि वह तारीख 8 अप्रैल, 1999 को रंजना को कुछ धार्मिक रस्में पूरी करने के लिए, क्योंकि वह 7 माह की गर्भवती थी, लाने हेतु अभियुक्तों के घर गया था । वह पूर्वाह्न में 6.00-6.30 बजे अभियुक्तों के मकान पर पहुंचा । सभी अभियुक्त मकान में मौजूद थे । अभियुक्त सं. 1 और 2 ने उससे पूछा कि क्या वह हीरो होंडा मोटरसाइकिल के लिए रकम लाया है । उसने यह कहा कि वह रकम नहीं लाया है । उसके पश्चात्, उसने कहा कि यदि वे रंजना को भेजना नहीं चाहते हैं तो वह उससे मिलना चाहता है । उस समय अभियुक्त सं. 2 ने रंजना को थप्पड़ मारा था । उसके पश्चात् यह साक्षी लौट आया । रंजना को उसके साथ नहीं भेजा गया । पूर्वाह्न में 8.30 बजे अभियुक्त सं. 5, सुरेन्द्र शुक्ला आया और बताया कि रंजना ने अपने ऊपर मिट्टी का तेल छिड़क लिया और अपने आप को आग लगा ली । इस साक्षी ने प्रतिपरीक्षा के दौरान यह स्वीकार किया कि उसने पुलिस के समक्ष यह कथन नहीं किया था कि अभियुक्त सं. 1 और अभियुक्त सं. 2-राजेन्द्र ने उससे यह कहा था कि वह हीरो होंडा मोटरसाइकिल के लिए रकम लाया है या नहीं और उसने उत्तर दिया था कि वह रकम नहीं लाया है ।

15. राजमणि (अभि. सा. 5) ने यह कथन किया कि विवाह के समय 25,000/- रुपए का दहेज, सोने की एक अंगूठी और घड़ी की मांग की गई थी । सगाई समारोह (तिलक) के समय अभियुक्तों ने स्कूटर देने के लिए भी जोर दिया था और अभियुक्तों को कुल 56,000/- रुपए दिए गए थे ।

16. संतोषबाई (अभि. सा. 6), पड़ोसी ने यह कथन किया कि विवाह के पश्चात् जब रंजना काज़लतीज के समय अपने माता-पिता के घर आई थी, तो वह वहां गई थी । उस समय वहां एक टेलीफोन आया और रंजना ने उक्त टेलीफोन सुना और रोने लगी । इस साक्षी ने उससे (मृतका) उसके रोने के कारण के बारे में पूछा । उसने यह कहा कि उसके सास-ससुर उसे तंग करते हैं । और उसके अन्य ससुराल वाले भी उसे परेशान करते हैं इस साक्षी ने यह कथन किया कि मृतका द्वारा सुने गए टेलीफोन

संदेश की घटना उसकी मृत्यु से 2-3 मास पूर्व घटित हुई थी ।

17. एक अन्य पड़ोसी, गीता (अभि. सा. 7) ने यह कथन किया कि रंजना जब अपने विवाह के 2-3 मास पश्चात् काज़लतीज के समय उससे मिली थी तब वह प्रसन्न दिखाई नहीं पड़ रही थी । उस समय इस साक्षी ने रंजना से अप्रसन्नता का कारण पूछा । उसने बताया कि उसके ससुराल वाले सारा काम उससे करवाते हैं किंतु खाना देने के समय बुड़बुड़ाते हैं । वे दहेज की मांग करते रहते हैं । रंजना ने यह भी कहा था कि यदि वह टी. वी. देखती है तो उसके ससुराल वाले कहते हैं कि वह अपने माता-पिता से टी. वी. लेकर आए ।

18. चंद्रकांता (अभि. सा. 8) का यह कथन, कि रंजना विवाह के 8-10 दिन पश्चात् उनके पास आई थी और यह बताया कि उसके ससुराल वाले दिनभर उसे टी. वी., कूलर, अलमारी और हीरो होंडा मोटरसाइकिल लाने की बात को लेकर यातना दे रहे थे, प्रथम इत्तिला रिपोर्ट के अनुरूप है । कतिपय तथ्यों के लोप से कोई फर्क नहीं पड़ता है क्योंकि इस बात की संपुष्टि अभि. सा. 12 द्वारा की गई है । इसी प्रकार इस कथन में, कि अभियुक्तों को अलमारी, कूलर और टी. वी. के लिए 20,000/- रुपए दिए गए थे, लोप की संपुष्टि अभि. सा. 6 द्वारा की गई है । इसलिए उक्त लोप अभियोजन के लिए घातक नहीं है ।

19. चंद्रकांता (अभि. सा. 8) ने अपनी परीक्षा में स्पष्ट रूप से यह कथन किया कि मृतका के ससुराल वाले उसे बहुत अधिक तंग कर रहे थे और उसे ठीक ढंग से खाना भी नहीं दिया जाता था । उसका यह कथन प्रतिपरीक्षा में अडिग रहा है और प्रथम इत्तिला रिपोर्ट में भी इस बात का उल्लेख है ।

20. दहेज की मांग और क्रूरता के बारे में यहां संतोषबाई (अभि. सा. 6) का अडिग साक्ष्य है, अर्थात् जब उसने मृतका से उसके रोने के कारण के बारे में पूछा तो उसने यह कहा कि उसकी सास और उसके पति का भाई उसे बहुत अधिक तंग कर रहे हैं । उसके अन्य ससुराल वाले भी उसे बहुत परेशान कर रहे हैं । इस साक्ष्य से अभियुक्त सं. 2 को घरेलू सामान खरीदने के लिए धन का संदाय करने के बारे में शिकायतकर्ता चंद्रकांता (अभि. सा. 8) के कथन की संपुष्टि होती है ।

21. गीता (अभि. सा. 7) ने स्पष्ट रूप से यह कथन किया कि मृतका ने यह बताया था कि उसके ससुराल वाले सारा काम उससे

करवाते हैं । दहेज को लेकर गाली-गलौज करने की बात भी कही गई है । मृतका ने यह भी कहा था कि यदि वह टी. वी. देखती है तो उसके ससुराल वाले कहते हैं कि अपने माता-पिता से टी. वी. लेकर आए । यह साक्ष्य कि उसने अपनी मृत्यु से एक मास पहले यह कहा था कि उसका जीवन निश्चित नहीं है, प्रतिपरीक्षा में अडिग रहा है और अभि. सा. 6 और 7 के साक्ष्य में कोई सुधार नहीं हैं ।

22. रंजीत (अभि. सा. 9) ने अपने साक्ष्य में स्पष्ट रूप से यह कथन किया कि 2-4 दिन के पश्चात् उन्हें डा. कुंडा तायडे के अस्पताल की नर्स से रंजना के अस्पताल में भर्ती होने के बारे टेलीफोन पर संदेश प्राप्त हुआ था । उसके पश्चात् वह, उसकी माता (अभि. सा. 8) और पिता (अभि. सा. 11) डा. कुंडा तायडे के अस्पताल गए थे और उसने देखा कि उसकी बहिन बिस्तर पर पड़ी हुई थी और वह भी अकेली । रंजना ने उस समय यह खुलासा किया कि पिछले दो दिनों से उसे खाना नहीं दिया गया था और इसलिए वह कमजोर हो गई है । उस समय उन्हें यह पता चला कि रंजना गर्भवती है । इस साक्षी ने आगे यह कथन किया कि जिस समय वह रंजना से बात कर रहे थे, तो अभि. सा. 2, 3 और 6 उसी कमरे में आए और उनसे गाली-गलौज की और पूछा कि किसने अस्पताल का पता दिया था और इसके पश्चात् उसकी माता और पिता चले गए और यह इस साक्षी ने अस्पताल में प्रतीक्षा की । इस साक्षी की अभियुक्त सं. 3 से भी बात हुई थी । रंजना के अस्पताल में भर्ती होने की फीस के 2,000/- रुपए स्वयं इस साक्षी ने संदत्त किए थे ।

23. ऊपर वर्णित तथ्यों से यह स्पष्ट है कि हीरो होंडा मोटरसाइकिल और अन्य घरेलू सामान खरीदने के लिए दहेज की मांग की गई थी । यातना देने का साक्ष्य भी इस तथ्य से स्पष्ट है कि मृतका को खाना नहीं दिया जाता था और वह भी तब जब वह 7 मास की गर्भवती थी और इसलिए वह कमजोर हो गई थी ।

24. भारतीय दंड संहिता की धारा 304ख दहेज मृत्यु से संबंधित है, जो निम्नलिखित है :–

> "304ख. **दहेज मृत्यु** – (1) जहां किसी स्त्री की मृत्यु दाह या शारीरिक क्षति द्वारा कारित की जाती है या उसके विवाह के सात वर्ष के भीतर सामान्य परिस्थितियों से अन्यथा हो जाती है और यह दर्शित किया जाता है कि उसकी मृत्यु के कुछ पूर्व उसके पति ने या पति

के किसी नातेदार ने, दहेज की किसी मांग के लिए, या उसके संबंध में, उसके साथ क्रूरता की थी या उसे तंग किया था वहां ऐसी मृत्यु को 'दहेज मृत्यु' कहा जाएगा और ऐसा पति या नातेदार उसकी मृत्यु कारित करने वाला समझा जाएगा ।

स्पष्टीकरण – इस उपधारा के प्रयोजनों के लिए 'दहेज' का वही अर्थ है जो दहेज प्रतिषेध अधिनियम, 1961 (1961 का 28) की धारा 2 में है ।

(2) जो कोई दहेज मृत्यु कारित करेगा वह कारावास से, जिसकी अवधि सात वर्ष से कम की नहीं होगी किंतु जो आजीवन कारावास तक की हो सकेगी, दंडित किया जाएगा ।"

भारतीय दंड संहिता की मूल धारा 304ख में और साक्ष्य अधिनियम की धारा 113ख में "उसकी मृत्यु से कुछ पूर्व" अभिव्यक्ति प्रयुक्त की गई है । कोई निश्चित अवधि उपदर्शित नहीं की गई है और "उसकी मृत्यु से कुछ पूर्व" अभिव्यक्ति को परिभाषित नहीं किया गया है । उस अवधि का अवधारण जो "कुछ पूर्व" पद के अंतर्गत आ सकती है, प्रत्येक मामले के तथ्यों और परिस्थितियों पर निर्भर करते हुए न्यायालय द्वारा अवधारित किए जाने के लिए छोड़ा है । इस संबंध में **यशोदा और एक अन्य** बनाम **मध्य प्रदेश राज्य**[1] वाले मामले को निर्दिष्ट किया जा सकता है ।

25. दहेज मृत्यु की बाबत साक्ष्य अधिनियम की धारा 113ख के अधीन उपधारणा केवल निम्नलिखित चार अनिवार्य शर्तों के सबूत के आधार पर की जा सकती है :–

(1) स्त्री के साथ क्रूरता की गई थी या तंग किया गया था,

(2) पति द्वारा या उसके नातेदार द्वारा,

(3) दहेज की किसी मांग के लिए या उसके संबंध में,

(4) उसकी मृत्यु से कुछ पूर्व ।

कालियापेरूमल बनाम **तमिलनाडु राज्य**[2] वाला मामला देखें ।

26. साक्ष्य अधिनियम की धारा 113ख निम्नलिखित है :–

---

[1] (2004) 3 एस. सी. सी. 98.

[2] (2004) 9 एस. सी. सी. 157 = ए. आई. आर. 2003 एस. सी. 3828.

"113ख. **दहेज मृत्यु के बारे में उपधारणा** – जब प्रश्न यह है किसी व्यक्ति ने किसी स्त्री की दहेज मृत्यु की है और यह दर्शित किया जाता है कि मृत्यु के कुछ पूर्व ऐसे व्यक्ति ने दहेज की किसी मांग के लिए, या उसके संबंध में उस स्त्री के साथ क्रूरता की थी या तंग किया था तो न्यायालय यह उपधारणा करेगा कि ऐसे व्यक्ति ने दहेज मृत्यु कारित की थी ।

स्पष्टीकरण – इस धारा के प्रयोजनों के लिए दहेज मृत्यु का वही अर्थ है जो भारतीय दंड संहिता (1860 का 45) की धारा 304ख में है ।"

27. दहेज मृत्य के मामलों में हो सकता है प्रत्यक्ष साक्ष्य उपलब्ध न हो । ऐसे मामले पारिस्थितिक साक्ष्य से साबित किए जा सकते हैं । साक्ष्य अधिनियम की धारा 113ख के साथ पठित भारतीय दंड संहिता की धारा 304ख से दहेज मृत्यु की उपधारणा का नियम उपदर्शित होता है । यदि किसी विवाहित स्त्री की अस्वाभाविक मृत्यु संदिग्ध परिस्थितियों में, जैसे दाह या किसी अन्य शारीरिक क्षति के कारण, विवाह के सात वर्ष के भीतर हो जाती है और उसके पति या नातेदार द्वारा मृत्यु से कुछ पूर्व दहेज की किसी मांग के लिए या के संबंध में क्रूरता की गई थी या तंग किया गया था, तब यह दहेज मृत्यु होगी ।

28. भारतीय दंड संहिता की धारा 306 आत्महत्या के दुष्प्रेरण से संबंधित है, जो निम्नलिखित है :–

"306. **आत्महत्या का दुष्प्रेरण** – यदि कोई व्यक्ति आत्महत्या करे, तो जो कोई ऐसी आत्महत्या का दुष्प्रेरण करेगा, वह दोनों में से किसी भांति के कारावास से, जिसकी अवधि दस वर्ष तक की हो सकेगी, दंडित किया जाएगा और जुर्माने से भी दंडनीय होगा ।"

29. साक्ष्य अधिनियम की धारा 113क किसी स्त्री द्वारा आत्महत्या के दुष्प्रेरण के बारे में उपधारणा से संबंधित है, जो निम्नलिखित है :–

"113-क. **किसी विवाहित स्त्री द्वारा आत्महत्या के दुष्प्रेरण के बारे में उपधारणा** – जब प्रश्न यह है कि किसी स्त्री द्वारा आत्महत्या का करना उसके पति अथवा उसके पति के किसी नातेदार द्वारा दुष्प्रेरित किया गया है और यह दर्शित किया गया है कि उसने अपने विवाह की तारीख से सात वर्ष की अवधि के भीतर आत्महत्या की थी

और यह कि उसके पति अथवा उसके पति के ऐसे नातेदार ने उसके प्रति क्रूरता की थी तो न्यायालय मामले की सभी अन्य परिस्थितियों को ध्यान में रखते हुए यह उपधारणा कर सकेगा कि ऐसी आत्महत्या उसके प्रति या उसके पति के ऐसे नातेदार द्वारा दुष्प्रेरित की गई थी ।

स्पष्टीकरण – इस धारा के प्रयोजनों के लिए 'क्रूरता' का वही अर्थ अभिप्रेत होगा जो कि भारतीय दंड संहिता (1860 का 45) की धारा 498क में है ।"

30. साक्ष्य अधिनियम की धारा 113क के प्रयोजन के लिए क्रूरता का वही अर्थ होगा जो कि भारतीय दंड संहिता की धारा 498क में है । यह धारा निम्नलिखित है :–

"498क. **किसी स्त्री के पति या पति के नातेदार द्वारा उसके प्रति क्रूरता करना** – जो कोई, किसी स्त्री का पति या पति का नातेदार होते हुए, ऐसी स्त्री के प्रति क्रूरता करेगा, वह कारावास से, जिसकी अवधि तीन वर्ष तक की हो सकेगी, दंडित किया जाएगा और जुर्माने से भी दंडनीय होगा ।

स्पष्टीकरण – इस धारा के प्रयोजनों के लिए 'क्रूरता' से निम्नलिखित अभिप्रेत है –

(क) जानबूझकर किया गया कोई आचरण जो ऐसी प्रकृति का है जिससे उस स्त्री को आत्महत्या करने के लिए प्रेरित करने की या उस स्त्री के जीवन, अंग या स्वास्थ्य को (जो चाहे मानसिक हो या शारीरिक) गंभीर क्षति या खतरा कारित करने के लिए उसे करने की सम्भावना है ; या

(ख) किसी स्त्री को तंग करना, जहां उसे या उससे संबंधित किसी व्यक्ति को किसी सम्पत्ति या मूल्यवान प्रतिभूति के लिए किसी विधिविरुद्ध मांग को पूरी करने के लिए प्रपीड़ित करने की दृष्टि से या उसके अथवा उससे संबंधित किसी व्यक्ति के ऐसी मांग पूरी करने में असफल रहने के कारण इस प्रकार तंग किया जा रहा है ।"

31. वर्तमान मामले में अभियोजन साक्षियों, विशिष्ट रूप से संतोषबाई (अभि. सा. 6), गीता (अभि. सा. 7), चंद्रकांता (अभि. सा. 8), रंजीत

(अभि. सा. 9) और रणछोड़ प्रसाद पांडे (अभि. सा. 11) के साक्ष्य से हमारा यह निष्कर्ष है कि मृतका को तंग दहेज की मांग को पूरा करने के लिए अपने माता-पिता को मनाने हेतु प्रपीड़ित करने की दृष्टि से किया गया था । उक्त जानबूझकर किए गए आचरण ने मृतका को आत्महत्या करने के लिए मजबूर किया था या नहीं, विनिर्दिष्ट साक्ष्य के अभाव में संदेह का विषय है । इसलिए भारतीय दंड संहिता की धारा 498क के खंड (ख) को ध्यान में रखते हुए हम सभी अभियुक्तों, सं. 1 से 6, को भारतीय दंड संहिता की धारा 498क के अधीन अपराध के लिए दोषी ठहराते हैं, किंतु हम यह अभिनिर्धारित करते हैं कि अभियोजन पक्ष यह साबित करने में असफल रहा है कि मृतका ने आत्महत्या की थी । अतः अभियुक्तों को भारतीय दंड संहिता की धारा 34 के साथ पठित धारा 306 के अधीन अपराध के लिए दोषमुक्त किया जाता है । इस प्रकार, विचारण न्यायालय द्वारा पारित किए गए निर्णय के इस भाग को मान्य नहीं ठहराया जा सकता है ।

32. अभियोजन पक्ष ने साक्ष्य के आधार पर सफलतापूर्वक यह साबित किया है कि मृतका की मृत्यु उसके विवाह के सात वर्ष के भीतर हुई थी और मृतका की मृत्यु जलने से हुई थी अर्थात् न कि सामान्य परिस्थितियों में । यह भी साबित किया गया है कि मृतका की मृत्यु से कुछ पूर्व, उसके गर्भवती होने के दौरान, उसके पति और अभियुक्त के नातेदारों अर्थात् अभियुक्त सं. 1-शिवपूजन, अभियुक्त सं. 2-राजेन्द्र, अभियुक्त सं. 3 मालती देवी, अभियुक्त सं. 4-अनीता, अभियुक्त सं. 5-सुरेन्द्र और अभियुक्त सं. 6-विरेन्द्र द्वारा दहेज की मांग के संबंध में उसके साथ क्रूरता की गई थी और उसे तंग किया गया था । इसलिए हम यह अभिनिर्धारित करते हैं कि अभियोजन पक्ष ने सफलतापूर्वक युक्तियुक्त संदेह के परे यह साबित किया है कि अभियुक्त सं. 1 से 6 भारतीय दंड संहिता की धारा 34 के साथ पठित धारा 304ख के अधीन अपराध के लिए दोषी हैं ।

33. उपर्युक्त कारणों से, हम 2005 की दांडिक अपील सं. 388 में मुम्बई उच्च न्यायालय, नागपुर न्यायपीठ, नागपुर द्वारा तारीख 18 अगस्त, 2005 को पारित किए गए निर्णय के मुख्य भाग को, भारतीय दंड संहिता की धारा 34 के साथ पठित धारा 306 के अधीन अपराध से संबंधित भाग के सिवाय, अपास्त करते हैं । विचारण न्यायालय द्वारा 2000 के सेशन मामला सं. 447 में तारीख 20 जुलाई, 2005 को अभियुक्त सं. 1 से 6 को भारतीय दंड संहिता की धारा 34 के साथ पठित धारा 498क और

304ख के अधीन अपराध के लिए दोषी ठहराते हुए पारित किए गए निर्णय को मान्य ठहराया जाता है किंतु अभियुक्त सं. 1 से 6 के विरुद्ध भारतीय दंड संहिता की धारा 34 के साथ पठित धारा 306 के अधीन अपराध से संबंधित निर्णय का भाग, जिसे उच्च न्यायालय द्वारा पारित किए गए निर्णय द्वारा अपास्त किया गया है, अपास्त किया जाता है । प्रत्यर्थियों-अभियुक्त सं. 1-शिवपूजन, अभियुक्त सं. 2-राजेन्द्र, अभियुक्त सं. 3-मालती देवी, अभियुक्त सं. 4-अनीता, अभियुक्त सं. 5-सुरेन्द्र और अभियुक्त सं. 6-विरेन्द्र को भारतीय दंड संहिता की धारा 34 के साथ पठित धारा 498क और 304ख के अधीन अपराध के लिए दंडादेश की शेष अवधि को भोगने के लिए तुरंत अभिरक्षा में लिया जाए ।

34. इन अपीलों को उपरोक्त सीमा तक मंजूर किया जाता है ।

अपीलें भागतः मंजूर की गईं ।

जस.

[2014] 4 उम. नि. प. 141

अतुल त्रिपाठी

बनाम

उत्तर प्रदेश राज्य और एक अन्य

22 जुलाई, 2014

न्यायमूर्ति एम. वाई. इकबाल और न्यायमूर्ति कुरियन जोसेफ

दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 (1974 का 2) – धारा 389 – उच्च न्यायालय द्वारा आजीवन कारावास से दोषसिद्ध-अपीलार्थी को जमानत पर छोड़ा जाना – अपीलार्थी द्वारा अपील के ज्ञापन और जमानत के लिए आवेदन की प्रति लोक अभियोजक को तामील किया जाना – उच्च न्यायालय द्वारा जमानत पर सुनवाई करने से पूर्व लोक अभियोजक को जमानत का विरोध करने का अवसर न दिया जाना – जहां दोषसिद्धि मृत्यु-दंड, आजीवन कारावास या दस वर्ष अथवा अधिक अवधि के कारावास से दंडनीय अपराध के लिए हो, वहां उसकी अपील के लंबित रहने के दौरान उसे जमानत पर छोड़े जाने से पूर्व अपील न्यायालय के लिए लोक अभियोजक को ऐसी जमानत के विरुद्ध लिखित में कारण

दर्शित करने का अवसर दिया जाना आज्ञापक है और लोक अभियोजक को केवल अपील के ज्ञापन और जमानत के आवेदन की प्रति तामील करने से धारा 389 के प्रथम परंतुक का समाधान नहीं हो जाता है ।

दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 – धारा 439 और 389 – जमानत पर छोड़ा जाना – धारा 439 के अधीन जमानत पर छोड़ा जाना पूर्व-दोषसिद्धि का प्रक्रम है और यदि अपराध अनन्य रूप से सेशन न्यायालय द्वारा विचारणीय है या अपराध के लिए दंड आजीवन कारावास है, तो अभियुक्त को जमानत पर छोड़े जाने से पूर्व लोक अभियोजक को केवल सूचना दिया जाना अपेक्षित है, किंतु धारा 389 के अधीन जमानत पर छोड़ा जाना दोषसिद्धि के पश्चात् का प्रक्रम है और मृत्यु दंड, आजीवन कारावास या दस वर्ष से अन्यून अवधि के कारावास के लिए दोषसिद्ध व्यक्ति को उसकी अपील के लंबित रहने के दौरान जमानत पर छोड़े जाने से पूर्व अपील न्यायालय द्वारा लोक अभियोजक को ऐसी जमानत के विरोध में लिखित में कारण दर्शित करने का अवसर दिया जाना आज्ञापक है ।

मामले में के प्राइवेट प्रत्यर्थियों को विचारण न्यायालय द्वारा भारतीय दंड संहिता की विभिन्न धाराओं के अधीन दोषसिद्ध किया गया था और आजीवन कारावास भोगने का दंडादेश दिया गया था । उनके द्वारा दोषसिद्धि के विरुद्ध उच्च न्यायालय में अपील फाइल की गई । उन्होंने अपील के लंबित रहने के दौरान जमानत पर छोड़े जाने का आवेदन दिया । अपील के ज्ञापन और जमानत पर छोड़े जाने के आवेदन की प्रति लोक अभियोजक को भी तामील की गई । लोक अभियोजक मामले में उपसंजात हुए और जमानत के आवेदन का विरोध किया । उच्च न्यायालय द्वारा प्राइवेट प्रत्यर्थियों को जमानत पर छोड़ दिया गया । शिकायतकर्ता द्वारा यह कथन करते हुए कि उच्च न्यायालय द्वारा दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 389 के उपबंधों का पालन नहीं किया गया था, उच्चतम न्यायालय में अपील फाइल की । उच्चतम न्यायालय द्वारा अपीलें मंजूर करते हुए,

अभिनिर्धारित – अपीलार्थी द्वारा लोक अभियोजक को अपील और जमानत के लिए आवेदन की प्रति की तामीली से दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 389 के प्रथम परंतुक की अपेक्षा का समाधान नहीं हो जाएगा । अपील न्यायालय यहां तक कि लोक अभियोजक को सुने बिना भी जमानत मंजूर करने से इनकार कर सकती है । तथापि, यदि अपील न्यायालय दोषसिद्ध व्यक्ति को जमानत पर छोड़ने की बात पर विचार करने के लिए तैयार

होता है, तो लोक अभियोजक को लिखित में वे कारण कि अपीलार्थी को क्यों जमानत पर न छोड़ा जाए, दर्शित करने का अवसर देना होगा । ऐसा कठोर उपबंध केवल यह सुनिश्चित करने के लिए पुरःस्थापित किया गया है कि न्यायालय को सभी सुसंगत बातों की जानकारी हो जाए जिससे कि न्यायालय उस रीति जिसमें अपराध किया गया है, अपराध की गंभीरता, दोषसिद्ध व्यक्ति की आयु, उसका आपराधिक इतिवृत्त, न्याय देने की प्रणाली में लोक विश्वास पर प्रभाव आदि को ध्यान में रखते हुए इस बात पर विचार कर सके कि क्या यह जमानत पर छोड़े जाने का एक समुचित मामला है या नहीं । लोक अभियोजक को ऐसा अवसर दिए जाने के बावजूद यदि लिखित में कोई कारण दर्शित नहीं किया जाता है तो अपील न्यायालय यह अभिलिखित करेगा कि राज्य ने लिखित में कोई आक्षेप फाइल नहीं किया है । इस प्रक्रिया का आशय पारदर्शिता सुनिश्चित करना और यह सुनिश्चित करना कि सांठ-गांठ का कोई अभिकथन न हो तथा यह सुनिश्चित करना है कि दोषसिद्धि के पश्चात् के प्रक्रम पर गंभीर अपराधों की बाबत जमानत मंजूर करने के लिए राज्य द्वारा सुसंगत बातों के विषय में सही और वास्तविक तथ्यों के साथ न्यायालय की उचित रूप से सहायता की गई है । विधिक स्थिति का सार यह है कि – (क) यदि अपील न्यायालय मृत्युदंड या आजीवन कारावास या दस वर्ष अथवा अधिक अवधि के कारावास से दंडादिष्ट किसी दोषसिद्ध व्यक्ति की जमानत पर छोड़ने की बात पर विचार करने के लिए तैयार होता है, तो पहले लोक अभियोजक को ऐसे छोड़े जाने के विरुद्ध लिखित में कारण दर्शित करने का अवसर देगा । (ख) ऐसा अवसर दिए जाने पर राज्य के लिए लिखित में अपने आक्षेप, यदि कोई हों, फाइल किया जाना अपेक्षित है । (ग) यदि लोक अभियोजक लिखित में आक्षेप फाइल नहीं करता है तो अपील न्यायालय अपने आदेश में यह विनिर्दिष्ट करेगा कि न्यायालय द्वारा अवसर प्रदान करने के बावजूद कोई आक्षेप फाइल नहीं किया गया था । (घ) न्यायालय जमानत पर छोड़ने का आदेश पारित करने से पूर्व सभी सुसंगत बातों जैसे अपराध की गंभीरता, अपराध की प्रकृति, दोषसिद्ध व्यक्ति की आयु, आपराधिक इतिवृत्त, न्यायालय में लोक विश्वास पर पड़ने वाले प्रभाव आदि पर विचार करेगा, चाहे आक्षेपों में इन्हें विनिर्दिष्ट किया गया हो या नहीं । स्वीकृततः, इन अपीलों में राज्य को ऐसा कोई अवसर प्रदान नहीं किया गया था जैसा कि दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 389 के प्रथम परंतुक में अनुध्यात है । इसलिए प्राइवेट प्रत्यर्थियों को जमानत पर छोड़े जाने की सीमा तक आक्षेपित आदेशों को अपास्त किया जाता है । उच्च न्यायालय

मामलों पर नए सिरे से विचार करेगा । (पैरा 15, 16 और 17)

दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 439, जो कि पूर्व-दोषसिद्धि का प्रक्रम है और धारा 389, जो कि दोषसिद्धि के पश्चात् का प्रक्रम है, के अधीन जमानत पर विचार करने की प्रक्रिया के बीच एक सुस्पष्ट अंतर है । धारा 439 की दशा में, संहिता में केवल यह उपबंधित है कि किसी व्यक्ति को, जो ऐसे अपराध का अभियुक्त है जो अनन्य रूप से सेशन न्यायालय द्वारा विचारणीय है या जहां अपराध के लिए दंड आजीवन कारावास है, जमानत मंजूर करने से पूर्व लोक अभियोजक को, जब तक कि अव्यवहारिक न हो, सूचना दी जानी चाहिए; जबकि दोषसिद्धि के पश्चात् दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 389 के अधीन जमानत की दशा में जहां दोषसिद्धि ऐसे गंभीर अपराध की बाबत है जिसके लिए मृत्युदंड या आजीवन कारावास या दस वर्ष से अन्यून अवधि के कारावास का दंड दिया गया है, वहां यह आज्ञापक है कि अपील न्यायालय लोक अभियोजक को ऐसे छोड़े जाने के विरुद्ध लिखित में कारण दर्शित करने का अवसर देगा । (पैरा 14)

अपीली (दांडिक) अधिकारिता : 2014 की दांडिक अपील सं. 1516 (इसके साथ 2014 की दांडिक अपील सं. 1517 और 1518 भी सुनी गई ।)

2012 की दांडिक अपील सं. 3239 में इलाहाबाद उच्च न्यायालय द्वारा तारीख 29 अगस्त, 2012 को पारित किए गए निर्णय और आदेश के विरुद्ध अपील ।

अपीलार्थी की ओर से सर्वश्री अशोक पाणिग्रह, आर. एन. त्रिपाठी, संतोष कुमार, (सुश्री) अश्मि मोहन और तुलेका मुखर्जी (मैसर्स अनुराधा एंड एसोसिएट्स की ओर से)

प्रत्यर्थियों की ओर से सर्वश्री आर. के. दास, प्रमोद स्वरूप, ज्येष्ठ अधिवक्तागण और उनके साथ शिबो शंकर मिश्रा, परीना स्वरूप, अमित सिंह, (सुश्री) अल्का सिन्हा, अणुव्रत शर्मा और तुलेका मुखर्जी (मैसर्स अनुराधा एंड एसोसिएट्स की ओर से)

न्यायालय का निर्णय न्यायमूर्ति कुरियन जोसेफ ने दिया ।

न्या. जोसेफ – इजाजत दी गई ।

2. इन अपीलों में विचार करने के लिए विवाद्यक यह है कि दोषसिद्धि के पश्चात् के प्रक्रम पर क्या अपील न्यायालय को दोषसिद्ध व्यक्ति को जमानत पर छोड़े जाने पर विचार करते समय लोक अभियोजक को ऐसे छोड़े जाने के विरुद्ध लिखित में कारण दर्शित करने का अवसर देना चाहिए जहां दोषसिद्धि ऐसे अपराध के लिए है जो मृत्यु या आजीवन कारावास या दस वर्ष से अन्यून अवधि के कारावास से दंडनीय है ।

3. सभी प्राइवेट प्रत्यर्थियों को अपर सेशन न्यायाधीश, आज़मगढ़ के न्यायालय द्वारा भारतीय दंड संहिता (1860 का 45) की धारा 147, 148, 149 के साथ पठित धारा 302, 120ख तथा दांडिक विधि (संशोधन) अधिनियम, 2013 की धारा 7 के अधीन दोषसिद्ध किया गया और उन्हें जुर्माने के साथ आजीवन कारावास का दंडादेश दिया गया । कुल मिलाकर सात अभियुक्त दोषसिद्ध किए गए, तथापि, जमानत केवल चार अभियुक्तों को दी गई ।

4. अपीलार्थी की मुख्य दलील यह है कि अभियुक्तों को जमानत पर छोड़ने के समय धारा 389 के परंतुक के अधीन अनुध्यात प्रक्रिया का पालन नहीं किया गया, इसलिए उच्च न्यायालय द्वारा पारित किए गए आदेश को अपास्त किया जाना चाहिए । तुरंत संदर्भ के प्रयोजन के लिए हम उच्च न्यायालय द्वारा तारीख 29 अगस्त, 2012 को पारित किए गए आक्षेपित आदेश को उद्धृत करेंगे, जो निम्नलिखित प्रकार से है :–

> "अपीलार्थी की ओर से विद्वान् काउंसेल श्री राजीव मिश्रा के साथ-साथ राज्य की ओर से विद्वान् अपर सरकारी अधिवक्ता श्री ए. एन. मुल्ला को भी सुना । हमने इत्तिलाकर्ता की ओर से हाजिर होने वाले विद्वान् ज्येष्ठ काउंसेल श्री विरेश मिश्रा, जिनकी श्री राहुल मिश्रा द्वारा सहायता की गई, को भी सुना ।
>
> इस अपील पर सुनवाई की जाएगी ।
>
> 2006 के सेशन विचारण सं. 435 का निचले न्यायालय का अभिलेख अपर सेशन न्यायाधीश, न्यायालय सं. 2, आज़मगढ़ से मंगाया जाए, जो चार सप्ताह की अधिकतम अवधि में अवश्य उपलब्ध किया जाए ।

जमानत देने के अनुरोध के विषय में दलील यह है कि वर्तमान अपीलार्थी श्याम नारायण पांडे के साथ-साथ अन्य दोषसिद्ध लक्ष्मी नारायण पांडे के विरुद्ध प्रथम इत्तिला रिपोर्ट में तथा साक्ष्य में भी यह अभिकथन किए गए थे कि वे एक यान में बैठे हुए थे और बात करते हुए वहां से जा रहे थे और उसके उपरांत गोलियां तीन अन्य अभियुक्तों द्वारा चलाई गई थीं ।

दलीलों पर विचार किया गया, अपीलार्थी श्याम नारायण पांडे को अपील के लंबित रहने के दौरान 2006 के सेशन विचारण सं. 435, 436 और 437 के संबंध में अपर सेशन न्यायाधीश, न्यायालय सं. 2, आज़मगढ़ के समाधानप्रद 20,000/- रुपए का बंधपत्र और इतनी ही रकम के दो अलग-अलग प्रतिभू प्रस्तुत करने पर जमानत पर छोड़ दिया जाए ।

जहां तक ऊपर उल्लिखित अपीलार्थी पर अधिरोपित जुर्माने के दंडादेश का संबंध है, उसकी वसूली रोक दी जाएगी ।

आदेश तारीख 29.8.2012

हस्ता./- धरनीधर झा, न्यायाधीश

हस्ता./- अशोक पाल सिंह, न्यायाधीश"

5. तत्पश्चात्, तारीख 5 सितम्बर, 2012 के आदेश में यह स्पष्ट किया गया कि लक्ष्मी नारायण पांडे को भी उक्त आदेश के अंतर्गत लाया जाए । उमेश कुमार पांडे और रमेश कुमार पांडे के मामले में आदेश निम्नलिखित है :–

"यह अपील 2012 की दांडिक अपील सं. 3239 के साथ सुनी जाएगी जिसमें हमने विद्वान् विचारण न्यायालय का अभिलेख मंगाया है ।

अपीलार्थियों की ओर से हाजिर होने वाले विद्वान् ज्येष्ठ काउंसेल श्री सतीश त्रिवेदी और इत्तिलाकर्ता की ओर से हाजिर होने वाले विद्वान् काउंसेल श्री राहुल शर्मा तथा राज्य की ओर से अपर सरकारी अधिवक्ता को भी सुना ।

जमानत देने के अनुरोध के विषय में दलील यह है कि लक्ष्मी नारायण पांडे अपीलार्थी सं. 1 का मामला सह-दोषसिद्ध श्याम नारायण पांडे के मामले के समान है । शेष दो अपीलार्थियों अर्थात्

उमेश कुमार पांडे और रमेश कुमार पांडे के विषय में दलील यह है कि सिवाय इसके कि वे भी अन्य अभियुक्तों के साथ बोलेरो यान से उतरे थे, उनके विरुद्ध कोई और अभिकथन नहीं हैं ।

दलीलों और साक्ष्य, जिसकी आक्षेपित निर्णय में चर्चा की गई है, पर विचार करने के पश्चात्, हम अपीलार्थी अर्थात् उमेश कुमार पांडे और रमेश कुमार पांडे को अपील के लंबित रहने के दौरान 2006 के सेशन विचारण सं. 435, 436 और 437 के संबंध में अपर सेशन न्यायाधीश, न्यायालय सं. 2, आज़मगढ़ के समाधानप्रद 20,000/- रुपए का बंधपत्र और इतनी ही रकम के दो अलग-अलग प्रतिभू प्रस्तुत करने पर जमानत पर छोड़ने का निदेश देते हैं ।

जहां तक ऊपर उल्लिखित अपीलार्थी पर अधिरोपित जुर्माने के दंडादेश का संबंध है, आगामी आदेशों तक उसकी वसूली रोक दी जाएगी ।

आदेश तारीख 29.8.2012"

6. दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 (जिसे इसमें इसके पश्चात् "दंड प्रक्रिया संहिता" कहा गया है) की धारा 389 निम्नलिखित है :–

"**धारा 389. अपील लंबित रहने तक दंडादेश का निलम्बन ; अपीलार्थी का जमानत पर छोड़ा जाना** – (1) अपील न्यायालय, ऐसे कारणों से, जो उसके द्वारा अभिलिखित किए जाएंगे, आदेश दे सकता है कि उस दंडादेश या आदेश का निष्पादन, जिसके विरुद्ध अपील की गई है, दोषसिद्ध व्यक्ति द्वारा की गई अपील के लंबित रहने तक निलंबित किया जाए और यदि वह व्यक्ति परिरोध में है तो यह भी आदेश दे सकता है कि उसे जमानत पर या उसके अपने बंधपत्र पर छोड़ दिया जाए :

परन्तु अपील न्यायालय ऐसे दोषसिद्ध व्यक्ति को, जो मृत्यु या आजीवन कारावास या दस वर्ष से अन्यून अवधि के कारावास से दंडनीय किसी अपराध के लिए दोषसिद्ध किया गया है, जमानत पर या उसके अपने बंधपत्र पर छोड़ने से पूर्व, लोक अभियोजक को ऐसे छोड़ने के विरुद्ध लिखित में कारण दर्शाने का अवसर देगा :

परन्तु यह और कि ऐसे मामलों में, जहां किसी दोषसिद्ध व्यक्ति को जमानत पर छोड़ा जाता है वहां लोक अभियोजक जमानत रद्द

किए जाने के लिए आवेदन फाइल कर सकेगा ।

(2) अपील न्यायालय को इस धारा द्वारा प्रदत्त शक्ति का प्रयोग उच्च न्यायालय भी किसी ऐसी अपील के मामले में कर सकता है जो किसी दोषसिद्ध व्यक्ति द्वारा उसके अधीनस्थ न्यायालय में की गई है ।

(3) जहां दोषसिद्ध व्यक्ति ऐसे न्यायालय का जिसके द्वारा वह दोषसिद्ध किया गया है यह समाधान कर देता है कि वह अपील प्रस्तुत करना चाहता है वहां वह न्यायालय, –

(i) उस दशा में जब ऐसा व्यक्ति, जमानत पर होते हुए, तीन वर्ष से अनधिक की अवधि के लिए कारावास से दंडादिष्ट किया गया है, या

(ii) उस दशा में जब वह अपराध, जिसके लिए ऐसा व्यक्ति दोषसिद्ध किया गया है, जमानतीय है और वह जमानत पर है,

यह आदेश देगा कि दोषसिद्ध व्यक्ति को इतनी अवधि के लिए जितनी से अपील प्रस्तुत करने और उपधारा (1) के अधीन अपील न्यायालय के आदेश प्राप्त करने के लिए पर्याप्त समय मिल जाएगा जमानत पर छोड़ दिया जाए जब तक कि जमानत से इनकार करने के विशेष कारण न हों और जब तक वह ऐसे जमानत पर छूटा रहता है तब तक कारावास का दंडादेश निलम्बित समझा जाएगा ।

(4) जब अंततोगत्वा अपीलार्थी को किसी अवधि के कारावास या आजीवन कारावास का दंडादेश दिया जाता है, तब वह समय, जिसके दौरान वह ऐसे छूटा रहता है, उस अवधि की संगणना करने में, जिसके लिए उसे ऐसा दंडादेश दिया गया है, हिसाब में नहीं लिया जाएगा ।"

(बल देने के लिए रेखांकित)

7. चूंकि दलील उच्च न्यायालय द्वारा तारीख 24 मार्च, 2004 को अपनाई गई त्रुटियुक्त प्रक्रिया पर दी गई है, इसलिए इस न्यायालय ने प्रत्यर्थियों को निदेश दिया कि वे शपथपत्र पर कथन करें कि :–

" .... क्या उच्च न्यायालय द्वारा आक्षेपित जमानत आदेश पारित

करने से पूर्व लोक अभियोजक को दोषसिद्ध व्यक्ति को प्रस्तावित जमानत पर छोड़ने के विरुद्ध लिखित में कारण दर्शित करने का अवसर देने के लिए दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 389 के प्रथम परंतुक का पालन किया गया था ।"

8. राज्य ने तारीख 24 अप्रैल, 2014 को शपथपत्र फाइल किया । शपथपत्र का पैरा 5 निम्नलिखित है :–

"इस संबंध में सादर यह निवेदन है कि प्राप्त जानकारी के अनुसार राज्य के काउंसेल को लिखित में कारण दर्शित करने का कोई अवसर नहीं दिया गया था यद्यपि उक्त तारीख को राज्य के काउंसेल उपसंजात हुए थे ।"

(बल देने के लिए रेखांकित)

9. द्वितीय प्रत्यर्थी की ओर से तारीख 12 अप्रैल, 2004 को एक शपथपत्र फाइल किया गया जिसके पैरा 2 और 3 में निम्नलिखित कथन किया गया है :–

"2. .... इस संदर्भ में यह उल्लेख किया जा सकता है कि प्रत्यर्थी सं. 2 से 4 ने विचारण न्यायालय द्वारा अभिलिखित किए गए दोषसिद्धि के निर्णय और आदेश को चुनौती देने के लिए अपील की सूचना राज्य के काउंसेल को तारीख 31 अगस्त, 2012 को दी गई थी । सूचना में अपील का ज्ञापन और जमानत के लिए आवेदन समाविष्ट हैं । तदुपरांत, अपील और जमानत के लिए आवेदन फाइल किए गए थे । राज्य के काउंसेल को दी गई पूर्ववर्ती सूचना दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 389 में यथा उपबंधित विधि की अपेक्षा के अनुपालन में थी जिससे कि राज्य जमानत के लिए निवेदन पर लिखित में अपनी बात कहने के लिए समर्थ हो सके ।

3. अपील (दांडिक अपील सं. 3404/2012) और जमानत के लिए आवेदन तारीख 5 सितम्बर, 2014 के लिए सूचीबद्ध किए गए थे । राज्य के साथ-साथ शिकायतकर्ता, इसमें के याची, का प्रतिनिधित्व करते हुए काउंसेल उपसंजात हुए और जमानत के लिए प्रत्यर्थी के निवेदन का विरोध किया । प्रत्यर्थी सं. 2 से 4, राज्य तथा शिकायतकर्ता, के काउंसेलों को सुनने के पश्चात् माननीय उच्च न्यायालय ने आक्षेपित आदेश पारित किया (किए).....।"

(बल देने के लिए रेखांकित)

10. प्राइवेट प्रत्यर्थियों की ओर से विद्वान् काउंसेल ने यह दलील दी कि अपीलार्थियों ने लोक अभियोजक को अपील और जमानत के लिए आवेदन की प्रतियां दी थीं और चूंकि जब अपील ग्रहण करने के लिए प्रस्तुत की गई थी उस दिन लोक अभियोजक को सुना गया था, इसलिए दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 389 के प्रथम परंतुक का पालन किया गया है । लोक अभियोजक मामले में उपसंजात हुए थे और जमानत के लिए आवेदन का विरोध किया था, इसलिए कारण दर्शित करने के लिए अवसर देने की कानूनी अपेक्षा का समाधान किया गया है ।

11. धारा 389 का परंतुक भारत के विधि आयोग की वर्ष 1996 में प्रस्तुत की गई 154वीं रिपोर्ट के अनुसरण में पुरःस्थापित किया गया था । संशोधन 2005 के अधिनियम सं. 25 द्वारा पुरःस्थापित किए गए थे और वे तारीख 23 जून, 2006 से प्रवृत्त हुए थे । विधि आयोग ने दो परंतुक जोड़ने की सिफारिश की थी । यह सिफारिश निम्नलिखित है :–

> "47. संहिता की धारा 389 की उपधारा (1) में इस आशय के दो परंतुक जोड़े जाएं कि अपील न्यायालय किसी ऐसे दोषसिद्ध व्यक्ति को, यदि उसे मृत्युदंड, आजीवन कारावास या दस वर्ष से अन्यून अवधि के कारावास से दंडनीय अपराध के लिए दोषसिद्ध किया गया है, जमानत पर छोड़ने के पूर्व अभियोजन पक्ष को सूचना देगा और अभियोजन पक्ष को अपील न्यायालय द्वारा मंजूर की गई जमानत के रद्दकरण के लिए आवेदन देने के लिए भी समर्थ बनाएगा ।"

12. तथापि, विधेयक में इस आशय का एक और उपांतरण सुझाया गया कि छोड़े जाने के विरुद्ध लोक अभियोजक को लिखित में कारण दर्शित करने का अवसर दिया जाए और इस प्रकार धारा 389(1) के अधीन परंतुकों को स्थापित किया गया ।

13. धारा 389 दंड प्रक्रिया संहिता के अध्याय 29, जो अपीलों के संबंध में है, के अधीन उपबंधित है । दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 439 दंड प्रक्रिया संहिता के अध्याय 33 के अधीन उपबंधित है, जिसमें किसी अभियुक्त को जमानत पर रिहा करने से संबंधित उच्च न्यायालय या सेशन न्यायालय की विशेष शक्तियों का उपबंध है । धारा 439(1) का भी एक परंतुक है । धारा 439 निम्नलिखित प्रकार से है :–

> "**439. जमानत के बारे में उच्च न्यायालय या सेशन न्यायालय**

की विशेष शक्तियां – (1) उच्च न्यायालय या सेशन न्यायालय यह निदेश दे सकता है कि –

(क) किसी ऐसे व्यक्ति को, जिस पर किसी अपराध का अभियोग है और जो अभिरक्षा में है, जमानत पर छोड़ दिया जाए और यदि अपराध धारा 437 की उपधारा (3) में विनिर्दिष्ट प्रकार का है, तो वह ऐसी कोई शर्त, जिसे वह उस उपधारा में वर्णित प्रयोजनों के लिए आवश्यक समझे, अधिरोपित कर सकता है ;

(ख) किसी व्यक्ति को जमानत पर छोड़ने के समय मजिस्ट्रेट द्वारा अधिरोपित कोई शर्त अपास्त या उपांतरित कर दी जाए :

परन्तु उच्च न्यायालय या सेशन न्यायालय किसी ऐसे व्यक्ति की, जो ऐसे अपराध का अभियुक्त है जो अनन्यतः सेशन न्यायालय द्वारा विचारणीय है, या जो यद्यपि इस प्रकार विचारणीय नहीं है, आजीवन कारावास से दंडनीय है, जमानत लेने के पूर्व जमानत के लिए आवेदन की सूचना लोक अभियोजक को उस दशा के सिवाय देगा जब उसकी, ऐसे कारणों से, जो लेखबद्ध किए जाएंगे यह राय है कि ऐसी सूचना देना साध्य नहीं है ।

(2) उच्च न्यायालय या सेशन न्यायालय, किसी ऐसे व्यक्ति को, जिसे इस अध्याय के अधीन जमानत पर छोड़ा जा चुका है, गिरफ्तार करने का निदेश दे सकता है और उसे अभिरक्षा के लिए सुपुर्द कर सकता है ।"

14. यह देखा जा सकता है कि दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 439, जो कि पूर्व-दोषसिद्धि का प्रक्रम है और धारा 389, जो कि दोषसिद्धि के पश्चात् का प्रक्रम है, के अधीन जमानत पर विचार करने की प्रक्रिया के बीच एक सुस्पष्ट अंतर है । धारा 439 की दशा में, संहिता में केवल यह उपबंधित है कि किसी व्यक्ति को, जो ऐसे अपराध का अभियुक्त है जो अनन्य रूप से सेशन न्यायालय द्वारा विचारणीय है या जहां अपराध के लिए दंड आजीवन कारावास है, जमानत मंजूर करने से पूर्व लोक अभियोजक को, जब तक कि अव्यवहारिक न हो, सूचना दी जानी चाहिए ; जबकि दोषसिद्धि के पश्चात् दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 389 के अधीन जमानत की दशा में जहां दोषसिद्धि ऐसे गंभीर अपराध की बाबत है जिसके लिए मृत्युदंड या आजीवन कारावास या दस वर्ष से अन्यून अवधि के कारावास

का दंड दिया गया है, वहां यह आज्ञापक है कि अपील न्यायालय लोक अभियोजक को ऐसे छोड़े जाने के विरुद्ध लिखित में कारण दर्शित करने का अवसर देगा ।

15. अपीलार्थी द्वारा लोक अभियोजक को अपील और जमानत के लिए आवेदन की प्रति की तामीली से दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 389 के प्रथम परंतुक की अपेक्षा का समाधान नहीं हो जाएगा । अपील न्यायालय यहां तक कि लोक अभियोजक को सुने बिना भी जमानत मंजूर करने से इनकार कर सकती है । तथापि, यदि अपील न्यायालय दोषसिद्ध व्यक्ति की जमानत पर छोड़ने की बात पर विचार करने के लिए तैयार है, तो लोक अभियोजक को लिखित में वे कारण कि अपीलार्थी को क्यों जमानत पर न छोड़ा जाए दर्शित करने का अवसर देना होगा । ऐसा कठोर उपबंध केवल यह सुनिश्चित करने के लिए पुरःस्थापित किया गया है कि न्यायालय को सभी सुसंगत बातों की जानकारी हो जाए जिससे कि न्यायालय उस रीति जिसमें अपराध किया गया है, अपराध की गंभीरता, दोषसिद्ध व्यक्ति की आयु, उसका आपराधिक इतिवृत्त, न्याय देने की प्रणाली में लोक विश्वास पर प्रभाव आदि को ध्यान में रखते हुए इस बात पर विचार कर सके कि क्या यह जमानत पर छोड़े जाने के लिए एक समुचित मामला है या नहीं । लोक अभियोजक को ऐसा अवसर दिए जाने के बावजूद यदि लिखित में कोई कारण दर्शित नहीं किया जाता है तो अपील न्यायालय यह अभिलिखित करेगा कि राज्य ने लिखित में कोई आक्षेप फाइल नहीं किया है । इस प्रक्रिया का आशय पारदर्शिता सुनिश्चित करना और यह सुनिश्चित करना कि सांठ-गांठ का कोई अभिकथन न हो तथा यह सुनिश्चित करना कि दोषसिद्धि के पश्चात् के प्रक्रम पर गंभीर अपराधों की बाबत जमानत मंजूर करने के लिए राज्य द्वारा सुसंगत बातों के विषय में सही और वास्तविक तथ्यों के साथ न्यायालय की उचित रूप से सहायता की गई है ।

16. विधिक स्थिति का सार यह है कि :–

क. यदि अपील न्यायालय मृत्युदंड या आजीवन कारावास या दस वर्ष अथवा अधिक अवधि के कारावास से दंडादिष्ट किसी दोषसिद्ध व्यक्ति की जमानत पर छोड़ने की बात पर विचार करने के लिए तैयार है, तो पहले लोक अभियोजक को ऐसे छोड़े जाने के विरुद्ध लिखित में कारण दर्शित करने का अवसर देगा ।

ख. ऐसा अवसर दिए जाने पर राज्य के लिए लिखित में अपने

आक्षेप, यदि कोई हों, फाइल किया जाना अपेक्षित है ।

ग. यदि लोक अभियोजक लिखित में आक्षेप फाइल नहीं करता है तो अपील न्यायालय अपने आदेश में यह विनिर्दिष्ट करेगा कि न्यायालय द्वारा अवसर प्रदान करने के बावजूद कोई आक्षेप फाइल नहीं किया गया था ।

घ. न्यायालय जमानत पर छोड़ने का आदेश पारित करने से पूर्व सभी सुसंगत बातों जैसे अपराध की गंभीरता, अपराध की प्रकृति, दोषसिद्ध व्यक्ति की आयु, आपराधिक इतिवृत्त, न्यायालय में लोक विश्वास पर पड़ने वाले प्रभाव आदि पर विचार करेगा, चाहे आक्षेपों में इन्हें विनिर्दिष्ट किया गया हो या नहीं ।

17. स्वीकृततः, इन अपीलों में राज्य को ऐसा कोई अवसर प्रदान नहीं किया गया था जैसा कि दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 389 के प्रथम परंतुक में अनुध्यात है । इसलिए प्राइवेट प्रत्यर्थियों को छोड़े जाने की सीमा तक आक्षेपित आदेशों को अपास्त किया जाता है । उच्च न्यायालय मामलों पर नए सिरे से विचार करेगा । यह कहने की आवश्यकता नहीं है कि 2013 की विशेष इजाजत याचिका (दांडिक) सं. 261 द्वारा उद्भूत 2014 की दांडिक अपील सं. 1516 में प्रत्यर्थी सं. 2 श्याम नारायण पांडे और लक्ष्मी नारायण पांडे, 2013 की विशेष इजाजत याचिका (दांडिक) सं. 262-263 द्वारा उद्भूत 2014 की दांडिक अपील सं. 1517-18 में प्रत्यर्थी सं. 3 उमेश कुमार पांडे और प्रत्यर्थी सं. 4 रमेश कुमार पांडे तीन सप्ताह के भीतर विचारण न्यायालय के समक्ष अभ्यर्पण करेंगे और यदि वे अभ्यर्पण नहीं करते हैं तो उन्हें अभिरक्षा में लिया जाएगा । उसके पश्चात् उच्च न्यायालय उनके जमानत के आवेदनों पर ऊपर यथा स्पष्टीकृत दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 389 के परंतुक के अनुसार प्रक्रिया का अनुसरण करने के पश्चात् तत्परतापूर्वक नए सिरे से विचार करेगा ।

18. ये अपीलें उपरोक्त अनुसार मंजूर की जाती हैं ।

अपीलें मंजूर की गईं ।

जस.

गतांक से आगे.....

अध्याय 3
संरक्षकों के कर्तव्य, अधिनियम और दायित्व
साधारण

20. **संरक्षक का प्रतिपाल्य से वैश्वासिक संबंध** – (1) संरक्षक का अपने प्रतिपाल्य से वैश्वासिक सम्बन्ध होता है और विल या अन्य लिखत द्वारा, यदि कोई हो, जिसमें वह नियुक्त किया गया है, या इस अधिनियम द्वारा, यथा उपबंधित के सिवाय, वह अपने पद से कोई लाभ नहीं उठाएगा ।

(2) अपने प्रतिपाल्य के प्रति संरक्षक के इस वैश्वासिक सम्बन्ध का विस्तार और प्रभाव संरक्षक द्वारा प्रतिपाल्य की सम्पत्ति के, और प्रतिपाल्य द्वारा संरक्षक की सम्पत्ति के ऐसे क्रयों पर होता है, जो प्रतिपाल्य की अप्राप्तवयता समाप्त होने के अव्यवहित या शीघ्र पश्चात् किए गए हैं, और साधारणतया उनके बीच तब किए गए सब संव्यवहारों पर होता है, जब संरक्षक का असर बना हुआ था या कुछ ही पहले तक बना रहा था ।

21. **संरक्षक के तौर पर कार्य करने की अप्राप्तवय की सामर्थ्य** – अप्राप्तवय, अपनी पत्नी या सन्तान के, या जहां कि वह अविभक्त हिन्दू कुटुम्ब का कर्ता है वहां उस कुटुम्ब के दूसरे अप्राप्तवय सदस्य की पत्नी या सन्तान के संरक्षक के तौर पर कार्य करने के सिवाय किसी भी अप्राप्तवय के संरक्षक के तौर पर कार्य करने के लिए अक्षम है ।

22. **संरक्षक का पारिश्रमिक** – (1) न्यायालय द्वारा नियुक्त या घोषित संरक्षक उस भत्ते का, यदि कोई हो, हकदार होगा, जिसे न्यायालय उसके कर्तव्यों के निष्पादन में उसकी सतर्कता और परिश्रम के लिए ठीक समझे ।

(2) जब कि सरकार का कोई आफिसर ऐसे आफिसर की हैसियत में, ऐसा संरक्षक होने के लिए नियुक्त या घोषित किया जाता है, तब प्रतिपाल्य की सम्पत्ति में से सरकार को ऐसी फीसें दी जाएंगी जैसी राज्य सरकार साधारण या विशेष आदेश द्वारा निर्दिष्ट करे ।

23. **संरक्षक के तौर पर कलक्टर पर नियंत्रण** – न्यायालय द्वारा अप्राप्तवय के शरीर या संपत्ति, या दोनों का संरक्षक होने के लिए नियुक्त या घोषित कलक्टर, अपने प्रतिपाल्य की संरक्षकता से सम्बन्धित, सब बातों में राज्य सरकार के या उस प्राधिकारी के, जैसा वह सरकार शासकीय राजपत्र में

अधिसूचना[1] द्वारा इस निमित्त नियुक्त करे, नियंत्रण के अध्यधीन होगा ।

शरीर का संरक्षक

24. **शरीर के संरक्षक के कर्तव्य** – प्रतिपाल्य के शरीर के संरक्षक पर प्रतिपाल्य की अभिरक्षा का भार है और उसे उसके संभाल, स्वास्थ्य और शिक्षा की और प्रतिपाल्य जिस विधि के अध्यधीन है उस द्वारा अपेक्षित अन्य बातों की ओर ध्यान देना होगा ।

25. **प्रतिपाल्य की अभिरक्षा का संरक्षक का हक** – (1) यदि प्रतिपाल्य अपने शरीर के संरक्षक की अभिरक्षा को छोड़ देता है या उससे हटा दिया जाता है, तो, यदि न्यायालय इस राय का है कि प्रतिपाल्य के लिए यह कल्याणकर होगा कि वह संरक्षक की अभिरक्षा में लौट आए, तो वह उसके लौट आने के लिए आदेश कर सकेगा और उस आदेश का प्रवर्तन कराने के प्रयोजन से प्रतिपाल्य को गिरफ्तार करा सकेगा और संरक्षक की अभिरक्षा में रखे जाने के लिए उसे परिदत्त करा सकेगा ।

(2) प्रतिपाल्य की गिरफ्तारी के प्रयोजन से न्यायालय दंड प्रक्रिया संहिता, 1882 (1882 का 10)[2] की धारा 100 द्वारा प्रथम वर्ग मजिस्ट्रेट को प्रदत्त शक्ति का प्रयोग कर सकेगा ।

(3) ऐसे व्यक्ति के पास, जो उसका संरक्षक नहीं है, प्रतिपाल्य का अपने संरक्षक की इच्छा के विरुद्ध निवास, स्वतः संरक्षकता का पर्यवसान नहीं कर देता ।

26. **प्रतिपाल्य का अधिकारिता से हटाया जाना** – (1) जो व्यक्ति न्यायालय द्वारा शरीर का संरक्षक नियुक्त या घोषित है, जब तक वह कलक्टर न हो अथवा विल या अन्य लिखत द्वारा नियुक्त संरक्षक न हो, वह उस न्यायालय की इजाजत के बिना जिसके द्वारा वह नियुक्त या घोषित किया गया था प्रतिपाल्य को उन प्रयोजनों के सिवाय, जो विहित किए जाएं, उस न्यायालय की अधिकारिता की सीमाओं से बाहर नहीं हटाएगा ।

(2) न्यायालय द्वारा उपधारा (1) के अधीन अनुदत्त इजाजत विशेष या साधारण हो सकेगी, और उसे अनुदत्त करने वाले आदेश द्वारा परिभाषित की

---

[1] नियुक्ति करने वाले ऐसे प्राधिकारियों की बाबत अधिसूचनाओं के लिए जिनके नियंत्रण में अधिनियम के अधीन नियुक्त आयुक्त होंगे, देखिए विभिन्न स्थानीय नियम और आदेश ।

[2] अब देखिए दंड प्रक्रिया संहिता, 1898 (1898 का 5) ।

जा सकेगी ।

संपत्ति का संरक्षक

27. **सम्पत्ति के संरक्षक के कर्तव्य** – प्रतिपाल्य की सम्पत्ति का संरक्षक उस सम्पत्ति से ऐसी सतर्कता से बरतने के लिए आबद्ध है, जैसी से मामूली प्रज्ञा वाला व्यक्ति उससे बरतता यदि वह सम्पत्ति उसी की अपनी होती, और इस अध्याय के उपबंधों के अध्यधीन यह है कि वह वे सब कार्य कर सकेगा जो उसे सम्पत्ति के आपन, संरक्षा या फायदे के लिए युक्तियुक्त और उचित हैं ।

28. **वसीयती संरक्षक की शक्तियां** – जहां कि संरक्षक विल या अन्य लिखत द्वारा नियुक्त किया गया है वहां अपने प्रतिपाल्य की स्थावर सम्पत्ति को बंधक या भारित करने या विक्रय, दान, विनिमय द्वारा या अन्यथा अन्तरित करने की उसकी शक्ति, उस निर्बन्धन के अध्यधीन, जो लिखत द्वारा अधिरोपित किया गया हो, तब के सिवाय होगी जब कि वह इस अधिनियम के अधीन संरक्षक घोषित कर दिया गया है और उस घोषणा को करने वाले न्यायालय ने लिखित आदेश द्वारा वह स्थावर सम्पत्ति जो उस आदेश में विनिर्दिष्ट हो, आदेश द्वारा अनुज्ञात रीति से व्ययनित करने के लिए अनुज्ञा ऐसे निबंधन के होते हुए भी दे दी है ।

29. **न्यायालय द्वारा नियुक्त या घोषित किए गए सम्पत्ति के संरक्षक की शक्तियों की परिसीमा** – जहां कि कलक्टर से, या विल या अन्य लिखत द्वारा नियुक्त संरक्षक से विभिन्न कोई व्यक्ति प्रतिपाल्य की सम्पत्ति का संरक्षक होने के लिए न्यायालय द्वारा नियुक्त या घोषित किया गया है, वहां वह न्यायालय की पूर्व अनुज्ञा के बिना, –

(क) अपने प्रतिपाल्य की स्थावर सम्पत्ति के किसी भी भाग को बंधक या भारित नहीं करेगा, या विक्रय, दान, विनिमय द्वारा, या अन्यथा अन्तरित नहीं करेगा, अथवा

(ख) उस सम्पत्ति के किसी भाग को पांच वर्ष से अधिक की अवधि के लिए, या उस तारीख से, जिसको वह प्रतिपाल्य अप्राप्तवय न रहेगा, आगे एक वर्ष तक विस्तृत किसी अवधि के लिए पट्टे पर नहीं देगा ।

30. **धारा 28 या धारा 29 के उल्लंघन में किए गए अन्तरणों की शून्यकरणीयता** – संरक्षक द्वारा दोनों अन्तिम पूर्वगामी धाराओं में से किसी के उल्लंघन में स्थावर सम्पत्ति का व्ययन तद्द्वारा प्रभारित किसी भी अन्य व्यक्ति की प्रेरणा पर शून्यकरणीय है ।

31. **धारा 29 के अधीन अन्तरणों के लिए अनुज्ञा देने विषयक पद्धति** – (1) संरक्षक को धारा 29 में वर्णित कार्यों में से किसी को करने की अनुज्ञा न्यायालय आवश्यकता की दशा में देने के सिवाय या तब देने के सिवाय जबकि वह प्रतिपाल्य की सुव्यक्त भलाई के लिए हों, न देगा ।

(2) अनुज्ञा प्रदान करने वाले आदेश में, यथास्थिति, आवश्यकता या भलाई का परिवर्णन होगा, उस सम्पत्ति का वर्णन होगा जिसके सम्बन्ध में अनुज्ञा कार्य किया जाता है, और ऐसी शर्तें, यदि कोई हों, विनिर्दिष्ट होंगी, जैसी न्यायालय अनुज्ञा से संलग्न करना ठीक समझे, और वह उस न्यायालय के न्यायाधीश द्वारा स्वयं अपने हाथ से अभिलिखित, दिनांकित और हस्ताक्षरित किया जाएगा अथवा जब किसी कारण से वह हाथ से आदेश को अभिलिखित करने से निवारित हो तब वह उसके बोलने के अनुसार लिखा जाएगा तथा उस द्वारा दिनांकित और हस्ताक्षरित किया जाएगा ।

(3) न्यायालय अनुज्ञा के साथ स्वविवेक में शर्तें संलग्न कर सकेगा जिनमें अन्य शर्तों के अतिरिक्त निम्नलिखित शर्तें भी हो सकेंगी, अर्थात् :–

(क) यह कि विक्रय न्यायालय की मंजूरी के बिना पूर्ण नहीं किया जाएगा ;

(ख) यह कि विक्रय उस आशयित विक्रय की ऐसी उद्घोषणा के पश्चात् जैसी उच्च न्यायालय द्वारा इस अधिनियम के अधीन बनाए गए नियमों के अध्यधीन रहते हुए न्यायालय ने निर्दिष्ट की है, उस समय और स्थान पर, जो न्यायालय द्वारा विनिर्दिष्ट किया जाएगा, लोक नीलामी द्वारा उस व्यक्ति को किया जाएगा जिसने न्यायालय के या न्यायालय द्वारा उस प्रयोजन के लिए विशेषतया नियुक्त व्यक्ति के समक्ष सब से ऊंची बोली लगाई हो ;

(ग) यह कि पट्टा किसी प्रीमियम के प्रतिफल में न किया जाएगा या इतने वर्षों की अवधि के लिए और ऐसे भाटकों और प्रसंविदाओं के अध्यधीन किया जाएगा जो न्यायालय निर्दिष्ट करें ;

(घ) यह कि संरक्षक अनुज्ञात कार्य के सम्पूर्ण आगम या उनका कोई भाग न्यायालय से संवितरण किए जाने या विहित प्रतिभूतियों में न्यायालय द्वारा विनिहित किए जाने को अथवा अन्यथा ऐसे व्ययनित किए जाने को, जैसे न्यायालय निर्दिष्ट करे, न्यायालय में जमा करेगा ।

(4) संरक्षक को धारा 29 में वर्णित कार्य के करने की अनुज्ञा अनुदत्त

करने से पहले न्यायालय अनुज्ञा देने के आवेदन की सूचना का प्रतिपाल्य के नातेदार या मित्र को दिलाया जाना कारित कर सकेगा जिसे न्यायालय की राय में उसकी सूचना मिलनी चाहिए, और आवेदन के विरोध में उपसंजात होने वाले किसी भी व्यक्ति को सुनेगा और उसका कथन अभिलिखित करेगा ।

32. **सम्पत्ति के संरक्षक की जो न्यायालय द्वारा नियुक्त या घोषित किया गया है, शक्तियों में फेरफार** – जहां कि प्रतिपाल्य की सम्पत्ति का संरक्षक न्यायालय द्वारा नियुक्त या घोषित किया गया है और ऐसा संरक्षक कलक्टर नहीं है, वहां न्यायालय प्रतिपाल्य की संपत्ति के बारे में उस संरक्षक की शक्तियों को आदेश द्वारा उस रीति से और उस विस्तार तक समय-समय पर परिभाषित, निर्बन्धित या विस्तारित कर सकेगा जिसे वह प्रतिपाल्य के फायदे के लिए और जिस विधि के अध्यधीन वह अप्राप्तवय है उस विधि से संगत समझे ।

33. **प्रतिपाल्य की संपत्ति के प्रबन्ध के लिए राय लेने को न्यायालय से आवेदन करने का ऐसे नियुक्त या घोषित संरक्षक का अधिकार** – (1) न्यायालय द्वारा नियुक्त या घोषित संरक्षक उस न्यायालय से, जिसने उसे नियुक्त या घोषित किया है, अपने प्रतिपाल्य की संपत्ति के प्रबन्ध या प्रशासन विषयक किसी भी वर्तमान प्रश्न के संबंध में उस न्यायालय की राय, सलाह या निदेश के लिए अर्जी द्वारा आवेदन कर सकेगा ।

(2) यदि न्यायालय का यह विचार है कि वह प्रश्न संक्षिप्तत: निपटाए जाने योग्य है, तो वह अर्जी की प्रतिलिपि की तामील आवेदन में हितबद्ध ऐसे व्यक्तियों पर, जिन्हें न्यायालय ठीक समझे, कराएगा तथा वे उसकी सुनवाई में हाजिर रह सकेंगे ।

(3) जो संरक्षक अर्जी में तथ्यों का सद्भावपूर्वक कथन करता है और न्यायालय द्वारा दी गई राय, सलाह या निदेश पर कार्य करता है, जहां तक कि उसका अपना उत्तरदायित्व है, यह समझा जाएगा कि उसने आवेदन की विषयवस्तु के बारे में अपने उन कर्तव्यों का पालन कर दिया है जो संरक्षक के नाते उसके हैं ।

34. **संपत्ति के उस संरक्षक की बाध्यताएं जो न्यायालय द्वारा नियुक्त या घोषित किया गया है** – जहां कि प्रतिपाल्य की संपत्ति का संरक्षक न्यायालय द्वारा नियुक्त या घोषित किया गया है, और ऐसा संरक्षक कलक्टर नहीं है, वहां वह, –

(क) यदि उससे न्यायलय द्वारा ऐसी अपेक्षा की जाए, तो तत्समय

न्यायाधीश के फायदे के लिए प्रवृत्त बन्धपत्र, प्रतिभुओं सहित या रहित जैसा विहित किया जाए, न्यायालय के न्यायाधीश को यथाशक्य निकटतम विहित प्ररूप में देगा, जिसमें यह वचनबन्ध होगा कि प्रतिपाल्य की संपत्ति की बाबत जो कुछ उसे प्राप्त हो, उसका सम्यक् तौर पर लेखा-जोखा देगा ;

(ख) यदि उससे न्यायालय द्वारा ऐसी अपेक्षा की जाए, प्रतिपाल्य की स्थावर संपत्ति का विवरण, ऐसे धन और ऐसी अन्य जंगम संपत्ति का विवरण, जिसे उसने प्रतिपाल्य की ओर से विवरण के परिदान की तारीख तक प्राप्त किया है, और प्रतिपाल्य को या प्रतिपाल्य द्वारा उस तारीख को शोध्य ऋणों का विवरण, न्यायालय द्वारा उसकी नियुक्ति या घोषणा की तारीख से छह माह के भीतर या इतने अन्य समय के भीतर, जितना न्यायालय द्वारा निर्दिष्ट किया जाए, न्यायालय को परिदत्त कर देगा ;

(ग) यदि उससे न्यायालय द्वारा ऐसी अपेक्षा की जाए, अपने लेखाओं को न्यायालय में ऐसे समय पर और ऐसे प्ररूप में, जैसा न्यायालय समय-समय पर निर्दिष्ट करे, प्रदर्शित करेगा ;

(घ) यदि उससे न्यायालय द्वारा ऐसी अपेक्षा की जाए, उन लेखाओं में अपने द्वारा शोध्य बाकी या, उसका उतना भाग, जितना न्यायालय निर्दिष्ट करे, न्यायालय में उस समय जमा कर देगा, जिसे न्यायालय निर्दिष्ट करे ; तथा

(ङ) प्रतिपाल्य और ऐसे व्यक्तियों के, जो उस पर आश्रित हों, भरण-पोषण, शिक्षा और अभिवर्धन के लिए, तथा उन गृह कर्मों के अनुष्ठान के लिए जिनमें प्रतिपाल्य या उन व्यक्तियों में से कोई एक पक्षकार है, प्रतिपाल्य की संपत्ति की आय का उतना भाग जितना न्यायालय समय-समय पर निर्दिष्ट करे, और उस दशा में, जब कि न्यायालय ऐसा निर्दिष्ट करे, तो संपूर्ण संपत्ति या उसका कोई भाग उपयोजित करेगा ।

[1][34क. **लेखाओं की संपरीक्षा करने के लिए पारिश्रमिक अधिनिर्णीत करने की शक्ति** – जब कि प्रतिपाल्य की संपत्ति के संरक्षक द्वारा लेखा धारा 34 के खंड (ग) के अधीन की गई अपेक्षा के अनुसरण में या अन्यथा प्रदर्शित किए जाएं, तब न्यायालय लेखाओं की संपरीक्षा करने के लिए एक व्यक्ति को

[1] 1929 के अधिनियम सं. 17 की धारा 2 द्वारा अंत:स्थापित ।

नियुक्त कर सकेगा और निदेश दे सकेगा कि उस काम के लिए पारिश्रमिक संपत्ति की आय में से दिया जाए ।]

35. **संरक्षक के विरुद्ध वाद, जहां कि प्रशासन बंधपत्र लिया गया था** – जहां कि न्यायालय द्वारा नियुक्त या घोषित संरक्षक ने यह बंधपत्र दिया है कि उसे प्रतिपाल्य की संपत्ति की बाबत जो कुछ प्राप्त होगा, वह उसका सम्यक् तौर पर लेखा-जोखा देगा, वहां न्यायालय अर्जी द्वारा किए गए आवेदन पर, और अपना यह समाधान हो जाने पर कि बंधपत्र वचनबंध का पालन नहीं किया गया है और प्रतिभूति के बारे में ऐसे निबन्धनों पर, अथवा यह उपबंध करके कि प्राप्त होने वाले सब धन न्यायालय में जमा कर दिए जाएं या अन्यथा, जैसे न्यायालय ठीक समझे, वह बंधपत्र किसी उचित व्यक्ति को समनुदेशित कर सकेगा, जो तदुपरि उस बंधपत्र के आधार पर स्वयं अपने नाम में ऐसे बाद लाने का हकदार होगा मानो वह बंधपत्र न्यायालय ने न्यायाधीश के बजाय आरम्भत: उसी को दिया गया था और प्रतिपाल्य के न्यासी की हैसियत में वह उसके, किसी भंग की बाबत उस पर वसूली करने का हकदार होगा ।

36. **संरक्षक के विरुद्ध वाद, जहां कि प्रशासन बंधपत्र नहीं लिया गया था** – (1) जहां कि न्यायालय द्वारा नियुक्त या घोषित संरक्षक ने यथापूर्वोक्त बंधपत्र नहीं दिया है वहां कोई भी व्यक्ति प्रतिपाल्य की संपत्ति की बाबत संरक्षक को हुई प्राप्ति के लिए वाद न्यायालय की इजाजत से वादमित्र के तौर पर संरक्षक के विरुद्ध या उस दशा में जिसमें उसकी मृत्यु हो चुकी हो, उसके प्रतिनिधि के विरुद्ध प्रतिपाल्य की अप्राप्तवयता के दौरान किसी समय संस्थित कर सकेगा और वाद में ऐसी रकम, जो यथास्थिति, संरक्षक या उसके प्रतिनिधि द्वारा देय पाई जाए प्रतिपाल्य के न्यासी के रूप में वसूल कर सकेगा ।

(2) जहां तक उपधारा (1) के उपबंध संरक्षक के विरुद्ध वाद से संबंधित हैं, वहां तक वे कोड आफ सिविल प्रोसीजर, 1882 (1882 का 14)[1] के इस अधिनियम के द्वारा यथासंशोधित धारा 440 के उपबंधों के अध्यधीन रहेंगे ।

37. **संरक्षक का न्यासी के तौर पर साधारण दायित्व** – पूर्वगामी अन्तिम दो धाराओं में से किसी धारा की किसी भी बात का यह अर्थ नहीं लगाया जाएगा कि वह प्रतिपाल्य को या उसके प्रतिनिधि को संरक्षक या उसके प्रतिनिधि के विरुद्ध किसी ऐसे उपचार से वंचित करती है जो इन दोनों धाराओं

---

[1] अब देखिए सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 (1908 का 5) की प्रथम अनुसूची में आदेश 32, नियम 1 और 4(2) ।

में तो अभिव्यक्त तौर पर उपबंधित नहीं है किन्तु किसी भी अन्य हिताधिकारी या उसके प्रतिनिधि को अपने न्यासी या उसके प्रतिनिधि के विरुद्ध प्राप्त हों ।

संरक्षकता का पर्यवसान

38. **संयुक्त संरक्षकों के बीच उत्तरजीविताधिकार** – दो या अधिक संयुक्त संरक्षकों में से एक की मृत्यु पर संरक्षकता उत्तरजीवी या उत्तरजीवियों में तब तक बनी रहती है, जब तक न्यायालय द्वारा अतिरिक्त नियुक्ति नहीं कर दी जाती ।

39. **संरक्षक का हटाया जाना** – न्यायालय द्वारा नियुक्त या घोषित संरक्षक को, या विल या अन्य लिखत द्वारा नियुक्त संरक्षक को न्यायालय किसी हितबद्ध व्यक्ति के आवेदन पर या स्वप्रेरणा से निम्नलिखित हेतुकों में से किसी या किन्हीं के लिए, अर्थात् :–

(क) अपने न्यास के दुरुपयोग के लिए ;

(ख) अपने न्यास के कर्तव्यों के पालन में निरन्तर असफलता के लिए ;

(ग) अपने न्यास के कर्तव्यों के पालन में असमर्थता के लिए ;

(घ) अपने प्रतिपाल्य से बुरे बर्ताव, या उसकी उचित देखरेख करने में उपेक्षा के लिए ;

(ङ) उस अधिनियम के किसी उपबंध या न्यायालय के किसी आदेश की धृष्टतापूर्ण अवहेलना के लिए ;

(च) ऐसे अपराध के लिए दोषसिद्धि के लिए जिसमें न्यायालय की राय में शील की ऐसी त्रुटि विवक्षित है, जिसे वह अपने प्रतिपाल्य का संरक्षक रहने के अयोग्य हो जाता है ;

(छ) ऐसा हित रखने के लिए जो उसके कर्तव्यों के निष्ठापूर्वक पालन के प्रतिकूल है ;

(ज) न्यायालय की अधिकारिता की स्थानीय सीमाओं के भीतर निवास करना बन्द कर देने के लिए ;

(झ) संपत्ति का संरक्षक होने की दशा में शोध-अक्षमता या दिवाले के लिए ;

(ञ) जिस विधि के अध्यधीन अप्राप्तवय है, उसके अधीन संरक्षक की संरक्षकता के समाप्त हो जाने या समाप्त होने के कारण, हटा सकेगा :

परन्तु विल या अन्य लिखत द्वारा नियुक्त संरक्षक चाहे वह इस अधिनियम के अधीन घोषित किया गया हो, या नहीं –

(क) खंड (छ) में वर्णित हेतुक के लिए तब के सिवाय हटाया न जाएगा जब कि उसकी नियुक्ति करने वाले व्यक्ति की मृत्यु के पश्चात् प्रतिकूल हित प्रोद्भूत हुआ हो या वह दर्शित कर दिया गया हो कि उस व्यक्ति ने प्रतिकूल हित की अनभिज्ञता में वह नियुक्ति की थी और बनाए रखी थी ; अथवा

(ख) खंड (ज) में वर्णित हेतुक के लिए तब के सिवाय हटाया न जाएगा जब कि ऐसा संरक्षक ऐसे निकास करने लगा हो, जिससे न्यायालय की राय में उस संरक्षक के लिए यह साध्य नहीं रह गया है कि वह संरक्षक के कर्तव्यों का निर्वहन कर सके ।

40. **संरक्षक का उन्मोचन** – (1) यदि न्यायालय द्वारा नियुक्त या घोषित संरक्षक अपना पद त्यागना चाहे, तो वह उन्मोचित किए जाने के लिए न्यायालय से आवेदन कर सकेगा ।

(2) यदि न्यायालय इस निष्कर्ष पर पहुंचता है कि आवेदन के लिए पर्याप्त कारण है, तो वह उसे उन्मोचित करेगा और यदि आवेदन करने वाला संरक्षक कलक्टर है, और राज्य सरकार उसके उन्मोचित किए जाने के लिए आवेदन करने का अनुमोदन करती है, तो न्यायालय हर दशा में उसे उन्मोचित करेगा ।

41. **संरक्षक के प्राधिकार का अन्त हो जाना** – (1) शरीर के संरक्षक की शक्तियों का अन्त –

(क) उसकी मृत्यु, उसके हटाए जाने या उसके उन्मोचन से ;

(ख) प्रतिपाल्य के शरीर का अधीक्षण प्रतिपाल्य अधिकरण द्वारा संभाल लिए जाने से ;

(ग) प्रतिपाल्य की अप्राप्तवयता के अन्त हो जाने से ;

(घ) नारी प्रतिपाल्य की दशा में उसका ऐसे पति से विवाह हो

जाने से, जो उसके शरीर का संरक्षक होने के अयोग्य नहीं है या यदि संरक्षक न्यायालय द्वारा नियुक्त या घोषित किया गया है तो, ऐसे पति से, जो न्यायालय की राय में ऐसे अयोग्य नहीं है, विवाह हो जाने से ; अथवा

(ङ) ऐसे प्रतिपाल्य की दशा में जिसका पिता प्रतिपाल्य के शरीर का संरक्षक होने के अयोग्य था, पिता के ऐसा न रहने से या, यदि पिता, न्यायालय द्वारा ऐसे अयोग्य समझा गया था, तो न्यायालय की राय में उसके ऐसा न रहने से, हो जाता है ।

(2) संपत्ति के संरक्षक की शक्तियों का अन्त –

(क) उसकी मृत्यु, उसके हटाए जाने या उसके उन्मोचन से,

(ख) प्रतिपाल्य की संपत्ति का अधीक्षण प्रतिपाल्य अधिकरण द्वारा संभाल लिए जाने से, अथवा

(ग) प्रतिपाल्य की अप्राप्तवयता के अन्त हो जाने से,

हो जाता है ।

(3) जब कि संरक्षक की शक्तियों का किसी हेतुकवश अन्त हो जाता है तब न्यायालय उससे या, यदि वह मर चुका हो तो, उसके प्रतिनिधि से यह अपेक्षा कर सकेगा कि वह प्रतिपाल्य की संपत्ति, जो उसके अपने कब्जे या नियंत्रण में है, अथवा प्रतिपाल्य की भूतपूर्व या वर्तमान संपत्ति से संबद्ध कोई लेखा, जो उसके अपने कब्जे या नियंत्रण में है, ऐसे परिदत्त कर दे जैसे न्यायालय निर्दिष्ट करे ।

(4) जब कि वह न्यायालय द्वारा अपेक्षित तौर पर संपत्ति या लेखाओं का परिदान कर चुका हो तब न्यायालय उस कपट के बारे में के सिवाय जिसके तत्पश्चात् पता चले यह घोषित कर सकेगा कि वह अपने दायित्वों से उन्मोचित कर दिया गया है ।

42. **मृत, उन्मोचित या हटाए गए संरक्षक के उत्तरवर्ती की नियुक्ति** – जब कि न्यायालय द्वारा नियुक्त या घोषित संरक्षक उन्मोचित कर दिया गया है, या उस विधि के अधीन, जिसके प्रतिपाल्य अध्यधीन है, कार्य करने का हकदार नहीं रह जाता या जब कि कोई ऐसा संरक्षक या विल या अन्य लिखत द्वारा नियुक्त संरक्षक हटा दिया जाता है या मर जाता है, तब यदि प्रतिपाल्य तब भी अप्राप्तवय हो तो न्यायालय स्वप्रेरणा से, या

अध्याय 2 के अधीन आवेदन पर, यथास्थिति, अप्राप्तवय के शरीर या संपत्ति या दोनों का दूसरा संरक्षक नियुक्त या घोषित कर सकेगा ।

अध्याय 4
अनुपूरक उपबंध

43. **संरक्षकों के आचरण या कार्यवाहियों के विनियमन के लिए आदेश और उन आदेशों का प्रवर्तन कराना** – (1) न्यायालय किसी ऐसे संरक्षक के, जो न्यायालय द्वारा नियुक्त या घोषित किया गया है, आचरण या कार्यवाहियों के विनियमन के लिए आदेश किसी हितबद्ध व्यक्ति के आवेदन पर, या स्वप्रेरणा से, कर सकेगा ।

(2) जहां कि प्रतिपाल्य के एक से अधिक संरक्षक हैं, और वे ऐसे प्रश्न पर, जो उसके कल्याण पर प्रभाव डालने वाला है, एकमत होने में असमर्थ है, वहां उनमें से कोई भी न्यायालय से उसके निदेश के लिए आवेदन कर सकेगा, और न्यायालय मतभेदग्रस्त विषय के बारे में ऐसा आदेश कर सकेगा जैसा वह ठीक समझे ।

(3) वहां के सिवाय, जहां कि यह प्रतीत होता है कि उपधारा (1) या उपधारा (2) के अधीन आदेश करने का उद्देश्य विलम्ब होने से विफल हो जाएगा, न्यायालय यह आदेश करने के पहले, यथास्थिति, तदर्थ किए गए आवेदन की, या वैसा आदेश करने के न्यायालय के आशय की, सूचना, उपधारा (1) की दशा में, संरक्षक को या उपधारा (2) की दशा में संरक्षक को, जिसने आवेदन नहीं किया है, दिए जाने का निदेश देगा ।

(4) उपधारा (1) या उपधारा (2) के अधीन किए गए आदेश की अवज्ञा की दशा में उस आदेश का प्रवर्तन उसी रीति से, जो कोड आफ सिविल प्रोसीजर, 1882 (1882 का 14)[1] की धारा 492 या धारा 493 के अधीन अनुदत्त व्यादेश का प्रवर्तन कराने के लिए उपधारा (1) के अधीन की दशा में ऐसे कराया जा सकेगा, मानो प्रतिपाल्य वादी हो या संरक्षक प्रतिवादी हो और उपधारा (2) के अधीन की दशा में ऐसे कराया जा सकेगा मानो वह संरक्षक, जिसने आवेदन किया है, वादी हो और अन्य संरक्षक प्रतिवादी हो ।

---

[1] अब देखिए सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 (1908 का 5) की प्रथम अनुसूची में आदेश 39, नियम 1 और 2 ।

(5) उपधारा (2) के अधीन की दशा के सिवाय, इस धारा की कोई भी बात कलक्टर को, जो कलक्टर होने के नाते संरक्षक है, लागू नहीं होगी ।

44. **अधिकारिता में से प्रतिपाल्य के हटाए जाने की शास्ति** – यदि न्यायालय द्वारा नियुक्त या घोषित संरक्षक, न्यायालय को प्रतिपाल्य के बारे में अपने प्राधिकार का प्रयोग करने से निवारित करने के प्रयोजन से या तत्परिणाम सहित न्यायालय की अधिकारिता की सीमाओं में से प्रतिपाल्य को धारा 26 के उपबंधों का उल्लंघन करके हटा लेगा तो वह न्यायालय के आदेश द्वारा एक हजार रुपए से अनधिक जुर्माने से, या ऐसी अवधि के लिए, जो छह मास तक की हो सकेगी, सिविल जेल में कारावास से दंडनीय होगा ।

45. **धृष्टता के लिए शास्ति** – (1) निम्नलिखित दशाओं में, अर्थात् :–

(क) यदि अप्राप्तवय की अभिरक्षा रखने वाला व्यक्ति धारा 12 की उपधारा (1) के अधीन निदेश के अनुपालन में उसे पेश करने या कराने में या धारा 25 की उपधारा (1) के अधीन के आदेश के अनुपालन में अप्राप्तवय को उसके संरक्षक की अभिरक्षा में लौटने के लिए विवश करने का अपना पूरा प्रयास करने में असफल रहेगा, अथवा

(ख) यदि न्यायालय द्वारा नियुक्त या घोषित संरक्षक धारा 34 के खंड (ख) के द्वारा या अधीन अनुज्ञात समय के भीतर, न्यायालय को उस उपखंड के अधीन अपेक्षित विवरण परिदान करने में या उस धारा के खंड (ग) के अधीन की अपेक्षा के अनुपालन में लेखाओं का प्रदर्शन करने में, या उन लेखाओं मद्धे उस द्वारा शोध्य बाकी उस धारा के खंड (घ) के अधीन की अपेक्षा के अनुपालन में न्यायालय में जमा करने में असफल रहेगा ; अथवा

(ग) यदि कोई व्यक्ति, जो ऐसे व्यक्ति का संरक्षक या प्रतिनिधि नहीं रह गया है, धारा 41 की उपधारा (3) के अधीन की अपेक्षा के अनुपालन में किसी संपत्ति या लेखाओं का परिदान करने में असफल रहेगा,

तो, यथास्थिति, वह व्यक्ति, संरक्षक या प्रतिनिधि, न्यायालय के आदेश द्वारा एक सौ रुपए से अनधिक जुर्माने से, और अवज्ञा जारी रहने की दशा में

पहले दिन के पश्चात् जितने दिन तक यह व्यतिक्रम बना रहता है, उतने हर एक दिन के लिए दस रुपए से अनधिक अतिरिक्त जुर्माने से, जो कुल मिलाकर पांच सौ रुपए से अधिक न होगा, दंडनीय होगा और सिविल जेल में तब तक निरुद्ध किए जाने के दायित्व के अधीन होगा, जब तक वह, यथास्थिति, अप्राप्तवय को पेश करने या कराने या उसे लौट आने को विवश करने, या विवरण परिदत्त करने, या लेखा प्रदर्शित करने देने, या बाकी देने, या संपत्ति या लेखाओं का परिदान करने का परिवचन न दे दे ।

(2) यदि वह व्यक्ति, जो उपधारा (1) के अधीन परिवचन देने पर विरोध से निर्मुक्त कर दिया गया है, न्यायालय द्वारा अनुज्ञात समय के अन्दर परिवचन पूरा करने में असफल रहेगा, तो न्यायालय उसकी गिरफ्तारी और सिविल जेल को उसका फिर से सुपुर्द किया जाना कारित कर सकेगा ।

46. **कलक्टर और अधीनस्थ न्यायालयों के द्वारा रिपोर्ट** – (1) न्यायालय कलक्टर से या अपने अधीनस्थ किसी अन्य न्यायालय से, इस अधिनियम के अधीन की किसी भी कार्यवाही में उद्भूत किसी भी बात पर रिपोर्ट मांग सकेगा और उस रिपोर्ट को साक्ष्य के तौर पर बरत सकेगा ।

(2) यथास्थिति, कलक्टर या अधीनस्थ न्यायालय का न्यायाधीश रिपोर्ट तैयार करने के प्रयोजन के लिए ऐसी जांच करेगा, जैसी वह आवश्यक समझे, और साक्ष्य देने या दस्तावेज पेश करने के लिए साक्षी को हाजिर होने को विवश करने की शक्ति का, जो न्यायालय को कोड आफ सिविल प्रोसीजर, 1882 (1882 का 14)[1] द्वारा प्रदत्त है, प्रयोग जांच के प्रयोजनों के लिए कर सकेगा ।

47. **अपीलनीय आदेश** – ऐसे आदेश की अपील उच्च न्यायालय में होगी जो [2]*** न्यायालय ने, –

(क) संरक्षक नियुक्त या घोषित करने या नियुक्त या घोषित करने से इनकार करने की धारा 7 के अधीन किया है ; अथवा

(ख) आवेदन लौटाने को धारा 9 की उपधारा (3) के अधीन किया है ; अथवा

---

[1] अब देखिए सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 (1908 का 5) ।

[2] 1926 के अधिनियम 4 की धारा 4 द्वारा "जिला" शब्द निरसित ।

(ग) प्रतिपाल्य को उसके संरक्षक की अभिरक्षा में लौट आने के लिए आदेश करने या आदेश करने से इनकार करने का धारा 25 के अधीन किया है ; अथवा

(घ) न्यायालय की अधिकारिता की सीमाओं में से प्रतिपाल्य के हटाए जाने के लिए इजाजत देने से इनकार करने या उसके बारे में शर्तें अधिरोपित करने का धारा 26 के अधीन किया है ; अथवा

(ङ) धारा 28 या धारा 29 में निर्दिष्ट कार्य करने की संरक्षक को उस धारा के अधीन अनुज्ञा देने से इनकार करने का किया है ; अथवा

(च) संरक्षक की शक्तियों को परिभाषित, निर्बन्धित या विस्तारित करने की धारा 32 के अधीन किया है, अथवा

(छ) संरक्षक को हटाने की धारा 39 के अधीन किया है ; अथवा

(ज) संरक्षक को उन्मोचित करने से इनकार करने का धारा 40 के अधीन किया है ; अथवा

(झ) संरक्षक के आचरण या कार्यवाहियों के विनियमन का या संयुक्त संरक्षकों के बीच में मतभेदग्रस्त विषय को तय करने या आदेश का प्रवर्तन कराने का धारा 43 के अधीन किया है, अथवा

(ञ) शास्ति अधिरोपित करने की धारा 44 या धारा 45 के अधीन किया है ।

48. **अन्य आदेशों की अन्तिमता** – अन्तिम पूर्वगामी धारा द्वारा और कोड आफ सिविल प्रोसीजर, 1882 (1882 का 14)[1] की धारा 622 द्वारा यथा उपबंधित के सिवाय इस अधिनियम के अधीन किया गया आदेश अन्तिम होगा, और वाद द्वारा या अन्यथा प्रतिवादनीय न होगा ।

49. **खर्चे** – इस अधिनियम के अधीन की किसी कार्यवाही के खर्चे, जिनके अंतर्गत सिविल जेल संरक्षक या अन्य व्यक्ति के भरण-पोषण के खर्चे आते हैं, उच्च न्यायालय द्वारा इस अधिनियम के अधीन बनाए गए किन्हीं नियमों के अध्यधीन रहते हुए उस न्यायालय के विवेकाधीन होंगे

---

[1] अब देखिए सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 (1908 का 5) की धारा 115 ।

जिसमें कार्यवाही की गई है ।

50. **उच्च न्यायालय की नियम बनाने का शक्ति** – (1) नियम बनाने की किसी अन्य शक्ति के अतिरिक्त, जो इस अधिनियम द्वारा अभिव्यक्त तौर पर या विवक्षित तौर पर प्रदत्त है, उच्च न्यायालय इस अधिनियम से संगत नियम निम्नलिखित के लिए समय-समय पर बना सकेगा –

(क) वे बातें, जिनके बारे में और वह समय जिस पर कलक्टर और अधीनस्थ न्यायालयों से रिपोर्ट मांगी जानी चाहिए ;

(ख) संरक्षकों को अनुदत्त किए जाने वाले भत्ते और उनसे अपेक्षित की जाने वाली प्रतिभूति और वे दशाएं, जिनमें ऐसे भत्ते अनुदत्त किए जाने चाहिएं ;

(ग) धारा 28 और 29 में निर्दिष्ट कार्यों को करने की अनुज्ञा के लिए संरक्षकों के आवेदनों के बारे में अनुसरण की जाने वाली प्रक्रिया ;

(घ) वे परिस्थितियां जिनमें वे अपेक्षाएं की जानी चाहिएं जैसी धारा 34 के खंड (क), (ख), (ग) और (घ) में वर्णित हैं ;

(ङ) संरक्षकों द्वारा परिदत्त और प्रदर्शित विवरणों और लेखाओं का परिरक्षण ;

(च) उन विवरणों और लेखाओं का हितबद्ध व्यक्तियों द्वारा निरीक्षण ;

[1][(चच) धारा 34क के अधीन लेखाओं की संपरीक्षा और उन व्यक्तियों का वर्ग जो लेखाओं की संपरीक्षा के लिए नियुक्त किए जाने चाहिएं और पारिश्रमिक का मापमान जो उन्हें अनुदत्त किया जाना है ;]

(छ) प्रतिपाल्यों के धन की अभिरक्षा और उनके धन के लिए प्रतिभूतियां ;

(ज) वे प्रतिभूतियां, जिनमें प्रतिपाल्यों के धन विनिहित किए जा सकेंगे ;

(झ) उन प्रतिपाल्यों की शिक्षा, जिनके लिए न्यायालय द्वारा, ऐसे

---

[1] 1929 के अधिनियम सं. 17 की धारा 3 द्वारा अंत:स्थापित ।

संरक्षक नियुक्त या घोषित कर दिए गए हैं जो कलक्टर नहीं हैं, तथा

(ञ) इस अधिनियम के प्रयोजनों को कार्यान्वित करने में न्यायालयों का साधारणत: मार्गदर्शन ।

(2) उपधारा (1) खंड (क) और (झ) के अधीन के नियम उस समय तक प्रभावशील नहीं होंगे, जब तक वे राज्य सरकार द्वारा अनुमोदित न कर दिए गए हों, और न इस धारा के अधीन का कोई नियम उस समय तक प्रभावशील होगा, जब तक वह शासकीय राजपत्र में प्रकाशित न कर दिया गया हो ।

51. **न्यायालय द्वारा पहले ही नियुक्त संरक्षकों को अधिनियम का लागू होना** – इस अधिनियम द्वारा निरसित किसी अधिनियमिति के अधीन सिविल न्यायालय द्वारा नियुक्त, या उससे प्राप्त प्रशासन प्रमाणपत्र धारण करने वाला संरक्षक जैसा विहित किया जाए उसके सिवाय इस अधिनियम के उपबन्धों और इसके अधीन बनाए गए नियमों के ऐसे अध्यधीन होगा मानो वह अध्याय 2 के अधीन न्यायालय द्वारा नियुक्त या घोषित किया गया हो ।

52. [**इण्डियन मेजोरिटी ऐक्ट का संशोधन ।**] – निरसन अधिनियम, 1938 (1938 का 1) की धारा 2 और अनुसूची द्वारा निरसित ।

53. [**कोड आफ सिविल प्रोसीजर के अध्याय 31 का संशोधन** ।] – सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 (1908 का 5) की धारा 156 तथा अनुसूची 5 द्वारा निरसित ।

अनुसूची – [निरसित अधिनियमितियां ।] – निरसन अधिनियम, 1938 (1938 का 1) की धारा 2 और अनुसूची द्वारा निरसित ।